

भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच०डी० (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध सार

निर्देशक

प्रो० आरिफ़ नज़ीर

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

प्रस्तुतकर्ता

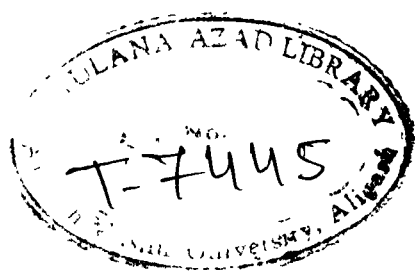
मोहम्मद अज़हर

शोध-छात्र (हिन्दी विभाग,
नामांकन सं० BB-3270
पंजीकरण सं० 210262

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

202002, उ० प्र०, भारत



शोध—प्रबंध सार

भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन

हिन्दी साहित्य के युग निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उन महान् साहित्यकारों में से हैं जिन्हें पाकर हिन्दी साहित्य कृतकृत्य हो गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक सतत जागरूक एवं काल दृष्टा साहित्यकार थे हिन्दी साहित्य में निबन्ध परम्परा को विकास के पथ पर ले जाते हुए भारतेन्दु जी ने ऐसी गतिशील परम्परा का निर्माण किया जो आज भी अनेक संदर्भों में गतिशील है हिन्दी के निबन्ध साहित्य में उनका नाम अग्रगण्य है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने निबन्ध से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

निबन्ध साहित्य की एक ऐसी विधा है जो लगभग सभी भाषाओं में पायी जाती है। भारतवर्ष में हिन्दी साहित्य से पूर्व संस्कृत भाषा में भी निबन्ध का उल्लेख मिलता है। हिन्दी साहित्य में भी निबन्ध एक सशक्त विधा के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। निबन्ध से तात्पर्य ऐसी रचना से होता है, जिसमें लेखक विचार परम्परा के साथ वह अपने भावों और मनोवृत्तियों को भी निराले ढंग से व्यक्त करता चलता है। निबन्ध में संक्षिप्तता, बाह्य स्वरूप और चिन्तन तत्त्व की विद्यमानता इसे प्रबन्ध से अलग करती है। निबन्ध में एक ही दृष्टिकोण में विषय का प्रतिपादन किया जाता है इसमें निबन्धकार वैयक्तिकता की प्रधानता समुचित रूप से दिखाई देती है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्ध में ही

भलीभाँति देखने को मिलता है। निबन्ध सीमित आकार के अन्तर्गत किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ होता है।

हिन्दी निबन्ध की उत्पत्ति जिस समय हुई उस समय की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं के चलते केवल मनोरंजन असंभव था। राजकीय अत्याचारों के विरुद्ध लोकमत जाग्रत करना था अनिष्टाकारिणी सामाजिक रूढ़ियों का निर्मूलन करना था। उच्चकोटि के वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने में इसे विकास के विभिन्न रूपों से गुज़रना पड़ा है। हिन्दी निबन्धों में भारत की दार्शनिक एवं उपदेशात्मक प्रवृत्ति स्पष्टतया लक्षित होती है। आधुनिक युग में ही गद्य का उदय हुआ, वह साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम बना। हिन्दी निबन्ध का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु युग में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से माना जाता है। इसमें से अधिकांश के सम्पादक हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान थे, जिनका उद्देश्य अपने युग की नाना प्रकार की समस्याओं, नवीन संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना, भाषा समस्या आदि को अच्छे ढंग से चित्रित करना रहा।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी निबन्ध लिखे गये थे, परन्तु निबन्ध का कोई एक स्पष्ट रूप उभर नहीं पाया था। भारतेन्दु युगीन साहित्य में सबसे अधिक सफलता निबन्ध लेखन में प्राप्त हुई। निबन्धों का सम्बन्ध पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ा हुआ था। लेखकों के सामने अनन्त विषय थे, राजनीतिक, समाज सुधार, धर्म, अध्यात्म, आर्थिक दुर्दशा, अतीत का गौरव, महापुरुषों की जीवनियाँ आदि। उक्त विषयों पर

विचार प्रकट करते हुए भारतेन्दु युग के लेखकों में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निबन्ध साहित्य को अत्यन्त संपन्न किया।

भारतेन्दु युग में सामान्य और गम्भीर प्रकार के विषयों पर अनेक निबन्ध लिखे गये। यह निबन्धकार किसी बन्धन में न पड़कर स्वच्छन्द निबन्ध रचना करते थे। स्वयं भारतेन्दु ने इतिहास, राजनीति, धर्म, यात्रा, प्रकृति भाषा, नाटक, आलोचना आदि विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे थे।

भारतेन्दु युग के निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन', लाल श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। "भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन' विषयक शोध कार्य की आवश्यकता बनी हुई थी, क्योंकि निबन्धों के माध्यम से जनता को शिक्षित और प्रबुद्ध करना है। वस्तुतः मेरी रुचि इस युग के कुछ निबन्धकारों के प्रति अगाध रूप से रही है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को दस अध्यायों में विभाजित किया गया है। शोध-प्रबन्ध का प्रारम्भ प्रस्तावना से किया गया है, जिसमें विषय की उपयोगिता तथा अध्ययन की रूपरेखा का विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्याय में विचारात्मक निबन्ध, भावात्मक निबन्ध, वर्णनात्मक निबन्ध, कथात्मक निबन्ध, हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में भारतेन्दु युगीन निबन्धों की सामाजिक पृष्ठभूमि, आर्थिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक पृष्ठभूमि, धार्मिक पृष्ठभूमि, साहित्यिक पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय में भारतेन्दु युगीन निबन्धकार : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी के व्यक्तित्व और कृतित्व का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भारतेन्दु के निबन्धों में व्यक्त विषय-पुरातत्त्व, सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध, जीवन चरित निबन्ध, विविध निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

पंचम अध्याय में बालकृष्ण भट्ट के सामाजिक निबन्ध, राष्ट्रीय सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, मनोवैज्ञानिक निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में प्रतापनारायण मिश्र के सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध, विविध निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

सप्तम अध्याय में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के ऐतिहासिक निबन्ध, सांस्कृतिक निबन्ध, विविध निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

अष्टम अध्याय में लाला श्रीनिवास दास के सांस्कृतिक निबन्ध, जीवन चरित निबन्ध, विविध निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

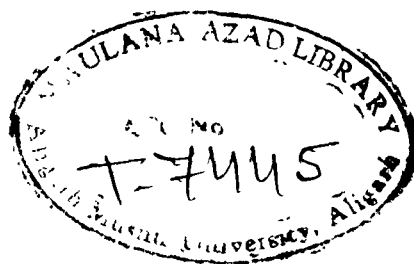
नवम अध्याय में राधाचरण गोस्वामी के ऐतिहासिक निबन्ध, सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

दशम अध्याय का शीर्षक उपसंहार है। प्रस्तुत शोध में प्राप्त सभी तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण इसमें प्रस्तुत किया गया है। शोध में सहायक ग्रन्थों की सूची परिशिष्ट में दी गई है।

दिनांक:

Forwarded
21/05/07
21-5-07
Department of Hindi
Aligarh Muslim University
Aligarh - 202 002

मोहम्मद अज़हर
(मोहम्मद अज़हर)
शोध-छात्र हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़ 21/05/07



भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच०डी० (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

प्रो० आरिफ़ नज़ीर

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

प्रस्तुतकर्ता

मोहम्मद अज़हर

शोध-छात्र (हिन्दी विभाग,
नामांकन सं० BB-3270
पंजीकरण सं० 210262

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
202002, उ० प्र०, भारत

T-7445

This is to certify that Mr .Mohd Azhar, a candidate admitted to Ph.D course, in the Department of Hindi, Aligarh Muslim University, Aligarh on 15-10-2003 under Admission No. 210262, Enrolment No. B.B-3270 is eligible to submit his thesis entitled. “ भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन ” to Aligarh Muslim University, Aligarh, 202002, U.P., India.

The thesis along with its abstract is forwarded to the Chairman, Department of Hindi, A. M.U. Aligarh, for necessary action as per rules please.

Dated 21-5-2007

Arif Nazir

Signature of Supervisor

(With Address.)

Dr. Arif Nazir

Professor, Dept. of Hindi,

Aligarh Muslim University, Aligarh. 202002, U.P. INDIA.

Department of Hindi
Aligarh Muslim University
Aligarh - 202 002

A decorative rectangular border with a repeating floral pattern, featuring small flowers and leaves, framing the central text.

प्रस्तावना

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के युग निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उन महान् साहित्यकारों में से हैं जिन्हें पाकर हिन्दी साहित्य कृतकृत्य हो गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक सतत जागरूक एवं काल दृष्टा साहित्यकार थे हिन्दी साहित्य में निबन्ध परम्परा को विकास के पथ पर ले जाते हुए भारतेन्दु जी ने ऐसी गतिशील परम्परा का निर्माण किया जो आज भी अनेक संदर्भों में गतिशील है हिन्दी के निबन्ध साहित्य में उनका नाम अग्रगण्य है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने निबन्धों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

निबन्ध साहित्य की एक ऐसी विधा है जो लगभग सभी भाषाओं में पायी जाती है। भारतवर्ष में हिन्दी साहित्य से पूर्व संस्कृत भाषा में भी निबन्ध का उल्लेख मिलता है। हिन्दी साहित्य में भी निबन्ध एक सशक्त विधा के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। निबन्ध से तात्पर्य ऐसी रचना से होता है, जिसमें लेखक विचार परम्परा के साथ वह अपने भावों और मनोवृत्तियों को भी निराले ढंग से व्यक्त करता चलता है। निबन्ध में संक्षिप्तता, बाह्य स्वरूप और चिन्तन तत्त्व की विद्यमानता इसे प्रबन्ध से अलग करती है। निबन्ध में एक ही दृष्टिकोण में विषय का प्रतिपादन किया जाता है इसमें निबन्धकार वैयक्तिकता की प्रधानता समुचित रूप से दिखाई देती है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्ध में ही भलीभाँति देखने को मिलता है। निबन्ध सीमित आकार के अन्तर्गत किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ होता है।

हिन्दी निबन्ध की उत्पत्ति जिस समय हुई उस समय की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं के चलते केवल मनोरंजन असंभव था। राजकीय अत्याचारों के विरुद्ध लोकमत जाग्रत करना तथा अनिष्टाकारिणी सामाजिक रूढ़ियों का निर्मूलन करना था। उच्चकोटि के वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने में इसे विकास के विभिन्न रूपों से गुज़रना पड़ा है। हिन्दी निबन्धों में भारत की दार्शनिक एवं उपदेशात्मक प्रवृत्ति स्पष्टतया लक्षित होती है। आधुनिक युग में ही गद्य

का उदय हुआ, वह साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम बना। हिन्दी निबन्ध का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु युग में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से माना जाता है। इसमें से अधिकांश के सम्पादक हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान थे, जिनका उद्देश्य अपने युग की नाना प्रकार की समस्याओं, नवीन संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना, भाषा समस्या आदि को अच्छे ढंग से चित्रित करना रहा।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी निबन्ध लिखे गये थे, परन्तु निबन्ध का कोई एक स्पष्ट रूप उभर नहीं पाया था। भारतेन्दु युगीन साहित्य में सबसे अधिक सफलता निबन्ध लेखन में प्राप्त हुई। निबन्धों का सम्बन्ध पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ा हुआ था। लेखकों के सामने अनन्त विषय थे, राजनीतिक, समाज सुधार, धर्म, अध्यात्म, आर्थिक दुर्दशा, अतीत का गौरव, महापुरुषों की जीवनियाँ आदि। उक्त विषयों पर विचार प्रकट करते हुए भारतेन्दु युग के लेखकों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निबन्ध साहित्य को अत्यन्त संपन्न किया।

भारतेन्दु युग में सामान्य और गम्भीर प्रकार के विषयों पर अनेक निबन्ध लिखे गये। यह निबन्धकार किसी बन्धन में न पड़कर स्वच्छन्द निबन्ध रचना करते थे। स्वयं भारतेन्दु ने इतिहास, राजनीति, धर्म, यात्रा, प्रकृति भाषा, नाटक, आलोचना आदि विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे थे।

भारतेन्दु युग के निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। "भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन" विषयक शोध कार्य की आवश्यकता बनी हुई थी, क्योंकि निबन्धों के माध्यम से जनता को शिक्षित और प्रबुद्ध करना था। वस्तुतः मेरी रुचि इस युग के कुछ निबन्धकारों के प्रति अगाध रूप से रही है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को दस अध्यायों में विभाजित किया गया है। शोध-प्रबन्ध का प्रारम्भ प्रस्तावना से किया गया है, जिसमें विषय की उपयोगिता तथा अध्ययन की रूपरेखा का विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्याय में विचारात्मक निबन्ध, भावात्मक निबन्ध, वर्णनात्मक निबन्ध, कथात्मक निबन्ध, हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में भारतेन्दु युगीन निबन्धों की सामाजिक पृष्ठभूमि, आर्थिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक पृष्ठभूमि, धार्मिक पृष्ठभूमि, साहित्यिक पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय में भारतेन्दु युगीन निबन्धकार : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी के व्यक्तित्व और कृतित्व का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भारतेन्दु के निबन्धों में व्यक्त विषय-पुरातत्त्व, सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध, जीवन चरित निबन्ध, विविध निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

पंचम अध्याय में बालकृष्ण भट्ट के सामाजिक निबन्ध, राष्ट्रीय सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, मनोवैज्ञानिक निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में प्रतापनारायण मिश्र के सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध, विविध निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

सप्तम अध्याय में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के ऐतिहासिक निबन्ध, सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, विविध निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

अष्टम अध्याय में लाला श्रीनिवासदास के सांस्कृतिक निबन्ध, जीवन चरित निबन्ध, विविध निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

नवम अध्याय में राधाचरण गोस्वामी के ऐतिहासिक निबन्ध, सांस्कृतिक निबन्ध, जीवन चरित निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

दशम अध्याय का शीर्षक उपसंहार है। प्रस्तुत शोध में प्राप्त सभी तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण इसमें प्रस्तुत किया गया है। शोध में सहायक ग्रन्थों की सूची परिशिष्ट में दी गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैंने स्वयं लिखा है। यह मेरा मौलिक कार्य है। मेरे संज्ञान में अभी तक किसी विश्वविद्यालय में इस विषय पर शोध कार्य नहीं हुआ है। जहाँ कहीं विद्वानों के ग्रंथों आदि से सहायता ली गई है उसका उल्लेख 'संदर्भ' में कर दिया गया है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ द्वारा शोध-छात्रों हेतु निश्चित किये गये सभी नियमों एवं कर्तव्यों का मैंने पालन किया है तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कार्यालय में रखी गयी उपस्थिति पंजिका (अटेन्डेंस रजिस्टर) में मेरी दो वर्ष की उपस्थिति दर्ज है, मैं उस दौरान अलीगढ़ में उपस्थित था, मैंने स्वयं उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर किये हैं। मेरा कार्य और कनडक्ट भी सन्तोषजनक रहा है। मेरे पी-एच0डी0 में दाखिले की तारीख 15.10.2003, पंजीकरण सं0 210262 और नामांकन सं0 BB-3270 है।

'भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य' का समीक्षात्मक अध्ययन की शोध यात्रा में मुझे आशा निराशा के द्वन्द्वात्मक क्षणों का भी सामना करना पड़ा। परन्तु ईश्वर की कृपा से परम आदरणीय गुरुदेव एवं विद्वान प्रो0 आरिफ़ नज़ीर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के दिशा निर्देशन का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण निराशा का तिमिर गुरुज्ञान के दिव्य प्रकाश से परास्त हो गया। अध्ययन एवं अन्वेषण के क्रम में मुझे प्रो0 आरिफ़ नज़ीर से अदम्य प्रेरणा, स्नेह और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उन्होंने विभागीय दायित्व का निर्वाह करते हुए अपनी अत्यन्त व्यस्त दिनचर्या में से बहुमूल्य समय देकर मेरी कठिनाइयों को दूर किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की प्रेरणा मुझे अपने निर्देशक प्रो0 आरिफ़ नज़ीर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से मिली और उन्हीं के दिशा निर्देशन एवं अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सका। उनकी दृष्टि की व्यापकता ने मेरे लेखन कार्य को गतिशील बनाया। उनका पितातुल्य प्रेम मुझे कठिनाइयों से जूझने का नित्यनवीन आत्मविश्वास देता रहा। उनका अन्तेवासी शिष्य होना मेरे लिए गौरव की बात है। मेरा यह परम सौभाग्य है कि मुझे उन जैसे मनीषी के निकट सम्पर्क में रहकर शोध कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रो0 आरिफ़ नज़ीर

का आभार शब्दों में व्यक्त कर पाना मेरे सामर्थ्य से परे है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

अध्ययन पिपासा का मंत्र देने वाले अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० प्रदीप कुमार सक्सेना का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जो इस शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे हैं।

प्रो० कृष्ण मुरारि मिश्र, प्रो० एम०ई० जुबैरी, डॉ० (हाफिज़) मो० इलयास ख़ान, प्रो० अब्दुल अलीम, डॉ० आर०सी० रावत, डॉ० मेराज अहमद, डॉ० वेदप्रकाश, डॉ० आशुतोष कुमार, डॉ० तस्नीम सुहेल तथा अन्य गुरुजनों के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत शोध कार्य को सम्पन्न करने में मेरे गुरुजनों का स्नेह और आशीर्वाद मेरे साथ रहा जो मेरे भीतर निरन्तर ऊर्जा का संचार करता रहा।

मैंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० श्याम सुन्दर दास, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० ओंकारनाथ शर्मा, डॉ० कमला कानोड़िया, डॉ० आरिफ़ नज़ीर, डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी, विजयशंकर मल्ल, धनंजय भट्ट 'सरल', हेमन्त शर्मा ब्रजरत्नदास, सत्यप्रकाश मिश्र, प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, कर्मन्दु शिशिर आदि विद्वानों की कृतियों से विशेष सहायता ली है। मैं उन समस्त वरेण्य रचनाकारों एवं प्रबुद्ध समीक्षकों के प्रतिश्रद्धावन्त हूँ जिनकी पुस्तकों से मैंने इस शोध कार्य में सहायता ली है। मेरे शोध कार्य में मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मेरे शोध कार्य में रिसर्च डिवीजन के डॉ० राधेश्याम साहब और हिन्दी सैक्शन के श्री पीर मोहम्मद का विशेष सहयोग रहा है। मैं इनके प्रति हृदय से आभारी हूँ।

मैं प्रो० अबुल कलाम कासमी, अधिष्ठाता कला संकाय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ का आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मजीद साहब के सहयोग के लिए मेरे मन में प्रशंसा का भाव है।

मैं अपने विभाग के समस्त कर्मचारियों का आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। जिसके सहयोग के लिए मैं सदैव ऋणी रहूँगा।

इस शोध यात्रा में एक शक्ति सदैव मेरा मार्ग प्रशस्त करती रही उनके विराट अनुभव और साधना ने मुझे कठिनाइयों से उभारते हुए इस स्थिति योग्य बनाया है कि मैं इस कार्य को पूरा कर सका, उन्हीं सत्य श्रद्धा एवं कर्मठता के प्रतीक परम पूज्य पिताश्री गयासुउद्दीन, पूज्यनीय माताजी श्रीमती नसीमा बेगम, जिनके आँचल के साये में शोध प्रबन्ध पूर्ण करते समय एक आत्मिक सुख मिला। मुझे यहाँ तक सँवारने में उन्होंने अपना पूर्ण सहयोग दिया। अतः यह शोध प्रबन्ध मैं अपने माता-पिता के चरणों में सादर समर्पित करता हूँ। इनका प्रेम आशीर्वाद, ममता और उनकी छाया सदैव मुझे मिलती रहे ऐसी मेरी मनोकामना है।

पारिवारिक सदस्यों में बड़े भाई मो० उमर, मो० मज़हर और छोटे भाई मो० राहत, मो० मुज़ाहिर के प्रति आभारी हूँ जिनका स्नेह मुझे अपने शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए उत्साहित करता रहा। मैं बड़ी बहन श्रीमती नाजुक जहाँ तथा छोटी बहन नुजहत जहाँ के प्रति हृदय से आभारी हूँ। इन्होंने मेरे शोध कार्य में रुचि दिखाई और मुझे प्रोत्साहित किया। अपने जीजा जी मो० इमरान के प्रति भी आभारी हूँ, इन सभी लोगों का प्रेम एवं आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा। इन सबके साथ अपने अत्यन्त प्रिय भतीजा अरहम, भतीजी मरियम, सानियां, भांजा मो० सुल्तान, भांजी उरफी, समीरा की प्रसन्नता हेतु ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि जिनकी मृदु मुस्कान मेरे कलान्त मन को सुख प्रदान करती है। ताया श्री सलाउद्दीन अंकल श्री नूरउद्दीन, श्री फहीमउद्दीन और भाभी श्रीमती सलमा बी के प्रति आभारी हूँ, जो समय-समय पर मेरे शोध कार्य के विषय में पूछते रहे और मेरा उत्साह बढ़ाते रहे हैं। इन सब के प्रति भी आभारी हूँ।

मैं अपने विभाग के सभी सहपाठियों के प्रति आभारी हूँ जिनमें से डॉ० जहाँआरा जैदी, श्री तौफीक अहमद, खुर्शीद आलम ख़ान, सायमा हसन खान, नीलम, अमानउल्ला खान, नदीम, रेहान, मेराज, तारिक, जीशान, राशिद, शम्शउद्दीन, फुरकान, मो० इलयास, इम्तियाज़ अहमद के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। जिन्होंने यथासामर्थ्य पूर्ण निष्ठा के साथ समर्पित भाव से मुझे पग-पग पर सहयोग दिया। ईश्वर से उनके सुखमय, उज्ज्वल एवं स्वर्णिम भविष्य की कामना करता हूँ।

मैं बिसारत भाई का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने व्यावसायिक परिधि से बाहर निकलकर अत्यन्त अपनत्व पूर्ण व्यवहार के साथ पूर्ण रुचि से यथासम्भव इस शोध-प्रबन्ध को शुद्ध कम्प्यूटर मुद्रण द्वारा मेरी सहायता की।

मेरी ज्ञान सीमा इतनी व्यापक नहीं है कि मैं कोई बड़ा दावा कर सकूँ विश्वास इतना ही है कि यह अनुसंधात्मक प्रयास विद्वज्जन से प्रोत्साहनपरक संस्तुति प्राप्त करेगा।

यथेष्ट ध्यान रखने के बावजूद यत्र-तत्र जो वर्तनीगत अशुद्धियाँ रह गयी हो, उनके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। अल्लाह की महरबानी से मैं यह शोध कार्य पूर्ण कर सका।

दिनांक :

दिनयावनत
मौहम्मद अजहर
(मोहम्मद अजहर) 21/05/07
शोध-छात्र, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ सं०

प्रस्तावना :

i-vii

प्रस्तुत शोध-कार्य की आवश्यकता तथा उपयोगिता, विषय का स्वरूप एवं सीमा। प्रस्तुत शोध-कार्य की प्रक्रिया एवं प्रविधि, आभार आदि।

प्रथम अध्याय :

1-22

निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग, विचारात्मक निबन्ध, भावात्मक निबन्ध, वर्णनात्मक निबन्ध, कथात्मक निबन्ध, हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध।

द्वितीय अध्याय :

23-43

भारतेन्दु युगीन निबन्धों की पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक अध्ययन

सामाजिक पृष्ठभूमि, आर्थिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक पृष्ठभूमि, धार्मिक पृष्ठभूमि, साहित्यिक पृष्ठभूमि।

तृतीय अध्याय :

44-113

भारतेन्दु युगीन निबन्धकार : व्यक्तित्व और कृतित्व

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी।

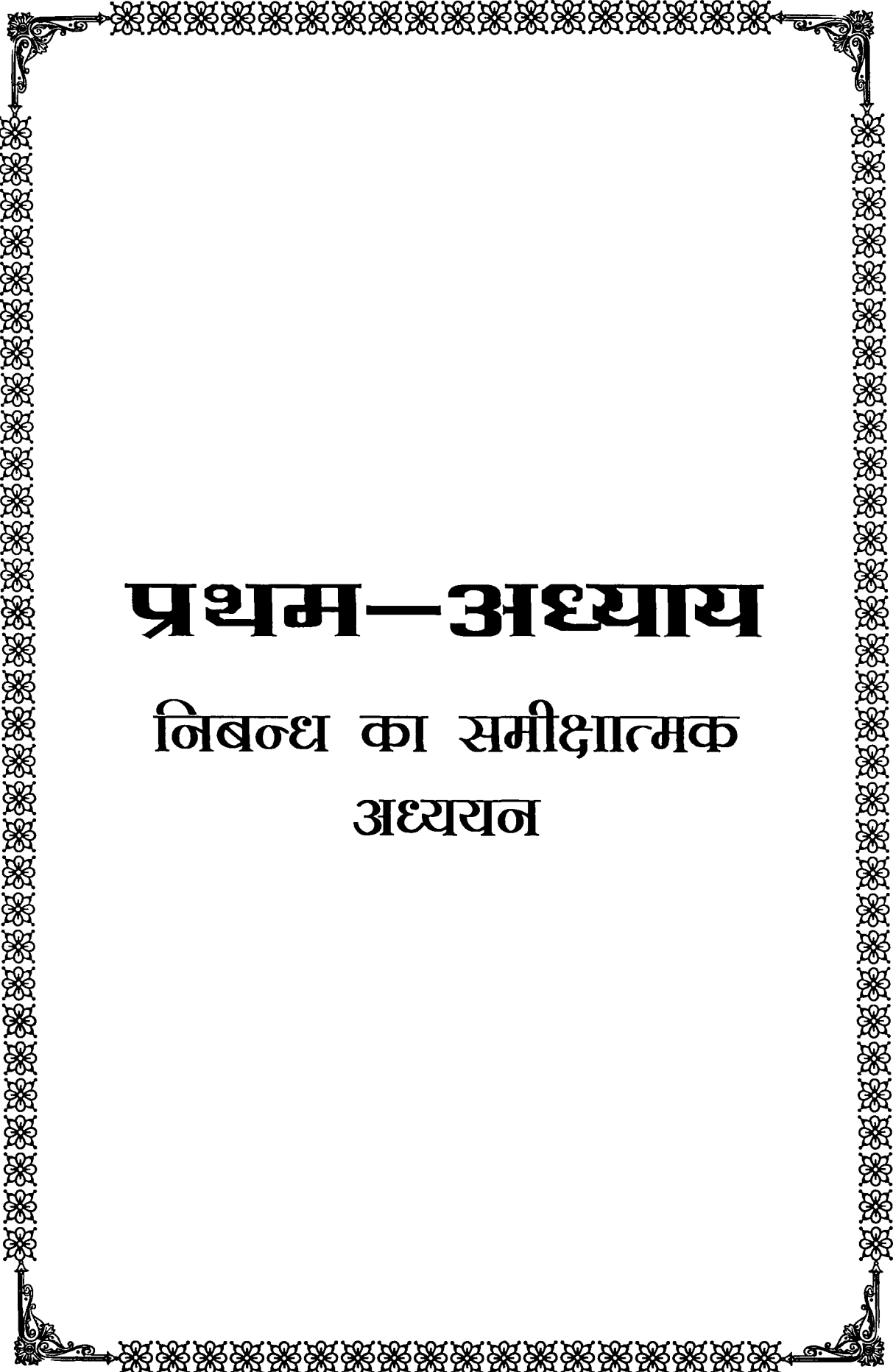
चतुर्थ अध्याय :

114-134

भारतेन्दु जी के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन

भारतेन्दु के निबन्धों में आये व्यक्त विषय-पुरातत्त्व, सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध, जीवन चरित निबन्ध, विविध निबन्ध इत्यादि।

पंचम अध्याय :	135—158
बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन	
सामाजिक निबन्ध, राष्ट्रीय सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, मनोवैज्ञानिक निबन्ध इत्यादि।	
षष्ठ अध्याय :	159—186
प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन	
सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध, विविध निबन्ध इत्यादि।	
सप्तम अध्याय :	187—212
बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन	
ऐतिहासिक निबन्ध, सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, विविध निबन्ध इत्यादि।	
अष्टम अध्याय :	213—218
लाला श्रीनिवासदास के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन	
सांस्कृतिक निबन्ध, जीवन चरित निबन्ध, विविध निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध इत्यादि।	
नवम अध्याय :	219—238
राधाचरण गोस्वामी के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन	
ऐतिहासिक निबन्ध, सांस्कृतिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध इत्यादि।	
दशम अध्याय :	239—248
उपसंहार	
प्रस्तुत शोध में प्राप्त तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण।	
परिशिष्ट :	249—258
सहायक ग्रंथ सूची, पत्र-पत्रिकाएँ एवं कोश आदि।	

A decorative rectangular border with a repeating floral pattern and ornate corner designs.

प्रथम—अध्याय

**निबन्ध का समीक्षात्मक
अध्ययन**

प्रथम अध्याय

निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

निबन्ध साहित्य की एक ऐसी विधा है जो लगभग सभी भाषाओं में पायी जाती है। भारतवर्ष में हिन्दी साहित्य में पूर्व संस्कृत भाषा में भी निबन्ध का उल्लेख मिलता है। डॉ० ओंकारनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक में कहा है— “वेदों में अधिकांशतः काव्य है किन्तु कितने ही स्थल एक दूसरे से ऐसे स्वच्छन्द हैं जिन्हें आधुनिक निबन्ध कहा जा सकता है। इतना ही नहीं उनमें निबन्ध के लक्षण भी पूर्णतया दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद के 10वें मण्डल का 85वाँ सूक्त ‘विवाह’ पर एक उत्कृष्ट निबन्ध है। इसी प्रकार 10वें मण्डल का 18वाँ सूक्त ‘मृत्यु’ पर एक प्रशान्त निबन्ध है। इसमें अनुभूति ज्ञान, व्यापार वर्णन और रसमय स्पर्श तथा व्याख्या के लिये अलंकारों का सदुपयोग सुगठित और सुसंबन्ध रूप से मिलता है। आधुनिक पाश्चात्य निबन्ध की कसौटी पर भी ये दोनों निबन्ध विशुद्ध उतरेंगे।” संस्कृत में महाभारत और पुराणों में भी निबन्धों का उल्लेख मिलता है। संस्कृत साहित्य में निबन्ध रचना को बौद्धिक अभिव्यक्ति के एक विशेष साधन के रूप में ग्रहण किया गया है।

हिन्दी साहित्य में निबन्ध एक सशक्त विधा के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। दि आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी में निबन्ध की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है— “निबन्ध एक साधारण कलेवरमयी रचना है, जिसमें किसी विषय या विषयांश पर विचार विमर्श रहता है। आरम्भ में इसमें अपरिपूर्णता का अभाव रहता था, परन्तु अब उसके प्रयोग से ऐसी रचना का बोध होता है जिसका विस्तार परिमित रहने पर भी शैली प्रौढ़ और परिष्कृत है।”² हिन्दी निबन्ध की परिभाषा पर विचार करने के पूर्व अंग्रेजी ‘एसे’ Essay की परिभाषा देखना अधिक युक्तियुक्त होगा। इस विषय में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा कहते हैं— “निबन्ध शब्द से प्रायः अंग्रेजी ‘एसे’ का ही बोध हो जाता है, और हिन्दी साहित्य के समीक्षकों ने अधिकतर अंग्रेजी पद्धति को ही अपनाया है।”³ निबन्ध से तात्पर्य

ऐसी रचना से होता है जिसमें लेखक विचार परम्परा के साथ बहुत कुछ अपने भावों और मनोवृत्तियों को भी निराले ढंग से व्यक्त करता चलता है। निबन्ध में संक्षिप्तत, बाध्य स्वरूप और चिंतन-तत्त्व की विद्यमानता इसे प्रबन्ध से अलग करती है। निबन्ध में एक ही दृष्टिकोण से विषय का प्रतिपादन किया जाता है। इसमें लेखक की वैयक्तिकता की प्रधानता समुचित रूप से दिखाई देती है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्ध में ही भलीभाँति देखने को मिलता है। निबन्ध से अपूर्णता और स्वच्छन्दता के होते हुये भी वह स्वतः पूर्ण होता है। निबन्ध की एक विशेष बात ये भी है कि वह साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक रोचक और सजीव होता है।

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में निबन्ध को अंगरेजी शब्द 'एसे' पर आधारित माना है, जिसमें निबन्धकार की वैयक्तिकता की पूर्ण छाप हो। 'निबन्ध' शीर्षक में उन्होंने लिखा है—“निबन्ध से तात्पर्य सच्चे साहित्यिक निबन्धों से है, जिसमें लेखक अपने आपको प्रकट करता है, विषय को नहीं। विषय तो केवल बहाना मात्र होता है।”⁴

निबन्ध की पारम्परिक विकास यात्रा के सन्दर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने विचारों को इस प्रकार प्रतिपादित किया है—“ग्यारहवीं शताब्दी में इन ग्रन्थों, भाष्यों, टीकाओं की परम्परा बहुत अधिक बढ़ गई थी। यह आगे चलकर और भी बढ़ती चली गयी। यहीं इसने एक नया रास्ता पकड़ा। टीका-परम्परा की इस नयी शाखा को हम निबन्ध-साहित्य कह सकते हैं। ग्याहरवीं शताब्दी के बाद निबन्ध ग्रन्थ की परम्परा बढ़ने लगी।”⁵

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध के विषय में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—“आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो।.... भावों को विचित्रता दिखाने के लिये ऐसी अर्थ-योजना की जाय जो उनकी अनुभूति के प्रकृत या लोक-सामान्य स्वरूप से कोई सम्बन्ध ही न रखे।”⁶

विद्वानों ने अपने-अपने विचारों में निबन्ध को परिभाषित किया है, शिवनाथ एम०ए० ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु युगीन निबन्ध में अंग्रेजी साहित्य के प्रथम

निबन्धकार लार्ड वेकन की विचारधारा को प्रस्तुत किया है— “डिस्पर्सड मेडिटेशन (विक्षिप्त प्रणिधान) मानते हैं।”⁷

‘The word essay is late, but the thing is ancient. For seneca’s Epistles to Lucilius, if one mark them well, are but essays, that is dispersed meditations.’

इसी प्रकार डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने भी अंग्रेजी साहित्यकार जानसन के विचारों को अपनी पुस्तक हिन्दी का गद्य—साहित्य में इस प्रकार लिखा है—“जानसन साहब ‘निबन्ध’ को मस्तिष्क की ढीली-ढाली उद्भावना और अव्यवस्थित तथा अपरिपक्व रचना के रूप में ग्रहण करते हैं।”⁸

‘It is a loose sally of the mind, an irregular ill digested piece, not a regular and orderly performance.’

इसी सन्दर्भ में रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं—“यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों में ही सबसे अधिक संभव होता है। इसी लिये गद्य-शैली के विवेचक उदाहरणों के लिये अधिकतर निबन्ध ही चुना करते हैं।”⁹ डॉ० गुलाबराय ने निबन्ध की विशेषताओं को संग्रह करके निबन्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है— “निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्टव और सजीवता के तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया हो।”¹⁰ निबन्धों में विषय गौण होते हैं और अनुभूति को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। निबन्ध एक वह साहित्य और ललित गद्य-रचना है, जिसमें लेखक किसी विचार या विषय से प्रभावित होकर अपनी भाषा में अपने विचारों की क्रिया तथा प्रतिक्रिया को ऐसे सजीव ढंग से व्यक्त करता हुआ पाठकों की मनोवृत्तियों को सचेत करता है कि वह कुछ काल के लिये प्रभावित हुये बिना न रह सकें, और विचार करने को विवश हो जायें।

हिन्दी निबन्ध की उत्पत्ति जिस समय हुई उस समय की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि इतनी समस्याएँ सामने थीं कि केवल मनोरंजन का कोई विचार भी नहीं कर सकता था। राजकीय

अत्याचारों के विरुद्ध लोकमत जागृत करना था। अनिष्टाकारणी सामाजिक रूढ़ियों का निर्मूलन करना था। मुसलमान शासकों एवं अंग्रेजी सत्ता द्वारा आर्थिक स्थिति को भी खोखला कर दिया गया था। जनता के अज्ञान के कारण भी समस्याएँ अधिक कठिन हो गईं। इन्हीं परिस्थितियों में हिन्दी निबन्ध ने आँखें खोली। इस संदर्भ में बाबू गुलाबराय का कथन है— “निबन्ध साहित्य का उदय किसी बाहरी प्रेरणा से नहीं हुआ, वरन् उसका जन्म परिस्थिति की आवश्यकताओं में हृदय की उमंग से हुआ।”¹¹ निबन्ध शब्द संस्कृत साहित्य में पर्याप्त बंध सम्पूर्ण कसाव या संगठन के अर्थ में धीरे-धीरे वाङ्मय के अर्थ में रूढ़ हुआ। सर्वप्रथम पदमपादाचार्य ने पंचपादिका नामक निबन्ध लिखा। आधुनिक निबन्ध जिस स्वरूप को धारण किये हुये है उस रूप का संस्कृत साहित्य में, विशेषकर प्राचीन परिपाटी वाले साहित्य में सर्वथा अभाव है। क्योंकि वैयक्तिकता की छाप के स्थान पर वहाँ व्यक्तिगत बौद्धिकता का अभाव दिखाई देता है।

उच्चकोटि के वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने में इसे विकास के विभिन्न रूपों से गुजरना पड़ा है। सभी भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा है। हिन्दी साहित्य में निबन्ध का सृजन मुख्यतः सामाजिक एवं राजकीय परिस्थितियों के कारण हुआ। यह साहित्य—विधा आरम्भ में अतिशय लोकप्रिय हुई प्रत्येक साहित्य—प्रकार पर उस देश की परम्परा और संस्कृति का प्रभाव पड़ा है। हिन्दी निबन्ध इस नियम का अपवाद नहीं है।

भारतवर्ष स्वभाव से ही विचार प्रधान देश है। प्रकृति ने इस भारत भूमि को जीवन की समग्र आवश्यक सामग्रियों से परिपूर्ण बना कर यहाँ के निवासियों को एहिक चिन्ता से मुक्त कर पारलौकिक चिन्तन की ओर स्वतः अग्रसर कर रखा है। इसलिये भारतवासी निसर्गतः विचार प्रधान होते हैं। भारत की दार्शनिक एवं उपदेशात्मक प्रवृत्ति का समिश्रण भी इसके अन्तर्गत दिखाई देता है। कुछ विद्वान मानते हैं कि हिन्दी निबन्ध अंग्रेजी ‘एसे’ का केवल अनुकरण भाग ही है। किन्तु यह विचार धारणा समीचीन प्रतीत नहीं होती। आलोचनात्मक निबन्धों की प्रवृत्ति साहित्य में भलीभाँति देखने को मिलती है।

हिन्दी साहित्य में विचार प्रधान रचनायें निबन्ध कहलाती हैं। अंग्रेजी साहित्य का हिन्दी साहित्य पर जो प्रभाव दिखाई देता है। उस के विषय में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा का कथन है—“हम स्वीकार कर सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी-साहित्य का प्रभाव अवश्य पड़ा है और उसके कारण भी अनेक हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम प्रभाव और निर्माण को समकक्ष मान लें। हिन्दी के कृतिधार युग-प्रभाव से अछूते नहीं हैं, पर वे केवल अनुकर्ता नहीं हैं, साहित्य सृष्टा भी है।”¹² निबन्ध रचना विचारात्मक वस्तु भी होती है। यह ललित कला ही नहीं है, विषम-निष्ठ-साहित्यिक चिंतन का परिणाम भी है। यह रचना भी है और आलोचना भी है। यह निर्बन्ध निबन्ध भी है और परिबद्ध निबन्ध भी है। प्रत्येक देश का साहित्य अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व भी रखता है। स्वच्छन्द भावनाओं की अभिव्यंजना ही निबन्ध है। निबन्ध व्यक्तिनिष्ठ भी है और विषय-निष्ठ भी है।

आज का निबन्ध-साहित्य अनेक प्रकार के उन्मेषों से युक्त है। उनका परिशीलन करने से स्पष्ट होता है कि हिन्दी निबन्ध में प्रभाव तथा परम्परा का समाहार होते हुये भी, वह स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। कुछ उस पर अंग्रेजी ‘एसे’ विशेषकर वैयक्तिक ‘परसनल एसेज’ का प्रेरक प्रभाव भी पड़ा है। यथार्थ में हिन्दी-निबन्ध पर संस्कृत साहित्य तथा संस्कृति का प्रभाव भी प्रभूत मात्रा में विद्यमान है।

निबन्ध साधारणतः स्फुट या मुक्तक गद्य रचना का एक प्रकार है। गद्य मुक्तक में एक विचार परम्परा तो होती है, पर वह विचार सागर की एक बूंद की भाँति होती है। गद्य की प्रबन्धात्मकता ग्रंथ का रूप धारण कर लेती है। निबन्ध एक समय से उदित होने वाली भावना या विचारणा का आलेख होता है। निबन्ध वह सीमित गद्य रचना है जिसमें हृदय स्थित भावों तथा विचारों का निरूपण निजत्व की छाप लिये हुये हो। निबन्ध का विषय व्यक्ति की छाप से जुड़ा होता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि निबन्ध में जहाँ एक विषय मूलाधार का व्यक्तित्व प्रकट होता है। शैली फलतः निबन्ध का ही अनिवार्य अंग है। निबन्ध में कोई भी विषय आ सकता है पर उसके वर्णन का कोई सुनिश्चित प्रणाली नहीं हो

सकती। निबन्ध भावों और विचारों को ऐसा रूप देता है जिसमें व्यक्तित्व का सौन्दर्य तो झलके पर भावों और विचारों की भव्यता को एक दम जड़वत कर दे।

निबन्ध के लिये गद्य का एक सुनिश्चित रूप होना आवश्यक है। बिना अच्छे गद्य के निबन्ध का विकास नहीं हो पाता। यही कारण है कि प्रत्येक भाषा में निबन्ध रचना, भाषा के आरम्भिक युग में नहीं मिलती। आधुनिक-युग में ही गद्य का उदय हुआ, वह साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम बना। गद्य ने हिन्दी के जिस रूप को विशेष ग्रहण किया वह खड़ी बोली थी।

यही आज 'हिन्दी' कही जाती है। इसमें गद्य का उदय और विकास एक महत्त्वपूर्ण बात है। हिन्दी में गद्य की प्रतिष्ठा नये युग के सुभारंभ के साथ हुई है। भारत में 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के द्वारा अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ। इसी काल में नया युग प्रवर्तित हो उठा। अंग्रेजों का भारत पर शासन भी करना था और व्यापार भी। हिन्दी निबन्ध के आरम्भ के विषय में डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा कहते हैं—“हिन्दी निबन्ध का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुआ माना जाता है। आधुनिक काल के उस आरम्भिक काल खण्ड में हिन्दी में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होना आरम्भ हो गया था। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उन पत्र-पत्रिकाओं में से अधिकांश के संपादक, हिन्दी के जाने माने सम्पादक थे जिनका उद्देश्य अपने युग की नाना प्रकार की समस्याओं नवीन सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना, भाषा समस्या आदि का चित्रण विवेचन करना रहा था। वे अपने पत्र-पत्रिकाओं में इन समस्याओं पर टिप्पणियाँ और लघु निबन्ध लिखा करते थे। कालान्तर में लघु निबन्धों के ये नवजात बिरवे ही विकसित होकर आधुनिक सुगठित सुन्दर निबन्ध रूपी विशाल वृक्षों के रूप में लहलहाने लगे। उस आरम्भिक काल में 'प्रजा हितैषी', 'बनारस अखबार', 'ब्राह्मण', 'हिन्दी प्रदीप', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'बंगदूत', 'सार सुधानिधि' आदि पत्र-पत्रिकायें प्रमुख थीं।”¹³

उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं के सराहनीय योगदान को इनके सम्पादकों द्वारा किये गये प्रयासों से हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त है। इनके सम्पादकों में राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण

भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकन्द गुप्त जैसे युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। इनके कारण ही हिन्दी के आरम्भिक निबन्ध साहित्य का पत्रकारिता की स्वच्छन्दता का प्रभाव रहा है।

डॉ० रामविलास शर्मा भी इन विचारों से सहमत हैं कि निबन्ध रचना की उन्नति में पत्र-साहित्य द्वारा प्रोत्साहन को नकारा नहीं जा सकता इस सन्दर्भ में वे अपनी पुस्तक भारतेन्दु युग में लिखते हैं—“भारतेन्दु युग में पत्र-साहित्य ने जो उन्नति की, उससे निबन्ध रचना को विशेष प्रोत्साहन मिला। निबन्ध का रूप और आकार अभी अस्थिर था परन्तु इसीलिए कहानी से लेकर गम्भीर चिन्तन तक का माध्यम वह बन सका।”¹⁴

भारतेन्दु युगः

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी निबन्ध लिखे तो गये थे परन्तु निबन्ध का कोई एक स्पष्ट रूप उभर नहीं पाया था। उस युग में केवल एक ही रचना निबन्ध कहलाने का श्रेय ले सकी— “राजा शिवप्रसाद की राजा भोज का सपना।” भारतेन्दु युग में ही हिन्दी निबन्ध का वास्तविक रूप आरम्भ होता है। इसके विकास को इन चार कालों में बाँटा जा सकता है— भारतेन्दु युग— इस युग में सामान्य और गम्भीर दोनों प्रकार के विषयों पर अनेक निबन्ध लिखे गये। इस युग के निबन्धकारों ने सामान्य बोलचाल की कहावतों, मुहावरों, व्यंग्योक्तियों से सजी सशक्त भाषा में अनेक प्रकार के विषयों पर निबन्ध लिखे। वे लोग किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार न कर सहज ही अपनी बात कह देते थे। वे अपने पांडित्य का प्रदर्शन न करके आत्मीय भाव से सहज रचना प्रस्तुत करते थे। इसीलिये उनमें और उनके पाठकों के मध्य एक सहज आत्मीय सम्बन्ध बना रहता था जो कि निबन्ध का प्राण माना जाता है।

स्वयं भारतेन्दु ने इतिहास, राजनीति, धर्म यात्रा, प्रकृति, भाषा, नाटक, आलोचना आदि विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे थे। उन्होंने हिन्दी निबन्ध का आदर्श प्रस्तुत कर उसकी नींव डाली और उसे विकसित किया, उन्होंने ‘लेवी प्राण’ पाँचवें पैगम्बर स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन अंग्रेज स्तोत्र, आदि निबन्ध हल्की, फुल्की तथा हास्यव्यंग्य मिश्रित शैली में लिखे।

भारतेन्दु युग में अनेक श्रेष्ठ निबन्धकारों ने भी सुन्दर निबन्धों की रचना की बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी और बालमुकुन्द गुप्त उस युग के श्रेष्ठ रचनाकार थे। बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी प्रदीप का प्रकाशन और सम्पादन करते हुये साहित्य समाज, राजनीति, नैतिकता आदि विषयों पर दर्जनों सुन्दर निबन्ध लिखे थे। इनके निबन्धों में गम्भीरता के साथ हास्य विनोद का भी पर्याप्त पुट मिलता है। इनकी शैली भावात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक है। प्रतापनारायण मिश्र 'ब्राह्मण' के सम्पादक थे। इन्होंने गम्भीर की अपेक्षा सामान्य सरल विषयों पर निबन्ध लिखे हैं जैसे 'बात', 'वृद्ध', 'भौं', 'समझदार की मौत', 'होली है या होरी' आदि। बालमुकुन्द गुप्त इस युग के सर्वाधिक राजनीतिक चेतना सम्पन्न निबन्धकार थे। उन्होंने 'बंगवासी' और भारत-मित्र जैसे श्रेष्ठ पत्रों के सम्पादक के रूप में हिन्दी जगत् की सेवा की। उन्होंने अंग्रेज शासन को सम्बोधित कर बड़े विनोद भरे मार्मिक व्यंग्य रचे हैं। समाष्टि रूप से समर्पित निबन्धकारों ने उस युग में अपने निबन्धों के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक चेतना उभारने और उसका व्यापक प्रसार करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी। भारतेन्दु युग को एक प्रकार से निबन्ध युग भी कहा जा सकता है।

स्वयं भारतेन्दु ने निबन्धों में विविधता का प्रदर्शन समुचित रूप से किया है और निबन्ध काव्य की झलक प्रस्तुत की है इस सन्दर्भ में किशोरीलाल गुप्त का कथन है—“भारतेन्दु ने हिन्दी में निबन्ध काव्य की प्रणाली चलाई। किसी विषय पर सम्यक रूप से तथा सुसंबद्ध रूप से लगातार कई छन्दों में रचना को निबन्ध-काव्य कहेंगे।”¹⁵

हिन्दी साहित्य में निबन्ध के क्षेत्र में जो आशातीत सफलता भारतेन्दु युग में दिखाई देती है उससे हिन्दी गद्य साहित्य समृद्धशाली हुआ और कोई भी विषय निबन्धों से अछूता न रहा डॉ० नगेन्द्र ने इस सन्दर्भ में अपने विचारों को अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य का इतिहास में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—“भारतेन्दु युग में सबसे अधिक सफलता निबन्ध-लेखन में प्राप्त हुई। निबन्धों का सम्बन्ध पत्र-पत्रिकाओं से सीधे जुड़ा हुआ था। लेखकों के सामने अनन्त

विषय थे। राजनीति, समाज-सुधार, धर्म, अध्यात्म, आर्थिक दुर्दशा, अतीत का गौरव, महापुरुषों की जीवनियाँ आदि विषय पर विचार प्रकट करते हुए भारतेन्दु युग के लेखकों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निबन्ध-साहित्य को खूब समृद्ध किया।¹⁶

द्विवेदी युग :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी नैतिकवादी आदर्श परक दृष्टिकोण से सूक्ष्म, सांकेतिक व्यंग्य की शैली को त्याग कर निबन्ध लिखे। 'सरस्वती' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन के साथ हिन्दी निबन्ध का द्वितीय उत्थान प्रारम्भ हुआ जिसमें पर्याप्त गाम्भीर्य और विस्तार भी था। द्विवेदी युग में अध्यापक पूर्णसिंह माधव प्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पद्म सिंह शर्मा, गोपाल राम गुलेरी, ब्रजनन्दन सहाय, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि ऐसे लेखक थे जिन्होंने द्विवेदी जी के प्रभाव को स्वीकार करते हुये भी बड़े सुन्दर और रोचक निबन्ध लिखे।

इस युग के निबन्ध मौलिकता नवीनता, प्रतिभा और विशिष्ट-भाषा के कारण सबसे अलग और विशिष्ट दिखाई देते हैं, इन निबन्धों में विस्तृत ज्ञान और अपूर्व सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न रूप प्रस्फुटित होते दिखाई देते हैं। विभिन्न प्रसंगों, वार्तालापों, कहावतों, मुहावरों के समावेश और प्रयोग ने इनकी शैली में अद्भुत सरसता और प्रभावित करने की शक्ति उत्पन्न कर दी है।

इस युग में पर्व त्योहार, संस्कृति साहित्य, राजनीति, भूगोल, पुरातत्त्व आदि विषयों पर माधव प्रसाद मिश्र ने अच्छे निबन्ध लिखे हैं। अध्यापक पूर्ण सिंह ने मौलिक चिन्तन, भाषा प्रवण सरस अभिव्यक्ति लक्षण व्यंजना का चमत्कारपूर्ण प्रयोग, चित्रोपम सजीव वर्णन, गम्भीर विचार संकेत, ओजस्वी भावाकुल भाषा शैली आदि से परिपूर्ण निबन्धों में एक विशिष्ट प्रभाव और सौन्दर्य की सृष्टि कर दी है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी संस्कृत, इतिहास, पुरातत्त्व आदि के प्रकाण्ड विद्वान और इस युग के सर्वाधिक प्रगतिशील निबन्धकार थे।

द्विवेदी युग में अन्य अनेक निबन्धकारों ने उस युग में श्रेष्ठ निबन्धों की रचना की थी। श्यामसुन्दरदास, गुलाबराय, मिश्र बन्धु, पदुमलाल पुन्नालाल

बख्शी, किशोरी दास बाजपेयी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवपूजन सहाय, मोहन लाल महतो, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ० भगवान दास, रायकृष्ण दास, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि ने इसी युग में निबन्ध लिखने आरंभ कर दिये थे। द्विवेदी युग के निबन्ध साहित्य के बारे में डॉ० रमेश चन्द्र शर्मा का विचार इस प्रकार है—“द्विवेदी युग का निबन्ध साहित्य भारतेन्दु युग की अपनी उछलकूद अन्मुक्तता व्यंग्य विनोद आदि की प्रवृत्ति को त्याग जीवन और समाज के प्रति एक गम्भीर और परिष्कृत दृष्टिकोण अपना कर साहित्य श्रेत्र में उतरा था। इसीकारण इस युग के निबन्धों में गम्भीर विवेचन को प्रमुख स्थान मिला।... परन्तु अपने अत्यधिक नैतिक दृष्टिकोण और आदर्शवाद के कारण इस युग का निबन्ध सामान्य पाठक वर्ग से कटकर केवल शिक्षित पाठकों तक ही सीमित होकर रह गया।”¹⁷

शुक्ल युग :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अत्यन्त उच्चकोटि के आलोचक और निबन्धकार थे। उन्होंने अपनी प्रखर मेधा, मौलिक चिन्तन, प्रांजल भाषा और गम्भीर शैली द्वारा हिन्दी निबन्ध को एक नई दीप्ति से ओतप्रोत कर दिया था। उनके निबन्ध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबन्ध साहित्य में एक नया जीवन आया। गहराई और विश्लेषण की प्रवृत्ति इस युग की विशेषता है। शुक्ल जी निबन्धों में नूतन विचार, नई अनुभूति, सर्वथा नवीन शैली और भाषा के अद्भुत सुगठित और गम्भीर समस्याओं को उठाकर अत्यन्त सारगर्भित निबन्धों के साथ ही लोभ, क्रोध आदि मानव भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुये कई निबन्ध लिखे।

शुक्ल जी के निबन्धों में जहाँ चिन्तन की मौलिकता, सूक्ष्म विश्लेषण, विवेचन की गम्भीरता और शैली की सुगुम्फित प्रौढ़ता मिलती है, वहाँ भावात्मकता, व्यंग्यात्मकता और वैयक्तिकता की चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति भी मिलती है। शुक्ल युग के अन्य निबन्धकारों में माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, नन्ददुलारे बाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन वियोगी हरि, रायकृष्ण दास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, निराला, श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, गुलाबराय आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग में विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक,

संस्मरणात्मक निबन्ध लिखे गये जो कि निबन्ध युग की प्रौढ़ता के परिचायक हैं। इस युग के अन्य निबन्धकारों में पाण्डेय बेंचन शर्मा उग्र, भगवती चरण वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, भदन्त आनन्द, रामकृष्ण, केदारनाथ भट्ट, लोचन प्रसाद पाण्डेय, श्रीनाथ सिंह, रामचन्द्र वर्मा, कालिदास कपूर आदि निबन्धकारों ने भी निबन्ध लिखे हैं।

शुक्ल युग में निबन्ध लेखन में अभूतपूर्व निखार आया विषयों की संख्या बड़ी विवेचन में अधिक गम्भीरता और मौलिकता का समावेश हुआ, दुरुह और कठिन विषयों को लेकर सुन्दर निबन्ध लिखे गये। मौलिक और प्रौढ़ चिन्तन की परम्परा अधिक पुष्ट और विकसित हुई। उसी के अनुरूप शैली में विविधता और प्रौढ़ता आई तथा भाषा एक नवीन अभिव्यंजना पद्धति को अपनाती हुई प्रत्येक प्रकार के विषय विचार, भावना और अनुभूति का सुन्दर प्रकाशन करने में समर्थ बन गई। यह हिन्दी निबन्ध की प्रौढ़ता का युग था। शुक्ल युग को हिन्दी निबन्ध का अभूतपूर्व उत्कर्ष युग माना जाता है।

हिन्दी निबन्ध की विकास यात्रा में अब आता है शुक्लोत्तर युग। इस युग में शुक्ल युग के बाद से आज तक लिखे गये सम्पूर्ण निबन्ध साहित्य को सम्मिलित किया जा सकता है। इस युग के अनेक निबन्धकारों ने शुक्ल जी की ही निबन्ध परम्परा को विकसित किया है। कथ्य और अभिव्यक्ति पद्धति दोनों में ही बहुत विस्तार हुआ है। नई-नई विचारधाराओं, वादों आदि का विवेचन और विश्लेषण होता रहा है। इस युग के प्रमुख निबन्धकार हैं— नन्द दुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० नगेन्द्र, शिवदान सिंह चौहान आदि। इन लोगों ने प्रमुख रूप से साहित्य और उसके विभिन्न रूपों और समस्याओं को अपनाते हुये निबन्ध लिखे हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी ने व्यापक अध्ययन मौलिक चिन्तन और सिद्धान्त प्रतिपादन से युक्त अनेक सुन्दर आलोचनात्मक निबन्ध लिखे तो आचार्य हजारी प्रसाद ने अपनी व्यक्तिनिष्ठ शैली में भावुक मानवतावादी, जागरूक चिन्तन और सूक्ष्म दृष्टि से परिपूर्ण निबन्धों की रचना की है।

इस युग में प्रगतिवादी आलोचक के रूप में प्रसिद्ध डॉ० रामविलास शर्मा ने व्यक्तिनिष्ठ शैली के कुछ बड़े सुन्दर निबन्ध लिखे हैं। इनके लेखन में व्यंग्य अपनी अलग ही छाप छोड़ता है। डॉ० नगेन्द्र के निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की अपेक्षा विषय ही प्रधान रहता है। इस युग में इतिहास, संस्कृति, पुरातत्त्व जैसे अनेक निबन्ध भी लिखे गये। 1950 के बाद हिन्दी में निबन्धकारों की कई नई पीढ़ी सामने आयी, जो विभिन्न सामयिक समस्याओं पर हास्य और तीखे व्यंग्यों से भरपूर शैली में नियमित रूप से बड़े सुन्दर, विचारोत्तेजक और रोचक निबन्ध प्रस्तुत करती हैं।

ऐसे निबन्धकारों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, यमुनादत्त वैष्णव श्रीलाल शुक्ल, रामनारायण लाल, नाडोडी कुट्टी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये लोग विभिन्न साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं में हास्य व्यंग्य के स्थायी स्तम्भों में बराबर लिखते रहते हैं। इनके निबन्धों में राजनीतिक धर्म, समाज आदि नाना प्रकार की समस्याओं, रूढ़ियों, प्रवृत्तियों आदि पर हास्य व्यंग्य मिश्रित शैली में बड़े तीखे परन्तु शालीन व्यंग्य किये जाते रहे हैं।

इस काल के निबन्धकारों के विषय में डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा ने कहा है—
“निबन्ध लेखन में व्यंग्य उनका सबसे बड़ा हथियार रहा है। वे विषय का विवेचन-विश्लेषण करते हुए बीच-बीच में अपने विरोधियों पर व्यंग्य बाण छोड़ते चलते हैं।”¹⁸

इस नवीन शैली में हिन्दी भाषा में व्यंजना रूपी एक नई शक्ति उत्पन्न होती है।

सन् 1960 के उपरान्त हिन्दी में निबन्ध का एक ऐसा नया रूप सामने आया जिसमें रिपोर्ताज, इन्टरव्यू तथा व्यक्तिनिष्ठ शैली के निबन्धों का मिलाजुला रूप एक अद्भुत सौन्दर्य और आकर्षण उत्पन्न कर देता है, ऐसे निबन्धों के लेखक किसी नगर के विभिन्न वर्गों के लोगों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों आदि से किसी समस्या को लेकर मिलते हैं और उनके सम्बन्ध में उनकी राय पूछते हैं। साथ ही विभिन्न वर्गों के लोगों की रूपरेखा रहन-सहन प्रतिक्रिया जानकर उनकी मुख मुद्राओं, हाव-भावों, वैचारिक क्षमता आदि का भी रोचक शैली में

वर्णन करते चलते हैं। मनोहर श्याम जोशी, केशवचन्द्र वर्मा, कैलाश नारद, अमृतलाल नागर, रामेश्वर शुक्ल, श्रीकान्त जोशी आदि ने नाना प्रकार के सुन्दर और रोचक निबन्ध लिखे हैं।

हिन्दी निबन्धों के समीक्षात्मक अध्ययन में देखते हैं कि हिन्दी निबन्ध अपने जन्मकाल से आज तक विषय, भाषा शैली आदि की दृष्टि से निरन्तर प्रगति करता चला आ रहा है और अब उसका रूप पर्याप्त वैविध्य पूर्ण प्रौढ़ और गम्भीर बन गया है। उसने समाज और व्यक्ति के सम्पूर्ण क्षेत्रों, स्थितियों, समस्याओं आदि को अपने वर्ण्य-विषय के भीतर समेट लिया है। उसने नाना प्रकार की शैलियाँ विकसित की हैं, भाषा की व्यंजना शक्ति को बढ़ाया है, समष्टि रूप से हिन्दी के निबन्ध साहित्य को पर्याप्त उन्नत और समृद्ध माना जा सकता है।

हिन्दी निबन्ध का जितना विस्तार और वैविध्य है उसे देखते हुये उसका विभाजन किया जाना भी अनिवार्य है। विषय, शैली, स्वरूप, भाषा आदि की दृष्टि से निबन्ध कई प्रकार के होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध की मुख्यतः तीन शैलियाँ मानी हैं— “ निबन्ध या गद्य विधान कई प्रकार के हो सकते हैं विचारात्मक, भावनात्मक, वर्णनात्मक। प्रवीण लेखक प्रसंग के अनुसार इन निबन्धों को बड़ा सुन्दर मेल भी करते हैं।”¹⁹ बाबू गुलाबराय ने अपनी पुस्तक ‘काव्य के रूप’ में निबन्ध को चार वर्गों में विभाजित किया है— वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक निबन्ध वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्धों में कल्पना तत्त्व की प्रधानता रहती है। विचारात्मक निबन्धों में बुद्धितत्त्व की, भावात्मक निबन्धों में रागात्मक तत्त्व की प्रमुखता होती है। इन निबन्धों में प्रथक-प्रथक शैलियाँ भी दिखाई देती हैं। प्रो० जयनाथ ‘नलिन’ के अनुसार निबन्धों का वर्गीकरण इस प्रकार है—“(1) विचारात्मक (2) भावात्मक (3) आत्मा परक या वैयक्तिक (4) वर्णनात्मक तथा (5) विवरणात्मक।”²⁰

निबन्ध साहित्य में कथात्मकता की प्रवृत्ति भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। हास्य व्यंगात्मकता से परिपूर्ण निबन्ध भी हिन्दी निबन्ध साहित्य का स्वरूप रहे हैं। निबन्धों के वर्गीकरण के विषय में शिवदान सिंह चौहान का मत है—

“निबन्ध क्या है, इस पर पश्चिम में काफी लिखा गया है। हमारे यहाँ की प्राचीन परिपाटी के समान ही वहाँ भी निबन्धों का वर्गीकरण किया गया, और विषयगत भेद और शैलीगत वैशिष्ट के आधार पर निबन्धों के प्रकार की लम्बी-लम्बी सूचियाँ तैयार की गई।”²¹

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर ये कहा जा सकता है कि निबन्ध विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, कथात्मक एवं हास्य व्यंग्यात्मक रूप के होते हैं।

विचारात्मक निबन्ध :

विचारात्मक, विवेचनात्मक विचार प्रवर्तक अथवा चिन्तन प्रधान निबन्धों में बौद्धिकता की प्रधानता होती है। इनमें तक का भी आश्रय लिया जाता है। यह निबन्ध प्रायः गम्भीर तथा प्रयोजनीय विषयों पर लिखे जाते हैं। शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष वही कहा जा सकता है, जहाँ पर विचारों को एक-एक खण्ड के रूप में कम शब्दों में बड़ी बौद्धिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। विचारात्मक निबन्धों को अधिक सरल और सुगम बनाने के लिए समास और व्यास शैली का आश्रय लिया जाता है। जिन निबन्धों में बुद्धि और हृदय का समान योग हो वे ही शुद्ध विचारात्मक निबन्ध कहे जा सकते हैं। ऐसे ही निबन्ध शुद्ध साहित्यिक निबन्ध होते हैं।

यही कारण है कि भारतेन्दु युग में निबन्ध रचना नाटक और कविताओं को पीछे छोड़कर निरन्तर सफलता के मार्ग की ओर अग्रसर थी डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु युग में लिखा है—“बंगला में उपन्यास, कविता, नाटक आदि के लिए आदर्श मिल सकते थे, परन्तु प्रतापनारायण मिश्र आदि के से निबन्ध हिन्दी की अपनी उपज थे।”²²

इन निबन्धों में विषय की विभिन्नता पायी जाती है। दर्शन या संस्कृति परम्परा या आधुनिक ज्ञान विज्ञान या आदर्श-उपदेश-समाज या राजनीति शास्त्र या साहित्य, जीवन या प्रकृति आदि विषयों का स्वतन्त्र और वैयक्तिक चयन आदि इन निबन्धों में देखा जा सकता है।

भारतेन्दु युग के निम्नलिखित निबन्ध विचारात्मक कोटि के हैं— मन की मौज, जीव की आशा, क्या लिखें, खुशामद, किसी गरीब का अमीर के नाम पत्र, भगवान बड़ा न करे, अकेला क्या-क्या करेगा आदि।

द्विवेदी युग में विचारात्मक निबन्धों की परम्परा सुदृढ़ हुई। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने बेकन के कुछ विचारात्मक निबन्धों का अनुकरण प्रस्तुत करके नई प्रेरणा प्रदान की। इस प्रकार के उल्लेखनीय निबन्ध इस प्रकार हैं— द्विवेदी जी का 'क्रोध' यशोदानंदन अखोरी का 'परोपकार' लक्ष्मीधर वाजपेयी का 'सभ्यता' मिश्रबन्धु का 'न्याय और दया' हरिभाऊ उपाध्याय का 'सौन्दर्य और सदाचार' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'क्रोध', 'लोभ' और 'प्रीति', 'श्रद्धा' और 'भक्ति', डॉ० हजारिप्रसाद द्विवेदी के 'विचार और वितर्क', 'गतिशील चिन्तन' आदि, जैनेन्द्र की 'जड़ की बात', 'साहित्य का श्रेय' आदि, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के 'पृथ्वी पुत्र', 'कला और संस्कृति' आदि, अज्ञेय का 'चिन्ता', इलाचन्द्र जोशी का 'विवेचना', उमेश चन्द्र मिश्र का 'सफलता' आदि। विचार-प्रचारक निबन्धों में भावों की अपेक्षा विचारों को प्राधान्य दिया गया है, इसीलिये ये विचारात्मक निबन्ध कहे जाते हैं। इनमें विचार किसी तत्कालीन समस्या से सम्बन्धित है, और उनका उद्देश्य मात्र विचार उपस्थित करना है, ज्ञान वृद्धि करना नहीं। विचारों का केवल प्रसार ही अभीष्ट है। इस बारे में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा का कहना है— "ऐसे निबन्धों को प्रचारक निबन्ध 'प्रोपेगंडा एसेज' कहा जा सकता है। अमरीका में आज कल ऐसे निबन्धों का आश्रय प्रचार के लिए किया जाता है। इन निबन्धों में भावोत्तेजक निबन्धों की भाँति उत्तेजना का अंश उतना ही नहीं होता, जितना बुद्धि-युक्त तर्क प्रणाली का।"²³

विचारात्मक निबन्ध की विकास यात्रा में शुक्ल युग को विचारात्मक निबन्धों का युग कहा जाता है। आचार्य शुक्ल ने इस युग को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया है। इस युग के रचनाकार थे— प्रसाद, गुलाबराय, डॉ० पीताम्बर दत्त, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल वरखी आदि। आधुनिक युग के पाठक की बुद्धि को उत्तेजित करने वाले साधनों से विचारात्मक निबन्ध परिपूर्ण हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि निबन्धकार अभीष्ट विषय को रोचक तथा सरस

बना सका है, क्योंकि उसने अपने निबन्धों में कौशल पूर्वक वर्णनात्मकता तथा भावात्मकता का सम्मिश्रण किया है। इस युग के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार हैं— हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं जैनेन्द्र कुमार आदि। इस युग में प्रायः साहित्यिक विषयों की ओर ही निबन्धकारों का ध्यान केन्द्रित रहा है।

भावात्मक निबन्ध :

जिस प्रकार विचारात्मक निबन्धों का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है उसी प्रकार भावात्मक निबन्धों का सीधा सम्बन्ध हृदय से होता है। भावात्मक निबन्धों में बुद्धि की अपेक्षा रागवृत्ति की प्रधानता रहती है। भारतेन्दु युग में भावात्मक निबन्धों की रचना प्राचीन पद्धति के आधार पर हुई है। भारतेन्दु भावात्मक निबन्ध के भी सूत्रधार माने जाते हैं। भारतेन्दु जी ने तथा उनके समकालीन निबन्धकारों ने भावात्मक निबन्ध ही अधिक लिखे। भावात्मक निबन्धों में व्यास शैली तो रहती है, किन्तु भावुक हृदय की आत्मभिव्यंजना के कारण धारा शैली के साथ-साथ तरंग और विक्षेप शैली का भी अंतर्भाव हो जाता है। भावात्मक निबन्धों के अन्तर्गत गद्य काव्य, गद्य गीत, वैयक्तिक निबन्ध संस्मरण, हास्य व्यंग्यात्मक, शृंगारिका प्रकथन आदि निबन्ध आते हैं।

इन निबन्धों के अन्तर्गत हम भारतेन्दु युग की दो प्रकार की रचनाओं को देखते हैं, एक गद्य काव्य और दूसरे विनोदात्मक तथा हास्यव्यंगात्मक निबन्ध। भावात्मक निबन्धों में भावुकता रहती है और इस संस्पर्श विशेष होता है। डॉ० ओंकारनाथ शर्मा कहते हैं— “भावात्मकता के साथ विचारों की अभिव्यक्ति ‘भंग तरंग’ में मिलती है, और भावात्मकता का रूप ‘बसन्त का अन्त’, ‘स्वप्न का खेल’ और ‘मन की वृत्ति’ में यह निबन्ध अपने ढंग का विलक्षण निबन्ध माना जाता है।”²⁴

भावात्मक निबन्धों का आरम्भ भी भारतेन्दु युग में हुआ था। द्विवेदी युग के भावात्मक निबन्धों में विचारात्मक का भी सामंजस्य हुआ। भावात्मक निबन्धकारों में माधव प्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा, गुलेरी, बाबू गोपाल राम गहमरी, पद्म सिंह शर्मा, तथा अध्यापक पूर्ण सिंह प्रमुख हैं। अध्यापक पूर्ण सिंह के भावात्मक निबन्ध हिन्दी निबन्ध साहित्य में अद्वितीय हैं।

निबन्धों का समग्र विकास शुक्ल युग में समुचित रूप से हुआ है। भारतेन्दु युग के भावात्मक निबन्धों का प्रमुख उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन रहा था। द्विवेदी युग में ज्ञान, विस्तार को प्रधानता दी गई और शुक्ल युग में भावात्मक निबन्ध प्रौढ़ तथा कवित्व प्रायः रूप रखते हैं। शुक्ल युग में एक नई शैली का प्रचलन हुआ इस युग में भावात्मक निबन्ध लिखने वाले निबन्धकार थे— डॉ० पद्म सिंह शर्मा, गोविन्द नारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, जयशंकर प्रसाद, वियोगी हरि, रामकृष्ण दास, चतुरसेन शास्त्री माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ० रघुवीर सिंह और बाबू गुलाबराय आदि थे।

आधुनिक युग में भावात्मक निबन्धों की पर्याप्त वृद्धि हुई तथा उनका प्रसार हुआ। समीक्षात्मक निबन्धों के अतिरिक्त आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति की संप्रति प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है। इस युग में निम्नलिखित निबन्धकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है—दिनेशनन्दिनी, अज्ञेय, शांति प्रसाद वर्मा, विशम्भर मानव, हजारी प्रसाद, प्रभाकर माचवे, जैनेन्द्र कुमार, बेढव बनारसी, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ० रांगेय राघव, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर आदि उल्लेखनीय हैं।

वर्णनात्मक निबन्ध :

वर्णनात्मक निबन्धों में निरूपण अथवा व्याख्या की प्रधानता रहती है। इन निबन्धों में कल्पना तत्त्वों की ही मुख्यता रहती है। क्योंकि इनमें मस्तिष्क अथवा तर्क का आश्रय नहीं रहता। नाना प्रकार के दृश्यों तथा स्थलों का ही प्रायः आकर्षण वर्णन होता है। इन निबन्धों में जब तक निबन्धकार की वैयक्तिकता पूर्ण रूप से मुखर नहीं होगी तब तक वे निबन्ध नहीं होंगे, केवल लेख रह जायेंगे। इसलिये वर्णनात्मक निबन्धों में निबन्धकार की वैयक्तिकता ही प्रमुख है। वर्णनात्मक निबन्ध की अन्य विशेषता यह है कि प्रायः प्रत्येक निबन्धकार अपने निबन्ध द्वारा एक सजीव चित्र उपस्थित करता है।

तीर्थ यात्रा, नगर, जाति दृश्यवर्णन, पर्व, त्योहार, मेले—तमाशे, दर्शनीय स्थान आदि का संश्लिष्ट वर्णन ही उसका प्रमुख लक्ष्य होता है। भारतेन्दु युग में यह निबन्ध मात्रा से अधिक लिखे गये। जैसे नैपाल का वृत्तान्त, चीन का वृत्तान्त, राजपूताने का वृत्तान्त, अलवर चरणद्वि, मथुरा, वर्षा की वहार, रेल यात्रा, सरयूपार

की यात्रा अयोध्या की यात्रा, वैद्यनाथ की यात्रा, आदि प्रमुख हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'आगरे की शाही इमारतें', प्रभात, जयपुर, माधव मिश्र की 'रामलीला' कृष्णबलदेव का 'बुन्देल खण्ड पर्यटन', गोपालदास गहमरी का 'चीन देश का विवरण' राहुल सांकृत्यायन के यात्रा सम्बन्धी निबन्ध महादेवी वर्मा की 'बद्रीनाथ यात्रा' आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु युग के वर्णनात्मक निबन्धों में नैतिक प्रयोजनीयता प्रधान हो उठी है। अनुप्रास प्रियता अथवा तुक जोड़ने की पूर्वकालीन प्रवृत्ति ज्यों की त्यों विद्यमान है। राधाचरण गोस्वामी, मोहन लाल मुरलीधर आदि ने भी वर्णनात्मक निबन्ध लिखे हैं। द्विवेदी युग में प्रायः ऋतु वर्णन, नगर वर्णन, यात्रा वर्णन, दृश्य वर्णन आदि पर निबन्ध लिखे गये हैं। विषय में विविधता देखने को मिलती है। द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी, वेणी प्रसाद शुक्ल, बाबू रामचन्द्र, केशव दयाल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, जी०पी० श्रीवास्तव, माधव प्रसाद मिश्र, ईश्वरी प्रसाद आदि द्विवेदी युगीन निबन्धकार हैं।

शुक्ल युग में दृश्य चित्रण के साथ यात्रा सम्बन्धी अच्छे निबन्ध लिखे गये इस संदर्भ में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा कहते हैं— "वर्णनात्मक निबन्धों में प्रायः स्थूल वर्णन परिपाटी प्रचलित रही है। परन्तु शुक्ल युग में सूक्ष्म अनुभव पर ही कल्पना से रंजित तथा वैयक्तिकता से समन्वित निबन्ध लिखे गये।"²⁵ आधुनिक युग में वर्णनात्मक निबन्धों का प्रचलन और लेखन धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। बृजलाल बियाणी का 'कल्पना कानन तथा वासुदेव शरण अग्रवाल के कुछ निबन्ध इस श्रेणी में आते हैं। इलाचन्द्र जोशी की 'महापुरुषों की प्रेम कथायें' आदि भी उल्लेखनीय हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस युग के उल्लेखनीय निबन्धकार हैं। इनके बारे में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा कहते हैं— "इन्होंने प्रायः सभी प्रकार की निबन्ध रचना की है— विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक और विवरणात्मक, आधुनिक पाश्चात्य-प्रणाली के वैयक्तिक निबन्ध लिखकर आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी निबन्ध साहित्य को गौरवन्वित किया है।"²⁶

कथात्मक निबन्ध :

कथात्मक निबन्ध में विशेष विषय का निरूपण तथा विस्तृत वर्णन रहता है। इसमें कल्पना तत्त्व की प्रमुखता रहती है। कथात्मक निबन्ध एक कुशल चित्रकार के सुन्दर चित्र के समान है। जिसको देखकर दर्शक मंत्र-मुग्ध सा रह जाता है और आनन्द विभोर हो उठता है। इन निबन्धों में वैयक्तिकता की छाप रहती है। इनमें जीवन, कथायें, घटनायें, आखेट इतिहास आदि विषय प्रधान होते हैं। भारतेन्दु युग में बहुत से निबन्धकारों ने अपनी निबन्ध रचनायें दी हैं— आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, लल्ली प्रसाद पाण्डेय, लक्ष्मण गोविन्द, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बृजलाल बियाणी, डॉ० वासुदेव अग्रवाल आदि प्रमुख हैं। भारतेन्दु युग में जीवन कथायें समुचित रूप से लिखी गई हैं।

पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी चौधरी बदरीनारायण, लाला श्रीनिवासदास, मुरलीधर पाठक, हरिश्चन्द्र उपाध्याय आदि भारतेन्दु युग में कथात्मक निबन्धों के सन्दर्भ में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा का विचार है— “इन निबन्धों में सामान्यतः सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विषय का परिचय या आलोचन धार्मिक तथा साहित्यिक निरूपण या विवेचन यात्रा सम्बन्धी विवरण या वर्णन आदि होते थे। सारांशतः निबन्ध के सभी प्रकारों की रचना हुई। विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक निबन्ध प्रकारों की रचना इस युग में आरम्भ हुई। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि सभी प्रकार की शैलियाँ भी अपनाई गई। हास्य व्यंग्यात्मक तथा विनोदात्मक शैली के साथ-साथ स्वप्न कथात्मक शैली भी अपनाई गई। ‘एक अद्भुत अपर्वू स्वप्न’, ‘स्वर्ण में विचार सभा का अधिवेशन एक अनोखा स्वप्न, यमपुर की यात्रा आदि इस युग के अद्वितीय उदाहरण हैं।”²⁷

द्विवेदी युग में कथात्मक निबन्ध के अन्तर्गत इतिहास, युद्ध जीवनी, कथा आदि से सम्बन्धित रचनाओं का विस्तार हुआ है। कथात्मक के अन्तर्भूत आत्मकथात्मक, स्वप्न कथात्मक रूपकात्मक निबन्ध अधिक लिखे गये। यशोदा नन्दन, महेन्द्र लाल गर्ग, सैय्यद अमीर अली, गहलौत, विन्धेश्वरी प्रसाद, उपाध्याय, शिव प्रसाद शर्मा आदि प्रमुख आत्म कथात्मक निबन्ध हैं। राजा शिव

प्रसाद सितारेहिन्द, राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, पुरुषोत्तम दास टंडन, बालकृष्ण भट्ट, विशम्भर नाथ शर्मा आदि प्रमुख निबन्धकार हैं। शुक्ल युग में अर्जुन, अवधविहारी, रायकृष्ण दास, बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नलाल बख्शी, श्रीराम शर्मा, महाराज पंचम सिंह आदि उल्लेखनीय कथात्मक निबन्धकारों के रूप में सामने आते हैं। वर्णन प्रधान तथा विवरण प्रधान निबन्धों का प्रचलन और लेखन कुछ कम दिखाई देता है। अब निबन्ध रचना व्यस्कास्वस्था को प्राप्त हुई है, पर वह गम्भीर और निच्छल रागात्मकता स्थिर नहीं रह पा रही है। इस युग के प्रमुख निबन्धकार हैं—देवेन्द्र सत्यार्थी, बृजलाल, शान्तिप्रिय द्विवेदी, जैनेन्द्र कुमार वासदेव शरण अग्रवाल, रामविलास शर्मा आदि उल्लेखनीय निबन्धकार हैं।

हास्य—व्यंग्यात्मक निबन्ध :

इस श्रेणी के अन्तर्गत वे निबन्ध आते हैं जो राजनीति, धर्म, समाज आदि की नाना प्रकार की समस्याओं, रूढ़ियों, प्रवृत्तियों आदि पर हास्य व्यंग्य मिश्रित शैली में रचित होते हैं। निबन्धकार बड़ी शालीनता के साथ जन सामान्य के विषय जीवन प्रतिक्रियाओं को ही अभिव्यक्त करते हैं। अधिकतर राजनीति और उसके कर्णधार नेता इनके व्यंग्य के लक्ष्य रहते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा कहते हैं— “इन निबन्धों में राजनीति, धर्म, समाज आदि प्रकार की समस्याओं, रूढ़ियों, प्रवृत्तियों आदि पर तीखे व्यंग्य किये जाते हैं। ये लोग एक प्रकार से जन सामान्य के विषय जीवन, प्रतिक्रियाओं को ही अभिव्यक्त करते हैं।”²⁸

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई प्रकार के हास्य—व्यंग्य निबन्ध रोचक शैली में लिखे हैं। भारतेन्दु युग में ‘ब्राह्मण’ पत्रिका के सम्पादक, प्रतापनारायण मिश्र थे और इस पत्रिका में हास्य—व्यंग्यात्मक तथा शिक्षाप्रद रचनायें रहा करती थीं। लेखकों की आलोचना भी व्यंग्य शैली में की जाती रही है। हास्य विनोद निबन्ध की शैली का ही गुण है। कि वह पाठकों के हृदय में सीधा प्रवेश पाते हैं। ‘होली है भाई होली है’, ‘हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर में’ आदि ऐसे निबन्ध हैं, जिनमें विनोद के साथ हास्य का संयोग भी हुआ है। द्विवेदी युग में सीताराम का

‘मनुष्य की आयु’ आदि निबन्ध उल्लेखनीय हैं। शुक्ल युग में आख्यात्मक संकेतों का हास्य रस की सृष्टि के लिये साधारण प्रयोग हुआ है। डॉ० गुलाबराय ने अपने निबन्धों में जीवन सामग्री के साथ-साथ विनोद का पुट भी रखा है।

यह हास्य पुट, शिष्य और स्वच्छ है, जिसकी महत्ता इसलिये और भी बढ़ जाती है कि लेखक स्वयं इस हास्य का अलम्बन बन जाता है। अन्य लेखक तो दूसरों को हास्य का विषय बनाते हैं, परन्तु गुलाब राय ने स्वयं अपने व्यक्तित्व, कृतित्व और विचारों को ही हास्य का विषय बनाया है। इनके हास्य निबन्धों की शैली की विशेषता ये भी है कि ये साहित्य वातावरण लिये हुये हैं। इस युग में बनारसी दास चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा, पाण्डेय वेंचन शर्मा ‘उग्र’ आदि ऐसे निबन्धकार हैं जिनके निबन्धों में हास्य व्यंग्य की शालीन प्रस्तुति है।

हास्य व्यंग्यात्मक रचना भारतेन्दु युग की विशेषता रही है, द्विवेदी युग में यह शैलीक्षीण हो गई, परन्तु आधुनिक युग में इसका पुनः विकास हुआ है। व्यंग्य और विनोद आत्माभिव्यंजक निबन्ध के सहयोगी तत्त्व हैं। इस सन्दर्भ में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा का कथन है— “पाश्चात्य निबन्धों में विनोद तो निबन्ध की चेतना ही है। बेढव बनारसी ने इस शैली के राजनीतिक निबन्ध लिखे हैं। प्रगतिवादी लेखकों के निबन्धों में हास्य व्यंग्य के स्थान पर तीखे प्रहार प्रधान हो जाते हैं। चुभती और पाबती बात कहने में वे कभी नहीं चूकते। श्री गोपाल व्यास ने हास्य-व्यंग्यात्मक सामाजिक निबन्ध लिखे हैं। डॉ० प्रभाकर माचवे का ‘मुँह’ भी हास्य-व्यंग्य का अच्छा उदाहरण है। श्री आनन्द कुमार की ‘बातचीत’ रामवृक्ष बेनीपुरी की ‘छलकती गगरी’, ‘लागत कलेजवा में चोट’ आदि इसी श्रेणी की रचनायें हैं।”²⁹

आधुनिक युग में हास्य व्यंग्य एवं विनोदात्मक शैली में श्री गोपाल प्रसाद व्यास हास्य के रसावतार कहे जाते हैं। ‘कुछ सच कुछ झूठ’ तथा मैंने कहा— “इनके शिष्ट साहित्यिक तथा राजनीतिक व्यंग्य विनोद से पूर्ण निबन्धों का संग्रह है। हरिशंकर परसाई के भी हास्य निबन्ध उल्लेखनीय हैं।

सन्दर्भ :

1. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 22, प्रकाशन—1964
2. दि आक्सफोर्ड डिक्शनरी (इंगलिश) भाग—3, पृ० 293
3. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 36
4. डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 210
5. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 12
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 276
7. शिवनाथ एम०ए० : भारतेन्दु युगीन निबन्ध, पृ० 16
8. डॉ० रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ० 56
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 276
10. डॉ० गुलाबराय : काव्य के रूप, पृ० 221
11. वही, पृ० 233
12. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 50
13. डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 204
14. डॉ० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु—युग, पृ० 89
15. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 276
16. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 210
17. डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 210
18. वही, पृ० 214
19. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 276
20. प्रो० जयनाथ 'नलिन' : हिन्दी निबन्धकार, पृ० 18
21. शिवदान सिंह चौहान : हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० 193
22. डॉ० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग, पृ० 89
23. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 88
24. वही, पृ० 102
25. वही, पृ० 186
26. वही, पृ० 250
27. वही, पृ० 135
28. डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 215
29. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 249



द्वितीय—अध्याय

**भारतेन्दु युगीन निबन्धों की
पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक
अध्ययन**

द्वितीय अध्याय

भारतेन्दु युगीन निबन्धों की पृष्ठभूमि का समीक्षात्मक अध्ययन

साहित्य तथा भाषा के विकास में उस देश की शिक्षा पद्धति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सभ्यता, संस्कृति के विकास तथा उत्थान के लिये शिक्षा अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक साधन होती है। अंग्रेजों की शिक्षा नीति ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को बहुत प्रभावित किया। अठारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध तक अंग्रेज संस्कृत भाषा की ओर बहुत अधिक आकृष्ट हो चुके थे। अंग्रेज शासक वारेन हेस्टिंग्स ने इस ओर विशेष व्यक्तिगत रुचि दिखाई। इस दौर में अनेक अंग्रेज विद्वान संस्कृत एवं अन्य पूर्वी देशी भाषाओं के अध्ययन में जी जान से जुटे हुये थे। इस सन्दर्भ में डॉ० कमला कानोड़िया ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में लिखा है—“अंग्रेज विद्वानों के एक दल ने भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्ययन के लिये 1784 में ‘एशियाटिक सोसायटी’ की स्थापना की। इन विद्वानों ने भारतीय प्राचीन बहुमूल्य ग्रन्थों का अनुवाद करके भारतीय साहित्य की समृद्धि को संसार के समक्ष रखा। अंग्रेज तथा भारतीय विद्वानों ने इस दिशा में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। राजा राममोहन राय, राजा राधाकान्त देव, महाराजा तेजसचन्द रायबहादुर, वर्दवान जयनारायण, जैसे जन सेवी महानुभावों ने पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर भारतीय ज्ञान विज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किये।”¹

1791 ई० में बनारस के रेजीमेंट जोनाथन के प्रयासों से बनारस में एक संस्कृत कॉलेज स्थापित किया गया। अंग्रेजों एवं हिन्दू धनवानों के अर्थदान से कलकत्ता में एक हिन्दू कॉलेज स्थापित किया गया, जिसमें अंग्रेजी और संस्कृत की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। 1816-17 ई० में राममोहन राय ने हिन्दू बालकों की निशुल्क शिक्षा हेतु कलकत्ता में एक अंग्रेजी विद्यालय की स्थापना

की। जयनारायण ने बनारस में अंग्रेजी, फारसी, हिन्दी, बंगला की शिक्षा हेतु विद्यालय स्थापित किया।

भारतेन्दु काल तक भारतीय प्राचीन साहित्य की खोज का बहुत सा कार्य हो चुका था। भारतेन्दु काल में वैदिक और संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन प्रारम्भ हो गया और अनेक संस्कृत ग्रंथों की खोज और प्रकाशन का कार्य हुआ। अंग्रेज विद्वानों ने भारतेन्दु काल में देशी भाषाओं और उनके व्याकरण, धार्मिक साहित्य, लोक साहित्य आदि की ओर विशेष रुचि दिखाकर तत्कालीन साहित्यकारों को नवसाहित्य निर्मित करने की प्रेरणा प्रदान की। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारतीयों की शिक्षा हेतु मुसलमानों के लिये मदरसा, हिन्दुओं के लिये संस्कृत कॉलेज तथा अंग्रेजों के लिए 'फोर्टविलियम कालेज' की स्थापना की। 1887 ई० में कलकत्ता में एक आधुनिक भारतीय भाषाओं, बंगला, हिन्दी, उर्दू की शिक्षा देने वाले मुंशियों की नियुक्ति की गयी और शासन-सुविधा के दृष्टिकोण से कम्पनी सरकार का ध्यान हिन्दी उर्दू, बंगला पर भी केन्द्रित हुआ। बनारस के संस्कृत कॉलेज में भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनरुद्धार पर विशेष जोर दिया गया। इस संस्था में हिन्दुओं के कानून, साहित्य, धर्मशास्त्र, औषधि, कला, तर्कशास्त्र, काव्य इत्यादि, अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेजों द्वारा शिक्षा संस्थानों की स्थापना का दूसरा उद्देश्य था, साधारण जनता को संतोष देना यह नीति, औरियेन्टलिस्ट स्कूल ऑफ एजुकेशन पॉलिसी कहलाई।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास की दृष्टि से फोर्टविलियम कॉलेज का सराहनीय योगदान रहा है। इस सन्दर्भ में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कहना है—“इस कॉलेज की स्थापना का मूल उद्देश्य था ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारत स्थित अंग्रेज कर्मचारियों की नैतिक दशा को सुधारना और एक अनुशासनपूर्ण प्रणाली द्वारा उनके देश विषयक ज्ञान में अभिवृद्धि करके उन्हें व्यापारियों के स्थान पर नीति कुशल शासक बना देना।”² भारतीय भाषाओं में हिन्दी का भी विकास सुचारु रूप से हो रहा था। देश में अनेक विद्यालयों की स्थापना हो रही थी। 19 अप्रैल, 1848 की एक योजना के आधार पर उत्तर पश्चिमी प्रान्त की स्थानीय सरकार ने अपना एक प्रस्ताव 9 फरवरी, 1850 को पास किया। जिसके अनुसार प्रयोग के

रूप में राज्य के आठ जिलों बरेली, शाहजहाँपुर, आगरा, मथुरा, मैनपुरी, अलीगढ़, फर्रुखाबाद, इटावा के तहसीलदारी स्कूल खोलने की योजना बनायी।

हिन्दी प्रदेश में वर्नाक्यूलर भाषाओं में हिन्दी को प्रतिनिधि रूप प्रदान किया गया और इसी भाषा के प्रचार और शिक्षा के प्रबंध पर ध्यान दिया गया। इस प्रान्त में पढ़ने वाली जनता की संख्या सर्वाधिक थी। जनता की बात चीत का माध्यम यही भाषा थी।

भारतेन्दु युग के समकालीन निबन्धकारों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भाषा के सन्दर्भ में लिखा है—“लल्लुलाल के समान इनकी भाषा में न तो ब्रजभाषा के रूपों की वैसी भरमार है और न परम्परागत काव्य भाषा की पदावली का स्थान—स्थान पर समावेश। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहाँ तक हो सका है खड़ी बोली का ही व्यवहार किया है।”³

भारत में प्रेस तथा मुद्रणयन्त्रों के प्रचार और समाचार पत्रों के प्रकाशन तथा विकास का गहरा सम्बन्ध है। सोलहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा सर्वप्रथम दक्षिण भारत में मलयालम और तमिल अक्षरों के प्रेस की स्थापना की गई। 1778 ई० में एनड्रूज ने हुगली में बंगला प्रेस की स्थापना की जिसके अनुकरण पर हिन्दी टाइप बने और हिन्दी प्रेस की स्थापना हुई।

1817 ई० में रामपुर के बैपटिस्ट मिशनरियों ने ईसाई धर्म प्रचार के उद्देश्य से देशी भाषा का सबसे पहला पत्र ‘दिग्दर्शन’ नाम से बंगला में निकाला गया। इसी साल कलकत्ता और श्री रामपुर से और भी दो बंगाल के पत्र ‘बंगला गजेट’ एवं ‘समाचार दर्पण’ के नाम से प्रकाशित हुये। भारतेन्दु से पहले के निबन्ध की पृष्ठभूमि में इन समाचार पत्र—पत्रिकाओं का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। प्रारम्भिक रूप से लेख के ढंग में निबन्ध इन्ही पत्र—पत्रिकाओं में लिखे गये 1826 ई० को युगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में हिन्दी का प्रथम साप्ताहिक पत्र ‘उदन्त मार्तण्ड’ कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इसके बाद बंगदूत (1829) का प्रकाशन हुआ। 1845 ई० में बनारस से राजा शिवप्रसाद के सम्पादन में ‘बनारस अखबार’ का प्रकाशन हुआ और 1846 ई० में कलकत्ता से ‘मार्तण्ड’ नामक हिन्दी पत्र का प्रकाशन हुआ।

भारतेन्दु युगीन निबन्धों में पृष्ठभूमि का आधार इस काल के हिन्दी भाषा के विकास पर निर्भर करता है। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लेखकों में लेखन की रुचि उत्पन्न हुई और उनके लेखों का प्रारूप ही भारतेन्दु युगीन निबन्धों का अविकसित रूप है। प्रारम्भिक लेखन कार्य में फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रयासों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतेन्दु काल में जिस खड़ी बोली हिन्दी को गद्य एवं पद्य की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया उसे 18वीं शताब्दी तक बोलचाल की भाषा के रूप में प्रायः हिन्दुस्तानी कह कर पुकारा जाता था। इस हिन्दुस्तानी के लिये खड़ी बोली शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फोर्टविलियम कॉलेज में 1803 ई० में लल्लू लाल एवं सदलमिश्र ने अपने 'प्रेमसागर' एवं 'नासिकेतोपाख्यान' में किया। 1804 ई० में गिलक्रास्ट ने 'दि हिन्दी रोमन आर्थो एपिग्रेफिक अल्टीमेटम' में दो बार खड़ी बोली शब्द का प्रयोग किया है।

फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर भी बहुत से साहित्यकारों ने स्वतन्त्र रूप से गद्य-रचना की, जिसका साहित्य के विकास में विशेष महत्त्व है। स्वतन्त्र साहित्यकारों में मथुरानाथ शुक्ल, सैयद इंशा अल्ला खाँ और सदासुख लाल, 'नियाज' विशेष उल्लेखनीय हैं। उन लोगों ने क्रमशः पंचाग-दर्शन (1800 ई०), 'रानी केतकी की कहानी' (1798-1803 ई०) और 'सुखसागर' (1811 ई०) में लिखा। वैसे ये सभी पुस्तकें सामान्य स्तर की हैं इनमें देशज शब्दों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है पर गद्य की प्रारम्भिक पुस्तकें होने के कारण इनका हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

इसके बाद लगभग पचास वर्ष तक खड़ी-बोली-गद्य का विकास स्थिर रहा। इसका प्रमुख कारण सरकार की ओर से हिन्दी गद्य की उपेक्षा ही थी। सरकार हिन्दी से मुँह मोड़कर अंग्रेजी के प्रचार में कटिबद्ध थी। फोर्ट विलियम कॉलेज भी अब अंग्रेजी का ही पक्ष ले रहा था। अंग्रेजी के बढ़ते हुए प्रचार ने लोगों को अपनी ओर खींचा जिससे हिन्दी का विकास रुक गया। आगे चलकर मुसलमानों के प्रयास से उर्दू को सरकार द्वारा कुछ प्रोत्साहन भी मिला पर हिन्दी उपेक्षित ही रही। उर्दू और फ़ारसी को अदालत में स्थान मिल जाने से उसकी ओर लोगों की अभिरुचि बनी रही। इसके अतिरिक्त सर सैयद अहमद खाँ के

प्रयास से भी उर्दू की बड़ी उन्नति हुई। सरकार की इस विभेद नीति और अंग्रेजी के प्रति पक्षपात से हिन्दुओं में भी प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने हिन्दी प्रचार का आन्दोलन प्रारम्भ किया इस सन्दर्भ में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा का कथन है—“सन् 1862 के लगभग राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दी ने हिन्दी का पक्ष लिया और शुद्ध खड़ी बोली में ‘राजा भोज का सपना’ लिखा पर अपनी राजभक्ति के कारण वह इस दिशा में आगे न बढ़ सके।”⁴

हिन्दी निबन्ध की पृष्ठभूमि के रूप में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य की भूमिका में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है— “कॉलेज में हिन्दुस्तानी पढ़ाने के लिये मुंशी लल्लूलाल की नियुक्ति की गई। 1803 ई० तक कॉलेज से संस्कृत, फारसी, अरबी, बंगला, हिन्दुस्तानी, तमिल, मराठी आदि भाषाओं के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुये। कॉलेज में जब हिन्दवी (आधुनिक अर्थ में हिन्दी) के पठन पाठन की आवश्यकता होती थी तो उसके लिये विशेष प्रबंध किया जाता था। इसी विशेष प्रबन्ध के अन्तर्गत लल्लूलाल और उनके उत्तराधिकारियों को कॉलेज में नौकरी मिली तथा ‘प्रेमसागर’ और इसी प्रकार के अन्य हिन्दी के ग्रन्थों की रचना हुई।”⁵

ब्रज भाषा के स्थान पर गद्यकारों ने खड़ी बोली के रूप को अपनाना अधिक उचित समझा भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों की भाषा के सन्दर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक में लिखा है—“तब के लेखकों ने खड़ी बोली में काफी और उच्चकोटि की रचना नहीं की। इसका कारण स्पष्ट है। उनकी भाव—व्यंजना का प्रधान माध्यम ब्रजभाषा थी। यद्यपि उन्होंने इस बात का अनुभव किया था कि गद्य और पद्य में दी भाषाओं या बोलियों का प्रयोग अनुचित है, फिर भी ब्रजभाषा के विशाल साहित्य, उसके ऐतिहासिक महत्त्व और उसकी सरसता के कारण वे उससे शीघ्र ही पीछा नहीं छोड़ा सके। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में नये प्रयोग करके इस बात का प्रमाण दिया था कि वह कविता की भाषा में परिवर्तन चाहते हैं। खड़ी बोली में तब जो भी कविता लिखी गई, उसे पढ़ते हुए आज एक विचित्र आनन्द का अनुभव होता है।”⁶

अंग्रेज शासकों ने शासन-सुविधा की दृष्टि से भारतीयों में शिक्षा-प्रचार की कई योजनाएँ बनाई। 1836 तक शासन कार्य में, सरकारी कार्यालयों में फारसी भाषा का प्रमुख स्थान रहा और साथ ही हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का प्रयोग किया जाता था।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ-साथ इस देश की सामाजिक संघटना में विघटन और परिवर्तन लक्षित होने लगा।

सामाजिक पृष्ठभूमि :

भारत वर्ष एक धार्मिक परिवेश से परिपूर्ण देश है। इसी कारण यहाँ के राष्ट्रीय उत्थान के प्रथम पथ प्रदर्शन धर्म सुधारक के रूप अवतीर्ण हुये। आधुनिकता समर्थक बहुसंख्यक शिक्षितों ने यह अनुभव किया कि पराधीनता में भी हमें अपनी प्राचीन संस्कृति की रक्षा करनी चाहिये। उन्होंने उसे आधुनिक वैज्ञानिक भाषा और अर्थ प्रदान करने की सफल चेष्टा की। इसी दिशा में राजा राममोहन राय के प्रयत्नों से हिन्दू धर्म के अन्तर्गत सन् 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। राममोहन राय पाश्चात्य शिक्षा तथा विचार धारा से प्रभावित थे। मानव की सेवा के साथ-साथ भारतीय समाज के पुनुरुत्थान की भावना उनका उद्देश्य था। सन् 1813 से 1830 के सक्रिय सार्वजनिक जीवन में उन्होंने समाज जागरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

राममोहन राय की मृत्यु के बाद भी ब्रह्मसमाज जीवित रहा श्री केशव सेन उग्रवादी समाज सुधारक के रूप में अवतीर्ण हुये। 1866 में भारतीय ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई जिसने भारतीय समाज का नवीन पथ प्रदर्शन किया। केशवचन्द्र जिस उत्साह से भारतीय संस्कृति का उद्घोष करते थे उसी उत्साह से पाश्चात्य संस्कृति का भी 1875 में बंबई में आर्यसमाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा हुई। स्वामी जी ने वेदों को प्रमाण मानकर भारतीय संस्कृति की नई व्याख्या की। आर्यसमाज का हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता को झकझोरने के अतिरिक्त जनसाधारण में शिक्षा प्रसार का कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है। स्वामी दयानन्द ने भारत में प्रचलित अहिन्दू धर्मों की ही आलोचना नहीं की, उन्होंने हिन्दू धर्म की

रुढ़िवादिता और उसमें प्रचलित अंधविश्वास पर भी प्रहार किया और भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

भारतेन्दु युगीन परिस्थितियों में तत्कालीन सामाजिक बदलाव भी महत्त्वपूर्ण है, अंग्रेजी शासन स्थापित होने के समय और उसके अन्तर्गत हिन्दी प्रदेश का सामाजिक जीवन अनेक कट्टर, गतिहीन, रुढ़िबद्ध, असामाजिक और अनुदार अंधविश्वासों, कुरीतियों और कुप्रथाओं में भरा हुआ था। इस युग की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं— “समाज तालाब की भाँति था, जिसके जल की उन्मुक्त गति अवरुद्ध हो गई थी और फलतः जिसका पानी सड़कर नाना प्रकार के विकार उत्पन्न कर रहा था। सड़ा पानी निकाल कर तथा स्वच्छ जल भरने वाला कोई न था। शायद सड़े पानी के निकास का रास्ता ही होगा भूल गये थे। समाज में अविद्या का अंधकार चारों ओर फैला था। पूरी सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था अज्ञान-गर्त में डूबे हुए ब्राह्मणों और पंडों-पुजारियों के हाथ में थी।”⁷

भारतेन्दु युगीन निबन्ध की सामाजिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत हम देखते हैं कि विवेच्यकाल में धर्म का आधार प्रायः अन्धविश्वास, परम्परा पालन और अज्ञानता से परिपूर्ण था। हिन्दुओं के जीवन के प्रत्येक धार्मिक क्रिया-कलाप में पूजा विधान का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था। किसी भी देवी देवता की पूजा करना उनका आवश्यक दैनिक कर्तव्य था। धर्म गुरुओं, साधु सन्तों तथा ब्राह्मणों की पूजा करके वह कृतकृत्य हो जाता था। हिन्दुओं के लिये तीर्थ यात्रा परलोक सुधार का सर्वोत्तम साधन माना जाता था। अपने जीवन में चारों धामों की तीर्थ यात्रा प्रत्येक हिन्दू के मन में लालसा होती थी। तीर्थ स्थानों के पण्डे धर्म-इच्छुक तीर्थ यात्रियों को धर्म पुण्य के नाम पर तरह-तरह से लूटा भी करते थे। हिन्दू स्त्रियाँ अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये मुसलमान पीरों को बड़ी निष्ठा के साथ पूजती थीं। जटाधारी, भस्मांगी, पाखंडी साधुओं ने भोलीभाली अनपढ़ जनता पर धार्मिक आतंक जमा रखा था। पाखंडी साधू सन्यासियों के धार्मिक दुराचार के विषय में भारत जीवन पत्रिका में लिखा है—“आप लोग अपने मन्दिर के पुजारियों की करतूति प्रतिदिन अपनी आँखों से देखते हैं। यहाँ तक कि बहुधा अंग्रेजी कर्मचारियों में भी उनके लज्जित

मुकदमात दायर होकर लोगों को हँसी दिलाते हैं, तृप्ति के महन्त का मुकदमा सबको विदित होगा, जबकि आज लोग मन्दिरों को परम पवित्र समझते हैं तो फिर क्या पवित्र स्थानों में अपने देवताओं के सामने रंडियों और नक्कालों को नचाना और निर्लज्ज राग गवाना और इन्द्रसभा आदि स्वांग दिखलाना उचित है?"⁸ विवेच्यकाल में लोग संसार को माया मानते थे और कहते थे कि माया से मुक्ति पाकर जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं। ए०यूसुफ अली ने अपनी पुस्तक में लिखा है—“कि वेदान्त में मायावाद का हिन्दुओं के आध्यात्मिक जीवन में विशेष स्थान था।”⁹

परिवार के कठोर बन्धनों में बँधे हिन्दुओं के उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों का ह्रास हो गया था और उनके जीवन में बाह्य आडम्बरों तथा सामाजिक कुरीतियों का समावेश हो गया था। विधवाओं की समाज में बड़ी दुर्दशा थी। युग कार्यों में उनका उपस्थित रहना अपशकुन माना जाता था।

तत्कालीन समाज में इतनी रूढ़ियों के बाद भी परिवर्तन एवं विचारों में क्रान्ति भी दिखाई देती है इस सन्दर्भ में किशोरीलाल गुप्त का कहना है—“भारतेन्दु युग में सामाजिक विचारों में क्रान्ति हो रही थी। लोगों के दो दल स्पष्ट ही दिखाई देते थे। एक दल में तो वे रूढ़िवादी थे जो समाज में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए तत्पर न थे, दूसरे में वे क्रान्तिकारी थे जो समाज में आमूल परिवर्तन कर देना चाहते थे। भारतेन्दु स्वयं इन दोनों दलों में से किसी में नहीं थे। वे दोनों के बीच की कड़ी थे। वे आमूल परिवर्तन तो नहीं चाहते थे, परन्तु आवश्यक सुधार करने के लिए उत्सुक एवं तत्पर रहते थे।”¹⁰

मुसलमानी शासन काल से चली आ रही पर्दा प्रथा के कारण स्त्रियों का जीवन घुटा जा रहा था। बहुविवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह, सतीप्रथा, शिशु हत्या, देवदासी प्रथा, कुलीन प्रथा जैसी सामाजिक कुप्रथाओं ने स्त्रियों का सामाजिक मानदण्ड बहुत नीचा कर दिया था।

भारतेन्दु युगीन राजाओं तथा जमींदारों का वर्ग अपने उत्साह तथा एकता की भावना को अंग्रेजों के हाथों बेच चुके थे। रईसों के लड़के कबूतर उड़ाने, पतंगबाजी तथा बुलबुलों को पालने में मस्त थे। ये लोग शतरंज, नाच तमाशों,

खेलकूद, जश्न एवं नशे में डूबे रहते थे। हिन्दी प्रदेश के लोग साधारणतया तीखे नाक नक्श और गेंहुँआ वर्ण के होते थे। नवशिक्षित लोग पाश्चात्य सभ्यता के अनुयायी थे। इस काल में अंग्रेजों और भारतीयों के पारम्परिक सामाजिक सम्बन्ध बहुत संतोष प्रद नहीं थे। इस काल में ईसाई धर्म के प्रचार हेतु विभिन्न मिशनरियाँ भारत में काम कर रही थीं। इस काल में अनेक ईसाई धर्म प्रचार संबंधी पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ मंगल समाचार का दूत, मतपरीक्षा, ज्योति रुदय, धर्म पुस्तक, शिव परीक्षा, सच्चा विश्वास, सुन्दर पगड़ी की कथा, हीरे की कथा, तारा का वृत्तान्त इत्यादि। इस दौर में मुसलमानों में सल्तनत खोने के उपरान्त नैराश्य और उदासी के भाव छा गये थे। उनमें आत्मबल नहीं रह गया था। वे 'कुरान' की शिक्षा ग्रहण करना ही अच्छा समझते थे। अधिकांश मुसलमान पाश्चात्य ज्ञान से विरत थे पर हिन्दुओं के नवजागरण से उत्साहित होकर उनमें भी समय के साथ चलने की भावना जागृत हुई, इस काल में इस्लाम धर्म का अध्ययन करने के लिए कुछ संस्थायें भी स्थापित हुई। सर सैय्यद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में मोहम्मडन ऐंग्लोओरियन्टल कॉलेज की स्थापना की। पटना और मुरादाबाद में बहावी आंदोलन 1870 ई० तक चलता रहा और उसने इस्लाम के सादगीपूर्ण जीवन पर बल दिया। पंजाब में अहमदिया आंदोलन भी मुसलमानों में सुधार का कार्य कर रहा था।

आर्थिक पृष्ठभूमि :

भारतेन्दु युग की आर्थिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत यह कहा जा सकता है कि इस काल में देश की आर्थिक स्थिति में युगान्तरकारी परिवर्तन हुये। इन परिवर्तनों का देश के सांस्कृतिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दी प्रदेश के आत्मनिर्भर गाँव, इस प्रदेश के आर्थिक संगठन की इकाई थे। इन गाँव के बीच-बीच नगर भी स्थित थे। जिनका राजनैतिक अथवा धार्मिक एवं व्यावसायिक महत्त्व था। कृषि की सर्वाधिक महत्त्व का उद्योग था। अनाज मूल्य का माप दण्ड था जो ग्रामवासियों द्वारा दूसरी वस्तुओं के विनिमय के साधन के रूप में काम आता था। अंग्रेजी शासन के द्वारा किये गये आर्थिक परिवर्तनों ने देश की प्राचीन आर्थिक व्यवस्था को अस्त व्यस्त किया तथा देश में एक नयी पूंजीवादी व्यवस्था

का जन्म हुआ जो जनहित के अनुकूल नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि धन धान्य से परिपूर्ण हिन्दी प्रदेश के आर्थिक विकास की गति मन्द हो गयी और उसकी प्राचीन समृद्धि का स्रोत यकायक रुक गया और धीरे-धीरे शुष्क होने लगा।

भारतेन्दु युगीन आर्थिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में किशोरीलाल गुप्त अपनी पुस्तक में लिखते हैं—“भारतेन्दु बाबू ने अपने लघु जीवन में पर्याप्त भ्रमण किया था और भारत की आर्थिक दुरवस्था से पूर्ण परिचित थे। उनकी समझ में भारत की निर्धनता का मूल कारण है उनके धन का उठकर विलायत चला जाना।”¹¹

कम्पनी के शासन काल में भारत की आर्थिक स्थिति अधिक दयनीय हो गयी थी। अंग्रेजों ने बंगाल पर प्रभुता स्थापित करके देश के प्रमुख व्यापार पर अपना एकाधिकार बना लिया था। इनके एजेन्ट देश भर में घूम-घूम कर देश के सारे उत्पादन को खरीदते और बेचते थे। उत्पादकों को बल पूर्वक अग्रिम मूल्य दे दिया जाता था। एक भारतीय की औसतन वार्षिक आय केवल बीस रुपये थी। 40 से 80 प्रतिशत भारतीय आजीवन अधभूखे हैं।”¹²

कम्पनी शासन काल में जेम्स विलसन की अर्थ सदस्य के रूप में नियुक्ति हुई। उसने अर्थ प्रशासन का ढाँचा संगठित किया। इन्कम टैक्स के नियम बनाये गये और वार्षिक बजट की प्रथा प्रारम्भ हुई। भूमि सुधार की ओर भी शासकों का ध्यान गया। स्थायी बंदोवस्त से जमींदारों को लाभ था। एक अंग्रेज अफसर को उद्धृत करते हुये रामगोपाल अपनी पुस्तक में लिखते हैं—“उत्तर भारत का धनीसमाज अत्यन्त वैभव और अधिकासम्पन्न है, सामान्य जनता सर्वथा गुलाम और दरिद्र है। दरिद्रता इतनी है कि उनके जीवनयापन की दुर्दशा का वर्णन किया ही नहीं जा सकता.... वे एकसा ही भोजन करते हैं जरा सी खिचड़ी उनका आधार है। भयंकर सर्दी के रातें वे मकान के आगे कंड़े की आग तापकर काट लेते हैं।”¹³

इतिहास ग्रंथों आदि के वर्णनों से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समाज के तीन प्रकार के वर्ग थे (1) शासक वर्ग (2) धनी वर्ग (3) जनसाधारण वर्ग। प्रथम वर्ग पीड़क, द्वितीय शोषक और तृतीय वर्ग शोषित रहा है। जो कठिनाई से ही अपना उदरपोषण कर सकता था। देश के अधिकांश भागों में मजदूरी धान्य के रूप में चुकाई जाती थी। मजदूर कठिनाई से अपना गुजारा कर

पाते थे। देश में बार-बार अकाल पड़ते थे और सरकार प्रत्येक स्थिति में लगान वसूल करती थीं। सरकार ने नहरों का निर्माण कराया जो उनकी आय का साधन बनीं। वहीं छोटे किसानों ने कुएँ, तालाब आदि खोदकर वर्षा के पानी को जमा करने का प्रयत्न किया। किसान अन्न की अपेक्षा कपास की खेती पर अधिक ध्यान देते थे क्योंकि अन्न की अपेक्षा वह अधिक लाभदायक थी।

पश्चिम में विज्ञान की प्रगति ने मशीन युग को जन्म दिया। भारत में यह युग बहुत धीरे-धीरे आया। सन् 1818 ई० में कलकत्ता में पहली सूती मिल स्थापित हुयी। सन् 1880 ई० तक सारे देश में उनकी संख्या 56 हो गई। कोयले की खाने भी काम करने लगी। सरकार ने बजट घाटे को पूरा करने के लिये भारतीय वस्त्रों पर 3.5 प्रतिशत टैक्स लगा दिया। रेल तार और डाकखानों से भी सरकारी आय के साधन बढ़ गये।

राजनीतिक पृष्ठभूमि :

ईस्ट इंडिया कम्पनी के माध्यम से भारत देश पर अंग्रेज़ अपना शासन चला रहे थे, और लगातार देश के भागों पर धीरे-धीरे अपने साम्राज्य की नींव खोदने में सफल हो रहे थे। सन् 1798 ई० में लार्ड वेलेजली बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। उसने अवध के नवाब वज़ीर खाँ को आत्म समर्पण करने पर मजबूर कर दिया। सन् 1748 में अंग्रेज़ों को इलाहाबाद का किला भी मिल गया। राज्य विस्तार के सामरिक प्रयत्नों की शृंखला में जनरल लेक ने सन् 1803 ई० में अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया और इसी साल सितम्बर में दिल्ली तथा दिल्ली के बादशाह पर भी अधिकार कर लिया। 1803 के नवम्बर में लासवारी की प्रसिद्ध लड़ाई लड़ी गयी और उत्तरी भारत में 17 नवम्बर को फरुखाबाद में अंग्रेज़ों के हाथों होल्कर की सत्ता भी समाप्त हो गई। दिल्ली की लड़ाई में सिन्धिया हार गया तथा दिसम्बर 1803 को सिन्धिया ने सुर्जी अर्जुन गाँव नामक स्थल पर अंग्रेज़ों से एक सहायक सन्धि कर ली जिससे जयपुर, जोधपुर, मोहद, अहमदनगर, भड़ोच तथा गंगा यमुना का मध्यवर्गी प्रदेश अंग्रेज़ों को प्राप्त हो गया और ब्रिटिश राज्य की सीमा हिमालय को स्पर्श करने लगी।

1823 ई० तक कम्पनी शासक की सीमा प्रायः हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक तथा सतलज से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक फैली हुई थी। 1826 ई० को अंग्रेजों ने भरतपुर किले पर अधिकार कर लिया। 1836 तक अंग्रेज पश्चिमोत्तर सीमा तथा पूर्वी सीमा की सुदृढ़ता के लिये अफगान सिख तथा ब्रह्मनिवासियों के साथ संघर्ष में व्यस्त रहे। 1848 ई० में लार्ड डलहौजी ने शासन भार ग्रहण किया। डलहौजी के शासन काल में अनेक देशी राज्य अंग्रेजी राज्य में मिलाये गये। 1856 ई० में अवध के विलीनीकरण से अंग्रेजों का हिन्दी प्रदेश पर पूर्णाधिकार हो गया। मुगल सम्राट की पेन्शन की रकम में कमी कर दी गई और उसे किला खाली करने का आदेश दे दिया गया।

सन् 1857 ई० तक अंग्रेजों के साम्राज्यवादी प्रसार का युग समाप्त हो चुका था। ऊपर के शान्त वातावरण के नीचे दबा हुआ असंतोष का भयानक ज्वालामुखी फटने को आतुर था, जो 1857 के देशव्यापी भीषण विद्रोह के रूप में फट पड़ा, जो भारतीय विद्रोह स्वातन्त्र्य युद्ध सिपाही गदर, महान क्रान्ति आदि के नामों से अभिहित किया गया। इस विद्रोह के परिणाम स्वरूप कम्पनी शासन का अन्त हो गया। अंग्रेज साम्राज्य अब पूर्ण रूप से भारत पर स्थापित हो गया।

व्यापारिक हित साधने के लिए अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी साम्राज्यवाद की सीमा तक पहुँच गई राजनीतिक रूप से भारतीय समाज वही सब कुछ करने को विवश था जो कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ चहाती थीं यह बात डॉ० बच्चन सिंह के इस कथन से भलीभाँति समझी जा सकती है—“सन् 1857 का संघर्ष सामंतीय शक्तियों और पूँजीवादी शक्तियों की टकराहट थी। स्वाभाविक था कि सामंतीय शक्तियाँ पराजित होती। इस संघर्ष के फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त कर दी गई और भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक तथा प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। इस देश के लोग भी नये संदर्भ में कुछ न कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य हुए।”¹⁴

क्रान्ति के पश्चात् लार्ड कैनिंग (1857-1861), एल्गिन (1862-1863), लारेंस (1861-1869), मेयो (1869-1872) और यार्क-ब्रुक (1872-1876) तक

व्यवस्था में सुधार ही होते रहे। 1877 में लिटन ब्रिटिश भारत का सर्वनर जनरल बना। उसने भारत आते ही दिल्ली दरबार किया और विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी बना दिया। इस नई नीति के अनुसार भारतवर्ष इंग्लैण्ड का उपनिवेश मात्र बन गया। दोनों में बराबरी का दर्जा न रह गया था। भारत में इंग्लैण्ड का साम्राज्य केवल शक्ति पर ही कायम था। उदारवादी विचारक अंग्रेजी सभ्यता के कायल थे। इस सन्दर्भ में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ण्य कहते हैं—“उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में उदारवादी राजनीतिक विचारों का प्रधान्य रहा। उदार विचारों के समर्थकों में अंग्रेजी राज्य के आदर्शों में विश्वास रहा और वे नव शिक्षा प्रदान करने, रेल, डाक, तार, प्रेस आदि नवीन वैधानिक साधनों का प्रचार करने आदि बातों के लिए कृतज्ञ थे। उस समय भारतवासियों के लिए राष्ट्रीय भावना व्यक्त करने के लिए दो मार्ग थे। एक तो धार्मिक क्षेत्र और कांग्रेस का राजनीतिक क्षेत्र। पिछले कलह और अशान्तिपूर्ण वातावरण से जनता ऊब उठी थी इसलिए जब अंग्रेजों के राज्य-स्थापना के बाद कुछ शान्ति दिखाई दी, तो देश को सांस लेने का कुछ अवसर मिला। भारतवासियों ने अंग्रेजी राज्यों से संतुष्ट होकर उसकी प्रशंसा की।”¹⁵

धार्मिक पृष्ठभूमि :

भारतवर्ष में धर्म और समाज का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। विवेच्य काल में धार्मिक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं, कि हमारे देश में अनेक धर्मावलम्बी निवास करते थे जिनके धार्मिक सिद्धान्तों में बड़ा अन्तर था। कोई पूर्व की ओर खड़ा होकर प्रार्थना करता था तो कोई पश्चिम की ओर वेद के सिद्धान्तों को मानता था, कोई पुराणों को कोई श्रुतियों को तो कोई कुरान या बाइबिल या अवेस्ता को। इस सन्दर्भ में डॉ० कमला कानोड़िया ने अपनी पुस्तक में लिखा है—“हिन्दू धर्म की अनेक शाखायें और उपशाखायें थीं। कोई वैष्णव था तो कोई सनातन धर्मी, कोई जैन, कोई बौद्ध, कोई आर्यसमाजी या ब्रह्मसमाजी या देव समाजी आदि। किन्तु हिन्दू धर्म की विभिन्न शाखाओं में एक प्रकार की मूलभूत एकता थी क्योंकि हर शाखा उपशाखा की धारणा, विश्वास, आधार, विचार आदि के स्रोत, वेद उपनिषद, इत्यादि प्राचीन धर्म ग्रन्थ थे। सभी धर्म शाखाओं में

आचरण को पवित्रता दान पुण्य, तीर्थ स्थान, पूजा, उपासना, एवं सत्कर्मों पर विशेष बल दिया गया था और सभी धर्मों में स्वर्ग और नरक की कल्पना की गई थी।¹⁶

तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों में ब्रिटिश साम्राज्य और ईसाई धर्म के प्रभाव से भारतीय समाज अछूता नहीं रहा है रामधानी सिंह दिनकर ने इस सन्दर्भ में अपनी पुस्तक में लिखा है—“भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई और ईसाई-धर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ। पर भारतीयों की धर्मान्धता और मूर्तिमन्त्र आस्था हुई, केवल नवयुवक वर्ग ही इसकी ओर आकृष्ट हुआ और वह भी अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से। भारतीय नवयुवक, अंग्रेजों की तड़क-भड़क (फैशन) और स्वच्छन्दता से विशेष प्रभावित हुए। इनकी रुचि ईसाई धर्म से उतनी न थी जितनी उनके रहन-सहन और वेश-भूषा से थी। पुराने लोग ईसाई धर्म को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे इसके आचार-व्यवहार इनको पसन्द न थे। मांस भक्षण और शराब आदि से इन्हें बड़ी नफ़रत थी।”¹⁷

समाज की धार्मिक विवचेना करते हुए उनके आर्थिक पक्ष पर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है बहुत सारे आर्थिक कारण भी धार्मिक परिवर्तनों के उत्तराद् होते हैं इस विषय में डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय का यह कथन द्रष्टव्य है—“वर्ग परिवर्तन या सुधार हो जाने से सभी वर्गों की आर्थिक क्षति हो जाने की संभावना थी। धनिक वर्ग तो वैसे ही किसी प्रकार के परिवर्तनों से भयभीत रहता है, क्योंकि राजनीतिक समाज में ज़रा भी परिवर्तन होने से उसकी आर्थिक स्थिति ड़ाँवाडोल हो सकती है। यही कारण है कि वह सदैव ऐसे नियमों और सिद्धान्तों का समर्थन रहा है, जो लोगों को संतोषी होना और अपनी आपत्तियों और कठिनाइयों का उत्तरदायित्व सामाजिक व्यवस्था और संगठन पर न मानकर अपने ऊपर मानना सिखाता है। इस दृष्टि से धर्म उसका सबसे बड़ा सहायक होने के कारण दोनों में सदैव गठबन्धन रहा है।”¹⁸

शिक्षित वर्ग धर्म की इन बुराइयों से परिचित होने लगा था और यदि आर्थिक लोभ न होता तो अत्याधिक संख्या में लोग ईसाई हो गये होते। आर्थिक लाभ यही था कि धर्म-परिवर्तन के पश्चात् पैतृक सम्पत्ति से उसका कोई संबन्ध

रह जाता था। 1843 के लगभग एक ऐसी चर्चा चल गयी थी कि कम्पनी एक ऐसा कानून बनाने वाली है, जिसके अंतर्गत एक हिन्दू अपना धर्म छोड़कर अन्य कोई धर्म स्वीकार कर लेने पर भी पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं हो सकता है।

हिन्दुओं ने ऐसे कानून को अपने धर्म और समाज के लिए घातक समझा और ऐसे किसी भी कानून के विरोध का निश्चय किया, किन्तु ऐसा अवसर ही नहीं आता। कम्पनी सरकार ने इस सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप ही नहीं किया।

अंग्रेजी शासकों और ईसाई मिशनरियों के धर्म संबंधों क्रिया-कलापों का जो प्रभाव भारतीयों पर पड़ा, उसका परिणाम निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है—“अंग्रेजों के संपर्क से भारतीय समाज में दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ परिलक्षित हुई—एक भारतीयता से चिपके रहने की, दूसरी भारतीयता से विरत होने की। भारतीयों को राजनीतिक क्षेत्र में पराजय तो स्वीकार करनी पड़ी, पर उन्होंने सांस्कृतिक क्षेत्र में पराजय स्वीकार नहीं की। यद्यपि कलकत्ता के कुछ पाश्चात्य सभ्यता के भक्त युवकों ने हिन्दू विश्वासों के प्रति वितृष्णा दिखाकर गोमांसभक्षक क्लब तक की स्थापना कर डाली, तथापि यह आंदोलन जनता के समर्थन के अभाव में जन्म लेने के साथ ही मर गया। आधुनिकता समर्थक बहुसंख्यक शिक्षितों ने यह अनुभव किया कि पराधीनता में भी हमें अपनी प्राचीन संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए। अतः उन्होंने उसे आधुनिक वैज्ञानिक भाषा और अर्थ प्रदान करने की सफल चेष्टा की। इस दिशा में राजा राममोहन राय का प्रयत्न श्लाघ्य है।”¹⁹

विवेच्यकाल में हिन्दू धर्म में आडम्बरों और ढोंग ने भोली भाली जनता को अपने चंगुल में फंसा रखा था। धर्म के नाम पर दुराचार, व्यभिचार भी पनप रहे थे। आगे चलकर स्वयं भारतेन्दु जी ने अपने नाटक ‘वैदिकी हिंसा हिंसा न भवित’ के माध्यम से इनके दुराचारों का बड़ा यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। संयुक्त परिवार धर्म के आधार पर ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। पाश्चात्य वैभव की चमक में कुछ भारतीय विदेशी धर्मों को भी अपनाने लगे थे। कम्पनी के शासन में ईसाई मिशनरियों का बहुत बोल-बाला था। ये लोग भारतीय जन मानस के दिलों में उतरने का प्रयास कर रहे थे।

मुसलमान धर्म भी अपनी गति से धार्मिक आंदोलनों को लेकर जागृति की ओर अग्रसर थे। पटना और मुरादाबाद में बहाबी आन्दोलन जो सन् 1870 तक चलता रहा, इस्लाम के सादगीपूर्ण जीवन पर बल दिया ताकि मुसलमान पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क से दूर रहें। पंजाब में अहमदिया आंदोलन भी मुसलमानों में सुधार का कार्य कर रहा था। अलेकानेक धर्म सम्प्रदायों के मत मतान्तरों तथा सिद्धान्तों में उलझी जनता यह समझने में असमर्थ थी कि उनके लिये कौन सा सम्प्रदाय उत्तम है। धर्म शास्त्रार्थ में उपस्थित अबोध जनता उसी सम्प्रदाय की ओर आकर्षित होने लगती थी जो आडम्बर और चमत्कारपूर्ण अलंकृत शब्दावली का व्यवहार करता था। जनता के स्वयं के सोचने समझने की शक्ति सुप्त हो चुकी थी। वह स्वयं न तो कुछ निर्णय कर सकती थी और न उसे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के अनुसरण करने में सच्चा संतोष मिलता था। इहलोक और परलोक सुधारने की कामना में बड़ी निष्ठा के साथ पुरोहित के दिखाये मार्ग पर चलता था चाहे इसके लिये उसे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े।

साहित्यिक पृष्ठभूमि :

भारतेन्दु पूर्व गद्य रचनायें वैसे तो प्रचुर मात्रा में हैं पर उचित रूप से उपलब्ध नहीं हैं। साहित्य में पद्य की भी प्रधानता रही है। भारतेन्दु पूर्व गद्य को ललित और अललित दो रूपों में बाँटा जा सकता है। ललित गद्य में प्राचीन काव्य की टीका या व्याख्या, संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद या उन्हीं पर आधारित कथा वार्ता और नाटक आदि का रूप मिलता है। निबन्ध वैसे तो अस्तित्व में नहीं था किन्तु उस दौर के लेख जो पत्र-पत्रिकाओं में छपते थे उनका स्वरूप निबन्धात्मक ही होता था। अललित गद्य धर्म या दर्शन के शास्त्रीय ग्रंथ आरोग्य और वैद्यक संबंधी ग्रन्थ, व्यक्तिगत पत्र, ताम्रपत्र, दान पत्र, सनद आदि के रूप में हैं। राजस्थानी गद्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

ब्रजभाषा और खड़ी बोली में पौराणिक आख्यान कथा आदि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही उपलब्ध होने लगे हैं। ब्रजभाषा में टीका साहित्य की प्रचुरता है भारतेन्दु पूर्व तक ब्रजभाषा में अधिक प्रौढ़ गद्य लिखा गया है क्योंकि अपभ्रंश के पश्चात् ब्रज ही देश की अंतर प्रांतीय साहित्य भाषा थी। अवधी गद्य में

रचनायें बहुत कमी के साथ देखने को मिलती हैं। 18वीं और 19वीं शताब्दी में ब्रज और खड़ी बोली मिश्रित अवधी गद्य की कुछ रचनायें मिलती हैं। जिनमें अयोध्या के महंत रामचरणदास की 'मानस टीका' विशेष महत्त्वपूर्ण है।

दक्खिनी हिन्दी उत्तर भारत के मुसलमानों, शायरों, लेखकों, सैनिकों तथा सूफियों के गुलवर्गा, बीजापुर, गोलकुण्डा और औरंगाबाद में आश्रय लेने अथवा बस जाने के कारण स्थानीय बोली के मिश्रण से विकसित हुई। दक्खिनी हिन्दी के प्राचीनतम गद्य लेखक गेसूदराज, बंदानबाज माने जाते हैं।

अपभ्रंश के लोकभाषा न रहने पर उसका स्थान कौरवी या खड़ी बोली ने ले लिया। इस भाषा को सर्वप्रथम लल्लूलाल ने अपने 'प्रेमसागर' में खड़ी बोली कहा है। खड़ी बोली गद्य का प्राचीनतम रूप अकबर कालीन गद्य कवि की 'चंद छंद' वर्णन की महिमा' कही जाती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में जब खड़ी बोली में कविता लिखने का जोर था तब उसमें ब्रजभाषा भी सम्मिलित रहती थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में हिन्दी भाषा के विकास हेतु कई कार्य किये। कलकत्ते में फोर्टविलियम कालेज की स्थापना और गिलक्राइस्ट (प्राध्यापक) को उर्दू के साथ-साथ हिन्दी में भी पुस्तक लिखवाने का आदेश दिया। मुंशी लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिख कर हिन्दी साहित्य की सेवा की। इसके अतिरिक्त मुंशी सदासुखराय और इंशाअल्ला खाँ 'बुद्धि प्रकाश' के सम्पादक थे और सदासुख राय ने 'सुखसागर' लिखा, इंशाअल्ला खाँ ने 'रानीकेतकी की कहानी' लिख कर साहित्य की सेवा की।

भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों ने खड़ी बोली को अपनी भाषा का माध्यम बनाना अधिक उचित समझा इस युग के आने तक यह देखने को मिलता है कि निबन्ध में ब्रज भाषा का प्रयोग क्षीण होने लगा था और पाठकों को खड़ी बोली की रचनाएं अधिक आकृषित कर रही थीं। आधुनिक काल की इन परिस्थितियों के सन्दर्भ में रमेश चन्द्र शर्मा ने लिखा है—“आधुनिक काल में हम हिन्दी-भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन होते देखते हैं। इसमें, साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी-गद्य प्रधान स्थान प्राप्त कर लेता है। गद्य की नई-नई विधाएं उपन्यास, कहानी, निबन्ध, नाटक, आलोचना आदि जन्म लेती हैं। साहित्य जन जीवन का

चितेरा बन जाता है। ब्रजभाषा उन्नीसवीं सदी के अन्त तक हिन्दी-काव्य की प्रधान भाषा बनी रहती है, यद्यपि खड़ी बोली में भी छुट-पुट कविताएं लिखा जाना आरम्भ हो जाता है, परन्तु बीसवीं सदी के आरम्भ से ही काव्य क्षेत्र में खड़ी बोली का व्यवहार अधिकाधिक बढ़ने लगता है। गद्य की तो एक मात्र भाषा खड़ी बोली रहती ही है।²⁰

भारतेन्दु युग के लेखकों के विचारों में परिवर्तन दिखाई देते हैं उनके लेखन में विचार प्रधान शैली अधिक देखने को मिलती है निबन्ध साहित्य में विचारों का अग्रणी स्थान ही उसकी सार्थकता को सिद्ध करता है। त्रिलोकी नाथ ने एक पुस्तक में साहित्य के निम्नलिखित विद्वानों के विचारों को इस प्रकार लिखा है— “पाश्चात्य विद्वान बोनाल्ड का कथन है— “Literature is an expression of Society (साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है) हिन्दी विद्वान जैनेन्द्र ने साहित्य के सन्दर्भ में कहा है—“मनुष्य का और मनुष्य जाति का भाषाबद्ध या अक्षरबद्ध ज्ञान की साहित्य है। बाबू गुलाब राय कहते हैं—“अच्छा कलाकार अपने युग का मुख और मस्तिष्क होता है। मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं; मुख बही बोलता है— युग में जो आवाज उठती है, साहित्यकार उसी को प्रतिध्वनित करता है। संस्कृत आचार्य इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—“साहित्यस्य भावः साहित्यम् मानव समुदाय का भाव ही साहित्य है, तथा ‘हितेन सह वर्तते इति सहितः तस्य भावः साहित्यम्—लोक कल्याण की भावना से युक्त कृति ही साहित्य है।”²¹

इसी प्रकार डॉ० राजनाथ शर्मा का कथन है—“हमारा भक्तिकालीन साहित्य साहित्य जनता का साहित्य था और रीतिकालीन साहित्य राज दरबारों का। आधुनिक हिन्दी साहित्य भारतीय समाज के एक सर्वथा नए वर्ग का साहित्य है, जो नवीन शासन और आर्थिक प्रणाली के फलस्वरूप भारतीय रंगमंच पर प्रवेश कर रहा था। यह साहित्य वस्तुतः भारतीय मध्य वर्ग की सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक था। इसका प्रधान कारण यह था कि पश्चिमी सभ्यता के साथ होने वाले संघर्ष के कारण राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोण बदल रहा था और इसी बदलते हुए दृष्टिकोण से प्रेरणा ग्रहण कर आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास प्रारम्भ हुआ। नवजागरण से उत्पन्न विचार

स्वातन्त्र्य के प्रभाव से हमारे साहित्य ने रुढ़ि के बन्धनों को तोड़कर एक नए युग में प्रवेश किया।”²²

भारतेन्दु पूर्व हिन्दी गद्य साहित्य की प्रमुख रचनायें इस प्रकार हैं —

सिंहासन बत्तीसी (1802—1805), प्रेमसागर (1803—1810), राजनीति आदि खड़ी बोली और ब्रजभाषा में अनूदित रचनायें हैं। अंग्रेजी बोलो (1810) लताहफी हिन्दी (1810), ब्रजभाषा व्याकरण (1818), सभाविलास (1815), माधवविलास (1817) जैसी रचनायें भी गद्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ईसाइयों ने ‘प्रेमसागर’ का धार्मिक दृष्टि से भी प्रचार किया। उसे हिन्दू समाज का प्रतिनिधि ग्रंथ माना। क्योंकि उसमें वैष्णव दृष्टि से कृष्ण का वह रूप था जिसकी आलोचना कर वे ईसाई धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित कर सकते थे।

आधुनिक गद्य के चार आचार्यों में मिश्र जी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी दो रचनायें ‘नासिकेतोपाख्यान’ और ‘रामचरित्र’ उपलब्ध हुई हैं। संवत् 1810 और 1815 के बीच गद्य की कोई सशक्त कृति प्रकाश में नहीं आई। कंपनी के शासन की समाप्ति के बाद जब अंग्रेज सरकार का शासन स्थापित हुआ तब प्रेसों की स्थापना और शिक्षा प्रसार के परिणाम स्वरूप साहित्य निर्माण का कार्य अग्रसर हुआ। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचार के लिये हिन्दी में पुस्तकें लिखवाने का उत्साह के साथ प्रारम्भ कर दिया। भारतेन्दु पूर्व अन्य लेखकों में शिवप्रसाद सितारे हिन्द का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने ‘बनारस अखबार’ का नागरी लिपि में प्रकाशन किया। इनकी प्रसिद्ध रचना ‘इतिहास तिमिरनाशक’ को उर्दू शैली से परिपूर्ण माना जाता है।

श्रद्धाराम फुल्लौरी ने पंजाब में विषम परिस्थितियों में हिन्दी प्रचार का प्रशंसनीय कार्य किया। इन्होंने हिन्दी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं का अध्ययन तथा उनमें साहित्य सर्जना भी की और हिन्दी में तत्त्वदीपक, सत्यधर्म, मुक्तावली, भाग्यवती रमल कामधेनु, शतोपदेश, बीजमंत्र, सत्यामृतप्रवाह, नामक पुस्तकें लिखीं। राजा लक्ष्मण सिंह ने सं० 1918 में ‘प्रजाहितैषी’ नामक पत्र आगरा से प्रकाशित किया और सं० 1919 में ‘अभिज्ञान शाकुंतलम्’ का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रारंभ :

भारत में समाचार पत्रों का प्रकाशन ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में होने लगा था। सन् 1778 में एंड्रूज ने हुगली में और सन् 1780 ई० में जे०ए० हिक्की ने कलकत्ते में एक प्रेस की स्थापना की। सन् 1795 ई० में कैरे ने मदनावती (बंगाल) में एक प्रेस स्थापित किया हिन्दी के नये टाइप ढलने लगे, धीरे धीरे हिन्दी प्रांतों में प्रेस स्थापित होने लगे और विभिन्न भाषाओं में साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रों का प्रकाशन होने लगा। भारत का सर्वप्रथम पत्र सन् 1826 ई० में 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ। हिन्दी निबंधों के प्रारम्भिक स्वरूप हमें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों में मिल जाता है। 9 मई 1829 ई० में बंगदूत का प्रकाशन हुआ। 1850 में तारा मोहन काशी से 'सुधाकर' नामक पत्र का प्रकाशन किया। 1844 में बनारस अखबार, 1846 में 'मार्तण्ड' 1849 में 'मालवा अखबार' 1852 में आगरा से बुद्धिप्रकाश पत्रों का प्रकाशन हुआ।

सन्दर्भ :

1. डॉ० कमला कानोडिया : भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० 136-137
2. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : फोर्ट विलियम कॉलेज, पृ० 1
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 422
4. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट, पृ० 47
5. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 83
6. डॉ० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग, पृ० 161-162
7. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 122
8. भारत जीवन, 14 अप्रैल, 1890, बनारस
9. The doctrine Maya (illusion) by the vedanta school of Philosophy but irregularly affects all Hindu thought and forms the backing round both of religious poetry and of the dreamy Philosophy of masses- A YUSUF ALI, - The making of India 1925, Page-32
10. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 232
11. वही, पृ० 235
12. रामगोपाल : ब्रिटिश रूल इन इंडिया, पृ० 16
13. वही, पृ० 27-28
14. डॉ० बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 26
15. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 65

16. डॉ० कमला कानोडिया : भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० 48
17. रामधारी सिंह दिनकर : सस्कृति के चार अध्याय, पृ० 437-438
18. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 100
19. डॉ० विनयमोहन शर्मा हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग-8), पृ० 11
20. डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 165
21. त्रिलोकीनाथ श्रीवास्तव भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, पृ० 31-32
22. राजनाथ शर्मा साहित्य निबन्ध, पृ० 93-94



तृतीय—अध्याय

भारतेन्दु युगीन निबन्धकार :
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण
भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र,
बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन',
लाला श्रीनिवासदास और
राधाचरण गोस्वामी का
व्यक्तित्व और कृतित्व

तृतीय अध्याय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का व्यक्तित्व और कृतित्व

भारतेन्दु जी को आधुनिक हिन्दी एवं गद्य साहित्य का जन्मदाता माना जाता है। बाबू जी अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न एवं युग निर्माता साहित्यकार थे। भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य की बहुत सेवा की है। वास्तव में हिन्दी भाषा और साहित्य का जो भव्य भवन आज दिखाई दे रहा है, उसकी नींव का श्रेय भारतेन्दु जी को ही प्राप्त है।

वंश :

भारतेन्दु के पिता बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास 11 वर्ष की आयु में ही पिता के प्यार से वंचित हो गये थे। इस प्रकार बचपन में ही वंश परम्परागत ऐश्वर्य और घर-गृहस्थी का प्रबन्ध सिर पर आ पड़ने के कारण नियमित रूप से शिक्षा ग्रहण न कर सके, किन्तु गुरु के आशीर्वाद और अपनी जन्मजात प्रतिभा के कारण खुद ही अध्ययन करके संस्कृत और हिन्दी के अनुपम विद्वान तथा सुकवि हुए। ये सरकार के भी इतने विश्वास पात्र थे कि सन् 1857 की क्रांति के समय बनारस रेजीडेन्सी का कीमती सामान इन्हीं के घर में रखा गया था। विद्या के प्रति इनकी अभिरुचि अगाध थी। इन्होंने अमूल्य ग्रन्थों का जो खुद पुस्तकालय बनाया था उसे खरीदने के लिए डॉ० राजेन्द्रलाल मिश्र, भारतेन्दु को एक लाख रुपये दिला रहे थे, लेकिन उन्होंने नहीं दिया था। यह कविता में अपना उपनाम गिरिधरदास लिखा करते थे। इनकी साहित्य रचना के सम्बन्ध में भारतेन्दु बाबू ने लिखा है—

“जिन श्री गिरिधरदास कवि, रच्यो ग्रन्थ चालीस।

ता सुत श्री हरिचन्द्र को, को न नवावै सीस।।”¹

जन्म :

बाबू गोपालचन्द्र की पत्नी पार्वतीदेवी से उत्पन्न चार संतानों में बाबू हरिश्चन्द्र उनकी द्वितीय संतान थे इनका जन्म काशी में अपनी ननिहाल में 9

सितम्बर सन् 1850 में सोमवार के दिन सुबह को हुआ था इनकी पाँच साल की आयु में ही माता का देहान्त हो गया था, और पिता भी दस वर्ष की अवस्था में छोड़कर परलोक सिधार गये थे। इन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि तथा प्रतिभा की पहिचान पाँच-छः वर्ष की आयु में ही दिखा दी थी।

शिक्षा :

इनकी शिक्षा पारिवारिक उलझनों के फलस्वरूप अधिक न हो सकी आपने स्वाध्याय द्वारा अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। इन्हें हिन्दी के प्रति अगाध प्रेम था। भारतेन्दु ने केवल सात वर्ष की आयु में एक दोहे की रचना की थी पिता जी ने इनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर इन्हें महान कवि होने का आशीर्वाद दिया था।

स्वर्गवास :

भारतेन्दु की इच्छा के विरुद्ध इनकी विमाता के आग्रह से इनके छोटे भाई के साथ बंटवारा हो गया तभी से यह निरन्तर क्षुब्ध रहा करते थे। सन् 1882 में उदयपुर की यात्रा पर गये और वहीं पर श्वास, खांसी तथा ज्वर के शिकार हो गये। रोग के समय में भी आप निरन्तर साहित्य सृजन का कार्य करते रहे। अपनी इस बीमारी के समय ही अपने भविष्य की आपको सूचना मिल चुकी थी, इसीलिए अपने जीवन की अन्तिम कविता में आपने स्वयं लिखा है —

“डंका कूचका बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई।

देखो लाद चले सब पंथी तुम क्यों रहे भुलाई।।

जब चलना ही निहचै है तो ले किन माल लदाई।

‘हरीचन्द’ हरिपद बिनु नहिं तौ हि जैहो मुंहवाई।।”²

धीरे-धीरे श्वास और खांसी का रोग बढ़ता गया। इन अन्तिम तीन वर्षों में कभी रोग इन पर हावी हो जाता था कभी यह रोग की परवाह नहीं करते थे। इस प्रकार 34 वर्ष चार महीने की अल्प आयु में ही इनका स्वर्गवास हो गया।

स्वर्गीय श्रीधर पाठक ने इनके संबन्ध में बहुत उचित लिखा है —

“जबलौं भारत भूमि मध्य, आरज—कुल—वासा

जबलौं आरज—धर्म माहि आरज—विश्वासा

जबलौं गुन—आगरी नागरी, आरज—बानी

जबलौं आरज-बानी के, आरज अभिमानी
तबलौं यह तुम्हारौ नाम थिर चिर जीवी रहि है अटल
नित चन्द सूर सँग सुमिरि हैं, हरिचन्दहु सज्जन सकल।।”³

व्यक्तित्व :

भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व में सभी गुण थे जो किसी बड़े राष्ट्र नेता में होने चाहिए थे। इनका स्वभाव अत्यन्त कोमल, सरल और दयालू था। दूसरों को सुखी करने में इन्हें आनन्द आता था। एक बार एक दक्षिणी अपरिचित ब्राह्मण के द्वारा अपनी पुत्रियों के विवाह के लिए सहायता मांगने पर इन्होंने अपनी उंगली से एक हीरे की अंगूठी उतार कर उसे देते हुए कहा कि महाराज, मैं दौलत फूकने वाला फ़कीर हूँ। मेरे पास भी धन का अभाव है। यह अंगूठी आप के भाग्य से मेरे पास बची थी। इतने में तुम्हारा काम चल जाएगा। इसका आप के ऊपर कोई एहसान नहीं है। वे अपने निर्णय में इतने दृढ़ रहते थे कि कभी गुस्से में भी कोई निर्णय कर लेते थे तो उसका भी वह पूरा पालन करते थे।

भारतेन्दु जी जिस प्रकार सभी सांसारिक माया मोह तथा संघर्षों से दूर रहकर स्वदेश सेवा में लगे रहते थे उसी प्रकार वह मातृभाषा की सेवा में सदा लगे रहे क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है—

“निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।”⁴

उनकी ‘निजभाषा’ केवल हिन्दी नहीं थी। वह बंगालियों के लिस बंगला मराठियों के लिए मराठी, पंजाबियों के लिए पंजाबी थी तो दूसरे के लिए दूसरी थी। भाषा संदर्भ में उनका दिमाग बहुत साफ था—

‘प्रचलित करहु अहान में, निज भाषा करिजत्न।

राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न।।”⁵

प्रयाग में हिन्दी भाषा पर दिये गये व्याख्यान का उदाहरण उनकी राष्ट्रीयता और बौद्धिकता और भाषा के प्रति गहरे लगाव के प्रमाण के लिए काफी है।

यह उदाहरण इस अर्थ में भी महत्त्वपूर्ण है कि भारतेन्दु बाबू ने स्वयं यह कोशिश की और करवायी कि यह लिखित व्याख्यान 'प्रबोधिनी' कविता की तरह 'प्रबोधन' तो है ही गंभीर बौद्धिक विवेचन भी है।

भारतेन्दु जी को दोनों परिस्थितियों से जूझना पड़ा। उनके सम्पूर्ण कृतित्व को सरकस के खिलाड़ी की तरह सन्तुलन की कसी हुई डोर पर चलना पड़ा। एक साथ ही वे राजभक्ति और देश भक्ति दोनों का निर्वाह करते दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी पंक्ति में देश की आर्थिक स्थिति उन्हें सताती है—

“अंग्रेज राज सुख साज, सवै विधि भारी

पै धन विदेश चलि जात, यहै है ख्वारी।”⁶

महारानी विक्टोरिया के पौत्र प्रिंस फ्रैडरिक के भारत आगमन पर जो कविता उन्होंने लिखी थी वह अंग्रेजों के प्रति वफादारी से सराबोर जरूर है, किन्तु राष्ट्र की पीड़ा और छटपटाहट की भी ध्वनि है।

एक बार इनके पिता 'बलराम कथामृत' की रचना कर रहे थे, बालक हरिश्चन्द्र पिता के करीब बैठकर कविता बनाने की अनुमति मांगने लगे। जब उनके पिता ने वाणासुर बध के प्रसंग का उल्लेख करके आज्ञा प्रदान की तो उन्होंने तुरन्त यह दोहा बनाया—

“लै ब्यौड़ा ठाड़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।

बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान।।”⁷

इससे प्रसन्न हुए पिता ने आशीर्वाद देते हुए 'तु मेरा नाम बढ़ायगा' कहा और इस दोहे को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया। इस प्रकार के अन्य भी अनेक प्रसंग इनके बाल्यकाल के मिलते हैं, जिनसे इनकी अद्भुत प्रतिभा का प्रत्यक्ष परिचय मिलता है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य, गद्य तथा पद्य, सभी का ऐसा परिष्करण तथा परिमार्जन किया और ऐसी प्रगतिशीलता दी कि वर्तमान हिन्दी साहित्य अपने समय के अनुकूल कुछ बन सका 'कुछ शब्द जान बूझकर रखा गया है। भारतेन्दु जी ने उपदेश दिया था—

विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।

सब देशन सों लै करहु, भाषा माहिं प्रचार ।।

यह कहा जा सकता है कि ऐसा साहित्य हिन्दी में भारतेन्दु की मृत्यु के 70 वर्ष बीत जाने पर भी प्रस्तुत हो चुका है परन्तु समय बदल गया है, भारत आज़ाद हो गया है और पूरी उम्मीद है कि थोड़े ही समय में हमारा हिन्दी साहित्य इतना भरा पूरा हो जाएगा कि हम किसी भी विषय की रचनाओं के लिए अन्य भाषाओं का मुख्यापेक्षी न रहना पड़ेगा।⁸

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का पत्र साहित्य भी उनकी आत्मीयता, सरलता निष्कलता और उनके मौजी स्वभाव को बड़े सहज भाव से उद्घाटित करता है। अपने करीबी दोस्तों से लेकर भारतेन्दु जी ने देशी-विदेशी उनके विद्वानों को पत्र लिखे हैं। इनमें से अब कुछ ही उपलब्ध हैं।

जिन लोगों को वे बहुधा लिखा करते थे उनमें हैं —

“सर्वश्री गोस्वामी राधाचरण ‘प्रेमघन’ जी, कविराज श्यामलदास, काशिराज ईश्वरी प्रसाद सिंह, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजेन्द्रपाल सिंह, केशवचन्द्र सेन, कृष्णोदास पाल, बंकिम बाबू आदि।”⁹

भारतेन्दु के अनुसार इस अंतरंग पत्र को लिखने में उन्हें चार दिन लग गये थे। पेन्सिल से लिखे इस पत्र को उन्होंने कलेजा फाड़कर लिखा। पूरा पत्र उपलब्ध नहीं है। समय की धूल से दबते-दबते लिखावट भी मद्धिम हो गयी है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

...विदेश से लौटकर हम न आवें तो इस बात का जो हम लिखते हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या अपने पर फर्ज समझना। पर हम जीते जागते फिरेंगे चिन्ता न करना केवल संयोग के वश होकर यह लिखा है। यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना। यह तुम जानते हो कि तुम्हारी भाभी की हमें कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि तुम्हारे जैसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिए। दो बातों की हमको चिन्ता है। एक कर्ज, दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी सी डिगरी जो बच गयी है, उसे चुका देना और जीवन भर दीनहीन मल्लिका की जिसके हमने धर्मपूर्वक अपनाया है रक्षा करना, कृष्ण की ऊंची शिक्षा संस्कृति, अंग्रेजी और बंगला की है। जो हमारे बाबू जी के ग्रंथ वे छपे रह जाये छापें।

भारतेन्दु जी का यह पत्र उनकी वसीयत है, उनकी व्यथा कथा है, मल्लिका के प्रति उनके लगाव और आत्मीयता की स्वीकारोक्ति है, संस्कृत-अंग्रेजी के साथ बंगला के प्रति उनके प्रेम का भी द्योतक है। एक दूसरा पत्र उन्होंने अपने भतीजे कृष्णचन्द्र को लिखा था। पुत्र के अभाव में यह भतीजा ही उनका सब कुछ था। सारी आत्मीयता एवं हार्दिकता उन्होंने इसमें उड़ेल दी है।

चिरंजीव कृष्ण, प्यारे कृष्ण राजा कृष्ण, बाबू कृष्ण आंखों की पुतली तुम्हारा जी कैसा है। सर्दी मत खाना रसोई रोज़ खाते रहना। तुमको छोड़कर यदि हमारा अख्तियार होता तो क्षण भर बाहर नहीं आते क्या करें लाचारी है, झक मारते हैं। कृष्ण तुम्हारा अभी कोमल स्वच्छ चित्त है। तुम हमारे चित को ध्यान से जान सकते, किन्तु बुद्धिवाणी अभी नहीं है। इससे तुम और किसी पर प्रकट नहीं कर सकते हो।”¹⁰

उनका अध्ययन केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं था। समाज को बहुत दूर तक देखने की उनमें ललक थी इसी का परिणाम भी वे यात्राएं जिन्हें उन्होंने रेल के सेकेण्ड क्लास से लेकर बैल गाड़ी तक से की थी।

बैलगाड़ी की यात्रा में खाये हिचकोरे उन्हें बहुत दिनों तक याद रहे। उन्होंने लिखा था—

“हिलत डुलत चलत गाड़ी आवै,

झुलत सिर टुटत रीढ़ कमर झौका खावै।”¹¹

इन यात्राओं का परिणाम यह था कि उनकी अभिजात्य लोकरुचि की ओर आकृष्टि हुई।

भारतेन्दु जी सभी भाषाओं की उन्नति चाहते थे वे उर्दू के कुछ खिलाफ लगते हैं। इसके दो मुख्य कारण एक तो भाषाई संदर्भ में उनके परम विरोधी शिवप्रसाद ‘सितारे हिन्द’ का उर्दू के प्रति लगाव। उनका व्यक्तिगत विरोध उर्दू के दुराव का कारण बना। दूसरे उर्दू भाषी लोगों की साम्प्रदायिकता भी उन्हें उर्दू से दूर खींच ले गयी। यद्यपि वे स्वयं उर्दू में कविताएं लिखते थे। उनका उपनाम ‘रसा’ था इन उर्दू रचनाओं में भी उनकी हार्दिकता और गम्भीरता किस हद तक थी इसका उदाहरण इस प्रकार है—

“तेरी रहमत का उम्मीदवार आया हूँ,
सर ढाये कफन से शर्मसार आया हूँ
आने न दिया बारे गुनह ने पैदल
ताबूत में कांधे पर सवार आया हूँ।”¹²

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का व्यक्तित्व उन सभी अवरोधों को लांघकर बाहर निकल रहा था, जो उन्हें सामन्ती जीवन में बाधने की असफल चेष्टा कर रहे थे वह दरबार जुटाकर भी दरबार के कितने बाहर थे, यह उनके पौत्र डॉ० मोतीचन्द्र के कथन से स्पष्ट होता है—

“भारतेन्दु का हँसता हुआ व्यक्तित्व बनारस की कहावत बन गया है। भारतेन्दु शायद ही किसी से अप्रसन्न हुए हों अपने करीबी विरोधियों को भी वह अपनी सरलता और हास्य प्रियता से अपने बस में कर लेते थे। हिन्दी को लेकर राजा शिवप्रसाद ‘सितारे हिन्द’ से जो उनका विवाद हुआ था, वह इतिहास प्रसिद्ध घटना है। ‘परायीपीर’ के प्रति भारतेन्दु की अत्यधिक संवेदनशीलता ही उन्हें जनहित समाजहित और देशहित के प्रति सोचने के लिए विवश करती थी। अपनी सोच को वाणी देने के लिए ही उन्होंने तीन पत्रों का प्रकाशन किया था। “कविवचन सुधा”, “हरिश्चन्द्रिका” और “बालाबोधिनी”। कहते हैं कि अपनी धार्मिक भावना को अभिव्यक्ति देने के लिए भी उन्होंने भक्ति की एक मैगजीन निकाली थी। इनके अलावा अपने समय की अनेक पत्र पत्रिकाओं के वे प्रेरक थे, वे जानते थे कि जन जागृति के लिए पत्र-पत्रिकाएं ही सबसे अच्छे माध्यम हैं।”¹³

भारतेन्दु जी ने सन् 1875 के अप्रैल की “हरिश्चन्द्र चन्द्रिका” में एक विज्ञापन प्रकाशित किया था—

“हिन्दी में बहुत से अखबार हैं पर हमारे हिन्दुस्तानी लोगों को उनसे कानूनी खबर कुछ नहीं मिलती और न किसी में कानूनों का तर्जुमा है जिसे देखकर और पढ़कर वे अदालत की बातें समझ सकें। अदालत वह चीज़ है जिससे छोटे बड़े किसी को छुट्टी नहीं। इससे सब गृहस्थों को इसका जानना बहुत जरूरी है। बहुत से बेचारे कानून जाने बिना लोगों के जाल में पड़कर खराब हो जाते हैं। तो इस आपत्ति से लोगों को बचाने के लिए एक माहवारी पत्र ‘नीति

प्रकाश' नाम का बनारस से जारी होगा इसमें अंग्रेजी और उर्दू कानूनों का तर्जुमा छपा करेगा। और इसके सिवाय विलायत और हाई कोर्ट के फैसले छपेंगे। मुंशी ज्वालाप्रसाद गवर्नमेन्ट प्लीडर हाई कोर्ट प्लीडर इत्यादि लायक दोस्त इसके मददगार होंगे।”¹⁴

समकालीन लेखक :

भारतेन्दु एक युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। इनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर तत्कालीन प्रायः सभी साहित्यकार इनके निकट आते थे और सब प्रकार के प्रोत्साहन दे देकर वे इन लेखकों को साहित्य सृजन के लिए तैयार करते थे। ऐसे हिन्दी के कुछ प्रमुख लेखकों में पंडित-राधाचरण गोस्वामी, लालाश्री निवासदास, ठाकुर जगमोहन सिंह, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पंडित प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, सुधाकर द्विवेदी, पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू राधाकृष्णदास आदि के नाम गिने जाते हैं। इन साहित्यकारों के अतिरिक्त भी अपने 'अजातशत्रु' स्वभाव के कारण होने इन्होंने बहुत बड़ा मण्डल बना रखा था। कलकत्ता के पुरातन्त्रज्ञ डॉ० राजा राजेन्द्रलाल मिश्र, सुप्रसिद्ध समाज सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, भारतीय भाषाओं के विद्वान मिस्टर फ्रेडरिक पिन्काट, सिक्ख संप्रदल के तीसरे गुरु के वंशज सुमेरसिंह साहिबजादा, देशी रियासतों के अनेक राजे रजबाड़े तथा कई सरकारी आफिसर भी इनके मित्र थे। काशी में तो इनके मित्रों की सख्या का कोई ठिकाना ही नहीं था। काशी नरेश से लेकर सभी लोग इनके मित्र थे।

अन्त में उज्जयिनी निवासी सूर्यनारायण व्यास के शब्दों में हंस इतना ही कहना चाहते हैं—

“हिन्दी प्राणप्रियः पूज्य काव्यकाननकोकिलः।

युगांतकरः श्रीमान् हरिश्चन्द्र स्तथा उवरः॥

ऐसे ही हरिश्चन्द्र को 'को न नवाबै सीस।’¹⁵

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने अपने जीवन के थोड़े समय में छोटे बड़े कुल मिलाकर 175 ग्रन्थ लिखे। इनमें इतिहास नाटक चरित्र, काव्य आदि सभी हैं, जो इनकी बहुमुखी प्रतिभा के घोटक हैं। इनके नाटकों में सत्य हरिश्चन्द्र, भारत

दुर्दशा, चन्द्रावली नीलदेवी, अंधेर नगरी, काव्यों में प्रेम-फुलवारी इतिहास में कश्मीर कुसुम आदि अति प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। आधुनिक युग में निबन्ध साहित्य का प्रारम्भ हुआ वह युग भारतेन्दु युग है और निबन्ध साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु जी ही को माना जाता है।

नाटक :

भारतेन्दु जी ने अनेक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी नाटकों की रचना की है। उन्होंने नाटकों का अभिनय भी किया जिसमें जन-मन प्रवाहित हो उठा। भारत दुर्दशा के सभी पक्ष टैक्स, रिश्वत, अंग्रेजों के अत्याचार, पुलिस के दुराचार आदि का वर्णन इन नाटकों में हुआ है। उनके द्वारा रचित नाटकों का सविस्तार वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

अनुदित—7

छायानुवाद—2

मौलिक—8

भारतेन्दु द्वारा अनुदित नाटकों में रत्नावली, पाखण्ड, विडम्बन, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस संस्कृत नाटकों के अनुवाद हैं। दुर्लभ बन्धु अंग्रेजी का अनुवाद है “भारत जननी” बंगला से अनुदित है। विद्यासुन्दर एवं “सत्यहरिश्चन्द्र” छायानुवाद है जो मौलिक से बन गये हैं।

भारतेन्दु ने 8 मौलिक नाटक लिखे हैं, चन्द्रावली, नीलदेवी, भारतदुर्दशा, अंधेर नगरी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, प्रेमयोगिनी तथा सती प्रताप।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के नाटकों की क्रमागत सूची इस प्रकार है—

‘विद्यासुन्दर (1868, संस्कृत “चौरपंचाशिका” के बंगला संस्करण— का हिन्दी रूपान्तर), रत्नावली (1868, संस्कृत से अनुवाद), पाखण्ड विडम्बन (1872, कृष्ण मिश्र—कृत प्रबोध चन्द्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद) धनंजय विजय (1873, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक के तीसरे अंक का अनुवाद), कर्पूरमंजरी (1875, सट्टक कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद) भारत जननी (1877, नाट्य गीत) मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद) दुर्लभ बंधु

(1880, शेक्सपियर के "मर्चेन्ट आफ वेनिस" का अनुवाद), वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873 प्रहसन), सत्यहरिश्चन्द्र (1876), श्री चन्द्रावली (1876), विषस्य विषमौषधम् (1876 भाण), भारत दुर्दशा (1880, नाट्यरासक नीलदेवी (1881 गीतिरूपक), प्रेम जोगिनी (1874)।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा रचित—पांचवे पैगम्बर, बंदर सभा सबै जाति गोपाल की आदि श्रेष्ठ ग्रहसन हैं तथा रामलीला जैसे ग्रन्थ आख्यानाधृत हैं।

काव्य :

जो कुछ शंकराचार्य ने धर्म की दृष्टि से किया, जो दयानन्द ने आर्यवाणी के लिए किया, जो विवेकानन्द ने दर्शन के लिए किया, वही भारतेन्दु ने हिन्दी-साहित्य के लिए किया।

सम्मिलित रूप में सब कुछ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में है। इतना काम एक साथ किसी ने नहीं किया।

भारतेन्दु जी द्वारा रचित सर्वप्रथम तुमरी निम्नलिखित है—

पछितात गुजरिया घर में खरी।

अब लग श्यामसुन्दर नहिं आए दुखदाइन भइ रात अंधरिया।

बैठत उठत सेज पर भामिनि पिया बिना मोरी सूनी सेजिरया॥

भारतेन्दु द्वारा लिखित सर्वप्रथम पद देखिए—

हम तो मोल लिये या घर के।

दास दास श्री बल्लभ कुल के चाकर राधाबर के॥

माता श्री राधिका पिता हरि बंधु दास गुनकर के।

हरीचन्द तुमरे ही कहावत नहिं विधि के नहिं हर के॥

उनका प्रथम सवैया निम्नलिखित है —

यह सावन सोक नसावन है, मन भावन यामें न लाजै भरो।

जमुना पै चलो सु सबै मिलि कै, अरु गाइ बजाइ के साके हरो।

इमि भाषत हैं हरिचंद पिया, अहो लाडिली देर न यामें करो।

बलि झूलो झुलाओ, झको उसको, एहिपाषै पतिव्रत तासैं धरो।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने बहुत सा काव्य लिखा। उनके सम्पूर्ण काव्य की रचनाएं इस प्रकार हैं—

भक्त सर्वस्व (1870 ई०), प्रेममालिका (1871 ई०), कार्तिक स्नान (1872 ई०), वैशाख माहात्म्य (1872 ई०), प्रेमाश्रुवर्षण (1873 ई०), प्रेम—माधुरी सन् 1875 में कविवचन सुधा में प्रकाशित), प्रेम तरंग (1877 ई०, में कविवचन सुधा में प्रकाशित), उत्तरार्द्ध भक्तमाल (हरिश्चन्द्र—चन्द्रिका, सन् 1876—77 में प्रकाशित), प्रेम प्रलापः हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में 1877 ई० में प्रकाशित), गीत गोविन्द (1877 ई०), होली : (1879 ई०), मधु मुकुल (1881 ई०), वर्षा विनोद (1880 ई०), विनय—प्रेम—पचासा (1881 ई०), फूलों का गुच्छा (1880 ई०), कृष्ण चरित्र (1883 ई०), श्री राजकुमार सुस्वागत—पत्र (1869 ई०), देवी छदम — लीला (1833 ई०), स्फुट समस्या (1875 ई०), मुँह दिखावनी (1874 ई०), उर्दू का स्यापा (1874 ई०), बकरी विलाप (1874), स्वरूप चिन्तन (1874 ई०), श्री रामकुमार शुभागमन वर्णन (1875 ई०), श्री पंचमी (1875 ई०), श्री सर्वोत्तम स्तोत्र (1877 ई०), प्रातः स्मरण स्तोत्र (1877 ई०) हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान (1877 ई०), अपवर्ग दाष्क (1877 ई०), गजल (1877 ई०), वेणुगीत (1877 ई०), श्री नाथ स्तुति (1877 ई०), मूक प्रश्न (1877 ई०), भारत—वीरत्व (1878 ई०), श्री सीता—वल्लभ स्तोत्र (1879 ई०), श्री राम लीला (1879 ई०), भीष्मस्तवराज (1879 ई०), मान—लीला फूल—बुझौअल (1879 ई०), बंदर सभा (1879 ई०), विययिनी—विजय—पताका या वैजयंती (1882 ई०), नये जमाने की मुकरी (1884 ई०), रिपनाष्टक (1884 ई०)।

निबन्ध :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को निबन्ध लेखन में बहुत अधिक सफलता मिली। डॉ० रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग के निबन्ध साहित्य की स्तुति करते हुए लिखा है—

“जितनी सफलता भारतेन्दु युग के लेखकों को निबन्ध रचना से मिली उतनी कविता और नाटक में भी नहीं मिली। इसका एक कारण यह है कि पत्रिकाओं में नित्य प्रति निबन्ध लिखते रहने से उनकी शैली खूब निखर आयी थी

दूसरी बात यह है कि निबन्ध ही एक ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा युग के फक्कड़ लेखक बेतकल्लुफी से अपने पाठक से बात कर सकते थे।¹⁶

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के बहुत से निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। उनके सामने निबन्ध लिखने के लिए अनन्त विषय थे। समाज सुधार, राजनीति, धर्म, अध्यात्म, आर्थिक दुर्दशा, अतीत का गौरव, महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व आदि विषयों पर प्रकाश डालने के लिए भारतेन्दु ने बहुत से निबन्ध लिखे। हिन्दी साहित्य में निबन्ध लेखन का प्रारम्भ भारतेन्दु जी से ही मान्य होता है। बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने गद्य की इस विधा को और अधिक समृद्ध बनाया। आचार्य शुक्ल ने इन्हें हिन्दी का स्टील और एडीसन कहा है।¹⁷

भारतेन्दु के निबन्धों को अनेक भागों में बांटा जा सकता है—

धार्मिक निबन्ध, सामाजिक निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध, हास्य व्यंग्यपूर्ण निबन्ध, जीवन-चरितात्मक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध, पुरातत्त्व तथा यात्राविषयक निबन्ध अन्य निबन्ध आदि।

पत्रिकाएँ :

हिन्दी के प्रथम सशक्त एवं सफल पत्रकार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र थे। उन्होंने समय-समय पर तीन पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं।

01. “कविवचन सुधा (1868 ई0)”
02. हरिश्चन्द्र मैगनीज तथा हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (1873 ई0)
03. बालाबोधिनी (1874 ई0)¹⁸

बालकृष्ण भट्ट का व्यक्तित्व और कृतित्व :

बालकृष्ण भट्ट आधुनिक हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकारों में हैं। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन उन गिने-चुने साहित्यकारों में थे, जिन्होंने हिन्दी की सेवा में अपना सब कुछ समर्पित कर दिया था। भट्टजी अपने समय के संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे। संस्कृत साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, कर्म-काण्ड इत्यादि सभी विषयों के पूर्ण पंडित थे। वेदान्त, सांख्य, पुराण, दर्शन इत्यादि में भी उनकी

अद्भुत गति थी। संस्कृत के ऐसे महान् पंडित होते हुए भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के वे अनन्य उपासक थे।

“भट्टजी हिन्दी में बचपन से ही लिखने लगे थे। स्कूल में हिन्दी में वाद-विवाद और निबन्ध रचना में सदैव भाग लेते थे और प्रथम रहते थे कदाचित् सन् 1872 ई० के लगभग ‘कलिराज की सभा’ शीर्षक इनका पहला लेख भारतेन्दुजी की ‘कवि-वचन सुधा’ में छपा था। इसके उपरान्त ‘रेल का बिकट खेल’ स्वर्ग में ‘सब्जेक्ट कमेटी’ इत्यादि उनके कई लेख ‘कवि-वचन सुधा’ में निकले। उन सभी लेखों की प्रशंसा हुई। इसके बाद उनके लेख ‘काशी-पत्रिका’, ‘विहार-बन्धु’ आदि में भी निकलने लगे।”¹⁹

वंश :

“पंडित बालकृष्ण भट्ट के पूर्वज मालवा प्रान्त उज्जयिनी (अवन्ती) के पास शिप्रा नदी के पास रहने वाले मालवीय ब्राह्मण थे। जब मुसलमानी राज्य में उलटफेर हुआ तो यह बेतवा नदी के किनारे जितकरी गाँव में बस गये। कहते हैं कि इनके प्रपितामह श्यामजी भट्ट, विद्वान पुरुष थे। अपने पाँच पुत्रों में से सबसे छोटे बिहारीलाल पर उनका अत्यधिक स्नेह था। उन्होंने सारी सम्पत्ति भी उन्हीं को दी थी।” बिहारीलाल जी के बेनीप्रसादजी और जानकीप्रसादजी दो पुत्र थे, बालकृष्ण भट्ट, बेनीप्रसादजी के बड़े लड़के थे। भट्टजी के छोटे भ्राता का नाम बालमुकुन्द भट्ट था।”²⁰

जन्म :

“पंडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म 23 जून सन् 1844 ई० को प्रयाग के एक प्रतिष्ठित मालवीय घराने में हुआ था। इनकी माता का नाम पार्वती देवी, पिता का नाम बेनीप्रसाद भट्ट था। इनके पिता व्यापारी थे और माता सुसंस्कृत महिला थीं उन्होंने भट्ट जी के मन में पढ़ने की विशेष रुचि जगायी।”²¹

शिक्षा :

भट्टजी गम्भीर प्रकृति के मनुष्य थे। उन्हें बालकों के संग खेलना अच्छा न लगता था। बचपन से ही उन्हें सत्संग का शौक था और पुराणों को सुनने का लालायित रहते थे। जो कुछ सुनते, वह उन्हें कंठस्थ हो जाता था। इससे मालूम

होता है कि इनकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी। परन्तु गम्भीर व्यक्तित्व के होने के कारण वे अपने विषय में प्रायः चुप रहा करते थे।

“भट्ट जी का जीवन भी अन्य हिन्दी साहित्य निर्माताओं की भाँति एक अकथ दुःखप्रद कहानी है। पिता के दुलार से तो जन्म से वंचित रहे क्योंकि वे बड़े लोभी आदमी थे और इन्हें दुकान पर बैठने के लिए तंग करते रहते थे। इसके विपरीत भट्टजी का झुकाव विद्याध्ययन की ओर अधिक था। इसके अलावा संस्कृत में रुचि रखने वाले ननिहाल वालों के यहाँ भट्टजी का लालन पालन हुआ था। उदार विचार वाली इनकी माता ने, जब ये संस्कृत पढ़ चुके तो इन्हें स्थानीय मिशन स्कूल में भर्ती करवा दिया।”²² परन्तु घर पर वे बराबर संस्कृत पढ़ा करते थे। मिशन स्कूल में रह कर उन्होंने बाइबिल की परीक्षाओं में ईसाईयों के लड़कों को सदा पीछे रखा। वहाँ के डेविड नामक एक पादरी तो इनसे इतना खुश था कि इन्हें वहाँ अध्यापक बना लिया। परन्तु इन्होंने तिलक धारण करना न छोड़ा जिससे इनके विद्यार्थी इनकी खिल्लियाँ उड़ाते। कहा जाता है कि बाद में उस स्कूल में इनकी किसी से पटी नहीं और एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह इन्होंने वहाँ से त्यागपत्र देना ही उचित समझा। इसी बीच में वे पंडित मदनमोहन मालवीय के चचा पंडित गदाधर मालवीय के सम्पर्क में आकर इन्होंने साहित्य और व्याकरण का गहन अध्ययन किया।

स्वर्गवास :

“पंडित बालकृष्ण भट्ट जी के पिता एवं अन्य सम्बन्धी चाहते थे कि वे पैतृक व्यापार में लगे पर भट्टजी का पंडित मन व्यापार में नहीं रमा। इस प्रश्न पर गृहकलह के बवण्डर में अत्यन्त दुःखी होकर उन्हें अपना सम्पन्न पैतृक घर छोड़कर अलग रहने के लिए बाध्य होना पड़ा। घर से अलग होने के बाद भट्टजी को सारा जीवन भयंकर आर्थिक कठिनाइयों के मध्य गुज़ारना पड़ा पर इस दृढ़ एवं आत्मसम्मानि व्यक्ति ने कभी भी हिम्मत नहीं हारी। कर्मठतापूर्वक सारा जीवन उन्होंने साहित्य को अर्पित किया। सन् 1885 ई० में सी०ए०वी० स्कूल इलाहाबाद में वे संस्कृत पढ़ाने लगे थे, तथा कुछ दिनों के बाद सन् 1888 ई० में कायस्थ

पाठशाला इण्टर कॉलेज, इलाहाबाद में संस्कृत के अध्यापक हो गये, पर अपने उग्र राजनीतिक विचारों के कारण अन्ततः यह नौकरी भी उन्हें छोड़नी पड़ी।²³

फिर उन्हें यत्र-तत्र लेखन और पत्रकारिता के द्वारा ही जीविका चलाने के लिए बाध्य होना पड़ा। जीवन के अन्तिम वर्षों में श्यामसुन्दर दास ने उन्हें हिन्दी-शब्द कोश के सम्पादन के लिए वैतनिक सहायक के रूप में बुलाया था पर भट्टजी के प्रति उनका व्यवहार बहुत अच्छा न था और स्वाभिमानी बालकृष्ण भट्ट शीघ्र ही उस कार्य से भी अलग हो गये। 20 जुलाई, सन् 1914 ई० को उनका प्रयाग में स्वर्गवास हो गया।

भट्टजी का कृतित्व :

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने छोटे बड़े सभी मिलाकर एक हजार से ऊपर निबन्ध लिखे हैं। इस तरह उन्होंने हिन्दी में निबन्ध साहित्य की कमी को पूरा करने में पर्याप्त परिश्रम किया है। उनके प्रायः सभी निबन्ध 33 साल तक लगातार निकलने वाली 'हिन्दी प्रदीप' के हर अंक में स्थान-स्थान पर जगमगा रहे हैं। भट्ट जी केवल निबन्धकार ही न थे, परन्तु इसके अतिरिक्त भट्ट जी उपन्यासकार और नाटककार भी थे। क्योंकि इस समय हिन्दी साहित्य के इन अंगों का विकास न हो पाया था इसलिए भट्ट जी के उपन्यास और नाटक अधिक प्रभावशाली नहीं थे फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इन दोनों अंगों के निर्माण में भट्ट जी ने सक्रिय योग दिया जिससे हम उनकी बहुमुखी प्रतिभा के विषय में कभी संदेह नहीं कर सकते।

उपन्यास :

“भट्ट जी के उपन्यासों में दो विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम 'नूतन ब्रह्मचारी' और द्वितीय 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन ब्रह्मचारी' सन् 1886 की हिन्दी प्रदीप की प्रतियों के कुछ अंकों में निकला था। इसे पुस्तकाकार करके पाठकों में बाँट दिया गया था। पता नहीं इस का द्वितीय संस्करण कब हुआ। परन्तु इसका तृतीय संस्करण 1945 में हिन्दी प्रदीप कार्यालय से प्रकाशित हुआ। इसे उपन्यास कहा जाये या कहानी अथवा ऐतिहासिक चित्त-आधुनिक शब्दावली में इसे उपन्यास ही कहना चाहिए।”²⁴

नाटक :

“भट्ट जी ने नाटक-साहित्य में भी अपना कौशल दिखलाया। कविवर गिरिधरदास के ‘नहुष’ (हिन्दी का प्रथम नाटक-भा० हरिशचन्द्र) और राजा लक्ष्मण सिंह के ‘शकुन्तला’ तथा भारतेन्दु के ‘विद्यासुन्दर’ नाटकों के पश्चात् कई लेखकों ने नाटक-रचना द्वारा अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करनी प्रारम्भ की। भट्ट जी ने करीब 20 नाटक लिखे। उनके नाटकों में 1. शर्मिष्ठा 2. पद्मावली, 3. चन्द्रसेन, 4. मृच्छकटिक, 5. विराताजनीय, 6. पृथ-चरित्र, 7. शिशुपाल-बध, 8. नलदमयन्ती, 9. दमयन्ती-स्वयम्बर, 10. शिक्षादान, 11. आचार विडम्बन, 12. नयी रोशनी का विष, 13. बृहन्नला, 14. वेणु संहार, 15. जैसा काम वैसा परिणाम आदि मुख्य हैं। इनमें शिक्षादान, आचार विडम्बन और नयी रोशनी प्रहसन हैं। ‘दमयन्ती-स्वयम्बर’ को हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) ने संवत् 1999 में पुनः छपवाया भी था, पर और किसी नाटक का पुनः संस्करण नहीं हुआ।”²⁵

प्रकाशित नाटक :

“इधर धनन्जय ‘सरल’ ने बड़ी छानबीन के पश्चात् ‘प्रदीप’ के पुरानी जिल्दों के आधार पर एक ‘भट्टनाटकावली’ रूप में निकला है जिसका प्रकाशन काशीनागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। इस संकलन में बृहन्नला, वेणु संहार और ‘जैसा काम वैसा परिणाम’ –तीन नाटक संकलित हैं।”²⁶

इनमें ‘शिक्षादान’ विक्टोरिया छापस्थान में चैत्र शुक्ल 5 संवत् 1934 में प्रथम बार छपा था।

समस्त ग्रन्थों के उपलब्ध न होने से भट्ट जी के नाटकों पर अभी तक किसी ने प्रकाश नहीं डाला है। हिन्दी-गद्य के शब्द-भण्डार को समृद्ध बनाने में भी इन्होंने बहुत कुछ प्रयत्न किया। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और शुद्ध हिन्दी भाषा के अनन्य प्रेमी होते हुए भी वे परम्परागत प्रचलित शब्दों के व्यवहार में ही नहीं अटके और न संस्कृत शब्दों की भरमार से भाषा को क्लिष्ट बनाने में ही अपनी शक्ति नष्ट की। उनका कहना था कि यदि किसी भाव को उन्तमता के साथ प्रकट करने के लिए अपनी भाषा में ठीक-ठीक शब्द न मिलें और विदेशी भाषा में वैसा उपयुक्त शब्द मिलता हो तो उसके व्यवहार करने में दोष न समझना

चाहिये। इसी सिद्धान्त के अनुसार उर्दू तो क्या वे प्रायः फारसी, अरबी या अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रयोग किया करते थे। जब कभी उन्हें किसी भाव को व्यक्त करना अभीष्ट होता और हिन्दी में अंग्रेजी का पर्यायवाची शब्द न मिलता और उसको पूर्णरूप से स्पष्ट करने में अंग्रेजी शब्द ही समर्थ मालूम होता तो वे निस्संकोच उन्हें भी ब्रेकट के अन्दर लिख देते थे। इसी प्रकार कभी-कभी निबन्धों के शीर्षक भी हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी दिया करते थे।

यह निबन्ध बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों का संग्रह से लिये गये हैं :

01. शंकराचार्य
02. शंकराचार्य और गुरु नान्तिक
03. कृष्ण चैतन्य महाप्रभु
04. स्वामी दयानन्द
05. लौकिक
06. कणाद दर्शन
07. कृष्ण की ईश्वरता
08. तपस्या : अनेक नाम रूप
09. धर्म समाज का अंग
10. वेदान्त और आधुनिक वेदान्ती
11. प्राचीन आर्यों की सूक्ष्मदर्शिता
12. निवृत्ति
13. पैत्रिक गुण-ग्रहण
14. अनोखी सृष्टि
15. हमारी मृगतृष्णा
16. भवितव्यता
17. मनुष्य जीवन की कर्तव्यता
18. सचाई की शोभा
19. कर्तव्याकर्तव्य का भेद
20. आत्म-शोधन

21. समझदारी
22. सुशिक्षितों का कर्त्तव्य
23. क्या होगा
24. जीवन—मरण
25. इंग्लैण्ड और भारत
26. हमारा दास्य—भाव
27. महाभारत के समय का भारत
28. स्त्रियों की मानसिक शक्ति
29. बाल विवाह
30. सौन्दर्य का मर्म
31. मध्यम श्रेणी
32. क्रय—विक्र
33. गर्भाधान और दाम्पत्य
34. गृहस्थी
35. सूर्योदय
36. 'ल'
37. 'दो'
38. 'द'
39. जी
40. वायु
41. पदार्थवाद
42. धूमकेतु—1
43. धूमकेतु—2
44. पेड़
45. भूगर्भ—निरूपण
46. सीसा
47. वनस्पति विज्ञान

48. बाल्यभाव
49. मनोविज्ञान
50. वक्रता या कुटिलाई
51. प्रीति
52. पसन्द
53. जिगीषा और इसका भयंकर परिणाम
54. कामायनी
55. दृढ़ संकल्प
56. भलाई और बुराई
57. कौमी तरक्की
58. नई रोशनी वाले हिन्दुस्तानी
59. फैशन के प्रवाह का प्रबल वेग
60. नासमझी
61. कालान्तर मीमांसा
62. हिन्दुस्तान की विद्या और कला
63. क्या प्रयाग तीर्थराज है ?
64. गरीबी और तवंगीरी
65. अमीर और उनके पार्श्ववर्ती
66. संस्कृत कवियों की उक्ति
67. नाक निगोड़ी
68. नटका जिये बुरे हवाल
69. समर्थ को बहु दोष गुसाई
70. धन नहीं तो कुछ नहीं
71. गुरु और चेला
72. भकुआ कौन-कौन
73. मजलिस हैवानात
74. मँगवो भलो न

75. इंग्लैण्ड और भारत (रूपक)
76. विचित्र स्वप्न
77. गदहे में गदहेपन क्या हैं
78. इश्क और रिज़क
79. अनोखे पंच और हिन्द सितारे की गीत
80. क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता ?
81. रंग में भंग
82. सबै अलोना लोन बिन
83. हमारी अपूर्ण अभिलाषायें
84. नये लाटसाहब
85. भारत की आरतदशा
86. हम क्या हैं ?
87. सत्पुरुषों के सदुपदेश
88. उन्नीसवीं शताब्दी का आदि और अन्त
89. युक्ति—युक्त
90. होम
91. घुन
92. रामलीला नाटक मण्डली
93. सभ्यता पिशाची सर्वनाशकारी
94. पारसी थियेटर
95. अन्धविश्वास
96. हमारे ऋषिजन क्यों मानवीय थे
97. ब्राह्मणों का सुधार कैसे हो ?
98. बूढ़े और जवान
99. नवयुवकों में गम्भीर्य आवश्यक
100. अबकी हमारी बारी है
101. प्रकाश²⁷

यह भट्ट—निबन्धावली (भाग—1) से लिये गये हैं :

01. "परम्परा
02. कालचक्र का चक्कर
03. संसार कभी एक सा न रहा
04. ईश्वर भी क्या ठठोल है !
05. दिलवहलाव के जुदे—जुदे तरीके
06. उपदेशों की अलग—अलग बानगी
07. विश्वास
08. तर्क और विश्वास
09. नीयत
10. जबान
11. उपमा
12. रुचि
13. लौ लगी रहे
14. नाम में नई कल्पना
15. बड़ों के बड़े हौसिले
16. ढोल के भीतर पोल
17. कर्णामृत तथा कणकटु
18. प्रकृति के अनुसार जीवन—मरण
19. चढ़ती उमर
20. दीर्घायु
21. विशाल—वाटिका
22. मेला—ढेला
23. दल का अगुआ
24. रस में फीकापन कब आता है ?
25. परिपक्व बुद्धि या पक्का आदमी
26. एकान्त—ज्ञान

27. जगत्-प्रवाह
28. नये तरह का जुनून
29. लोक-एषणा
30. मधुप
31. परचिन्तानुरंजन
32. खटका²⁸

यह निबन्ध भट्ट-निबन्धावली (भाग-2) से लिये गये हैं :

01. "ज्ञान और भक्ति
02. बोध, मनोयोग और युक्ति
03. आत्मत्याग
04. हृदय
05. दृढ़ और पवित्र मन
06. दृढ़ और प्राण
07. संभाषण
08. मनुष्य के जीवन की सार्थकता
09. कर्त्तव्य परायण
10. तेजस्विता या प्रभुशक्ति
11. भक्ति
12. सुख क्या है
13. संसार सुख का सार है हम इसे दुख का आगार कर रहे हैं
14. चढ़ती जवानी की उमंग
15. चित्त और चक्षु का घनिष्ट सम्बन्ध
16. मन और नेत्र
17. मनु के गुण
18. सुनीति तत्त्व शिक्षा
19. आदि मध्य अवसान
20. स्थिर अध्यवसाय या दृढ़ता

21. महत्त्व
22. मानना और मनाना
23. काम और नाम दोनों साथ-साथ चलते हैं
24. सुख-दुःख का अलग-अलग विवेचन
25. कष्टाकष्टतर क्षुधा
26. वायु
27. ग्राम्य-जीवन
28. मनुष्य तथा वनस्पतियों में समानता
29. नई वस्तु की खोज
30. कौतुक
31. दौड़ धूप
32. बातचीत
33. संग्राम
34. सोना
35. नई बात की चाह लोगों में क्यों होती है ?²⁹

यह भट्ट-निबन्ध माला (भाग-1) से लिये गये हैं :

01. "देवताओं से हमारी बातचीत
02. त्रिदेव कल्पना
03. स्त्रियाँ
04. पत्नीस्तव
05. बधुस्तव राज
06. कार्तिक-स्नान
07. रूपवानों में रूप का रहस्य
08. जवानी की उमंगें
09. कौआपरी और आशिकतन
10. रुचना या पसंद
11. सुगृहिणी

12. चली सो चली
13. चलन
14. चलन की गुलामी
15. रसाभास
16. हिन्दुस्तान के रईस
17. दरिद्र की गृहस्थी
18. एक अनोखा स्वप्न
19. नई सभ्यता की बानगी
20. दमाख्यान
21. एक अशरफी का आत्मवृत्तांत
22. वकील
23. अकिल अजीरन रोग
24. इंगलिश पढै सो बाबू होय
25. नहीं
26. बिना भाव
27. कतिकी का नहान
28. एक इग्लिसाइज्ड नए मित्र से मुलाकात
29. हाकिम और उनकी हिकमत
30. पन्च महाराज और मिडिल क्लास की परीक्षा
31. हमारे गुदड़ी के लाल
32. कट्टर सूम की एक नकल।³⁰

यह निबन्ध भट्ट-निबन्ध माला (भाग-2) से लिये गये हैं :

01. "राजा
02. कौलीन्य
03. कौलीन्य और सद्वृत्त
04. आचरण
05. आत्मगौरव

06. चरित्र शोधन
07. आनशान
08. ईमानदारी
09. जातपाँत
10. जातीयता के गुण
11. जातियों का अनुठापन
12. हिन्दु जाति का स्वाभाविक गुण
13. मानवी सम्पत्ति
14. सारल्यं सत्तयो मार्ग :
15. दिल और दिमाग
16. बड़प्पन और अच्छापन
17. मन की दृढ़ता
18. धर्म का महत्त्व
19. वेद क्या हैं ?
20. तीर्थों की तीर्थता
21. हमारे धर्म संबंधी खर्च
22. कौम
23. कालातिक्रमण
24. हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा
25. चाटुकार वा मिथ्या प्रशंसा
26. दान की जुदी-जुदी प्रणाली
27. मांस-भक्षण
28. हाड़ की उत्तमता
29. भिक्षावृत्ति
30. गया यात्रा
31. लोकोत्तर और सर्वसाधारण
32. सबसे भले हैं मूढ़ जिन्हें न ब्यापै जगत् गति³¹

यह निबन्ध बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध पुस्तक से लिये गये हैं :

01. "भारत का त्रिकाल
02. हम डार-डार तुम पात-पात
03. भाषाओं का परिवर्तन
04. ग्रामीण भाषा
05. सच्ची-समालोचना
06. हृदय
07. कौतुक
08. कौम
09. मन और नेत्र
10. बातचीत
11. स्त्रियाँ
12. आत्म गौरव
13. चरित्र शोधन
14. आत्मत्याग
15. नई बात की चाह लोगों में क्यों होती है ?
16. मानना और मनाना
17. वर्तमान महादुर्भिक्ष
18. सुनीतित्वशिक्षा क्यों आवश्यक है
19. काम और नाम दोनों साथ-साथ चलते हैं
20. मन और प्राण
21. मन के गुण
22. महत्त्व
23. हिन्दु जाति का स्वाभाविक गुण
24. ईमानदारी
25. सुख-दुःख का अलग-अलग विवेचन
26. संग्राम

27. तेजस्विता या प्रभुशक्ति
28. ग्राम्य-जीवन
29. कर्तव्य परायणता
30. ज्ञान और भक्ति
31. कष्टात्कष्टतरङ्गधु
32. मनुष्य की बाहरी आकृति मन की एक प्रतिकृति है
33. कवि और चित्तेरे की डाढ़ा मेड़ी
34. पौगण्ड या कैशोर
35. शब्दों की आकर्षण शक्ति
36. माता का स्नेह
37. मुग्ध माधुरी
38. चरित्रपालन
39. चारुचरित्र
40. कल्पना शक्ति
41. प्रतिभा
42. माधुर्य
43. आशा
44. आँसू
45. लक्ष्मी
46. श्री शंकराचार्य और गुरु नानकदेव
47. देशत्वा रक्षा का उपाय
48. वर्षारंभ
49. कृष्ण की ईश्वरता निदर्शन
50. प्राचीन ग्रन्थकार
51. नाक
52. राजा और प्रजा
53. हमारा दास्य भाव

54. महाभारत के समय का भारत
55. दल का अगुआ कैसा हो ?
56. मनुष्य के जीवन की सार्थकता
57. संसार में भलाई अधिक है कि बुराई
58. दिल बहलाव
59. हमारी मृगतृष्णा
60. आदि मध्य अवसान
61. आय-व्यय
62. परिचिन्तानुरंजन
63. दौड़-धूप
64. दृढ़ और पवित्र मन
65. चित्त और चक्षु का धनिष्ठ संबंध
66. सोना
67. वायु
68. द
69. जी
70. लोक एषणा
71. वेद क्या हैं ?
72. बड़ों का बड़प्पन''³²

पंडित प्रतापनारायण मिश्र कर व्यक्तित्व और कृतित्व :

पंडित प्रतापनारायण मिश्र आधुनिक हिन्दी के उन महापुरुषों में श्रेष्ठ हैं जिन्होंने अपनी कृतियों के द्वारा उसका शृंगार किया। भारतेन्दु युग में जिन गणमान्य व्यक्तियों के नाम लिए जाते हैं, उनमें मिश्र जी का नाम सबसे महत्त्वपूर्ण और विशेष स्थान रखता है। हिन्दी साहित्य की आधुनिक विधाओं में अनेक विधाओं के वे संस्थापक सूत्रधार हैं। निबन्ध, नाटक, कविता, समीक्षा आदि को उन्होंने अपनी तेजस्विता से प्रकाशित किया। हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भिक युग में मिश्र जी ने पत्रकारिता के मान स्तर को भी विकसित किया। साहित्यिक

पत्रकारिता के तो वे अपनी पीढ़ी के सबसे उत्तम प्रतिनिधि रहे हैं। पत्रकारिता का उद्देश्य और उसकी उपयोगिता और कार्यक्षेत्र से संबन्धित जितनी सहज और सटीक टिप्पणियां मिश्र जी ने अपने मासिक पत्र 'ब्राह्मण' में लिखी, वे आधुनिक पत्रकारिता के मार्गदर्शक सिद्धान्तों में गिनी जा सकती हैं। हिन्दी को अखिल भारतीय स्वरूप देने वाले और उसे राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित करने वाले व्यक्तियों में पंडित प्रतापनारायण मिश्र का स्थान भारतेन्दु के बाद सबसे ऊपर गिना जाता है।

वंश :

“मिश्र जी ने स्वयं अपने पूर्वजों का परिचय दिया है, हमारे पिता श्री संकटा प्रसाद मिश्र, पितामह श्री रामदयाल मिश्र प्रपितामह सेवकनाथ मिश्र वृद्ध पितामह श्री सबसुख मिश्र थे। मिश्र जी के पितामय पं० रामदयाल मिश्र के एक दूसरे भाई थे, जिनका नाम था शिवप्रसाद मिश्र। इनके दो पुत्र थे। एक का नाम था श्री जयगोपाल मिश्र और दूसरे का नाम श्री रामसहाय मिश्र। श्री जयगोपाल के चौथे पुत्र का नाम था रामकृष्ण मिश्र और इनके दो पुत्र थे जिनके नाम थे— श्री शिवरतन मिश्र और रामभरोसे मिश्र। पं० प्रतापनारायण के पितामह पं० रामदयाल मिश्र एक अच्छे कवि थे किन्तु उनकी कविता अब तक किसी को देखने को नहीं मिली। रामदयाल मिश्र के तीन पुत्र थे—द्वारिका प्रसाद मिश्र, यदुनन्दन मिश्र और संकटा प्रसाद मिश्र। इन्हीं संकटा प्रसाद मिश्र की इकलौती सन्तान थे हमारे चरित नायक पंडित प्रतापनारायण मिश्र थे।”³³

जन्म :

“मिश्र जी का जन्म निर्विवाद है। सभी विद्वान इस विषय में एकमत हैं कि पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण 9, चन्द्रवार, सं० 1913 वि० तदनुसार 24 सितम्बर, 1856 ई० को हुआ था। वे अपने पिता पं० संकटा प्रसाद मिश्र की एकमात्र सन्तान थे और अनेक धार्मिक अनुष्ठानों के उपरान्त उत्पन्न हुए थे इसलिए वे समस्त परिवार के लाड़ले थे। धार्मिक वृत्ति के होने तथा नारायण की कृपा से मिश्र जी का जन्म होने के कारण परिवारजनों ने उनका नाम 'प्रतापनारायण मिश्र' रखा। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने यह स्वीकार किया है कि

‘हमारे घर में बहुत सी रीतें हमारी चाची के पितृकुल की प्रचलित हुई, मेरा नाम भी उसी ढंग का हुआ। मिश्रजी की चाची रामानुजाचार्य की अनुयायी थीं, इसलिए उन्होंने उनका नाम ‘नारायण’ से संयुक्त कर रखा होगा यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।’³⁴

शिक्षा :

डॉ० शान्ति प्रकाश वर्मा प्रतापनारायण मिश्र जी की शिक्षा के बारे में लिखते हैं— “प्रतापनारायण जी के पिता एक प्रख्यात ज्योतिषी थे। उनकी इच्छा थी कि बालक प्रताप को ज्योतिष विद्या पढ़ाना आरम्भ किया जाए। कुछ दिनों तक प्रताप संस्कृत के शीघ्र बोध और मुहूर्त चिन्तामणि पढ़ते रहे। पर न तो इन पाण्डिताउ पोथियों में उनका मन लगा और न ही उन्हें जन्म-पत्री की रचना एवं ग्रह-नक्षत्र की गणना करना रुचिकर प्रतीत हुआ। “आदि नाड़ी बरं हन्ति मध्यनाड़ी च कन्यकाम” वाले मसले उन्हें पसन्द नहीं आये।” लाचार हो पिता ने अंग्रेजी शिक्षा के लिए उन्हें रामगंज मिशनल स्कूल में भर्ती कराया। पर मनमौजी प्रताप इस स्कूल में अधिक दिनों तक न रह सके। यहाँ पर भी उनका मन पढ़ने-लिखने और पहाड़ा रटने में न लगा। अन्त में उन्हें एक पादरियों के स्कूल भेजा गया। यह स्कूल नयेगंज के समीप था जो कि अब टूट गया है। स्कूल में इनका मन न लगता था किन्तु तब भी वहाँ रह कर बहुत सी बातों का उन्हें ज्ञान हो गया। इन स्कूलों में रहकर जो भी उन्होंने सीखा वह अपनी मेधाशक्ति से ही सीखा। मिशन स्कूल में तो उन्हें अपनी स्वतंत्र प्रकृति के कारण अनेक बार अपने अध्यापकों का कोप-भाजन बनना पड़ता था। बाबू सीताराम के कथानुसार मिश्र का मन पढ़ाई में न लगता था। अनेक प्रयत्न करने पर भी उन्हें पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के बंधन में बाँधा न जा सका। अन्ततः अंग्रेजी और हिन्दी का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त करके इन्होंने 1857 ई० के लगभग 19 वर्ष की आयु में विद्यालय की पढ़ाई को सदा-सदा के लिए तिलांजलि दे दी। इस प्रकार मिश्र जी की स्कूली शिक्षा अधूरी रह गयी, और किसी प्रकार की कोई प्रमाणिक परीक्षा न उत्तीर्ण कर पाये। इसी समय के आसपास प्रताप के पिता का स्वर्गवास हो गया।”³⁵

डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल ने मिश्र जी की प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में लिखा है, मिश्र जी को प्रारम्भ में विद्याध्ययन के लिए एम०पी०जी० स्कूल में भर्ती कराया गया, किन्तु नियमित रूप से स्कूल न जाने और पढ़ाई में रुचि न लेने के कारण अध्यापको को कोप-भाजन बनना पड़ा और अन्ततः विद्यालय की पढ़ाई सदा-सदा के लिए छोड़ बैठे। बाद में घर पर ही इनके पिताजी ने इन्हें ज्योतिष विद्या पढ़ाई। किन्तु तथ्य यह है कि मिश्र जी ने पहले घर पर पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त की तथा बाद में मन न लगने पर विभिन्न विद्यालयों में उन्हें भर्ती कराया गया।

स्वर्गवास :

अभाव और चिन्ता की दिशा में मिश्र जी का स्वास्थ्य सर्वथा खराब रहा। शक्ति से अधिक श्रम, अनेक चिन्ताओं और समुचित पोषण के अभाव में इनके शरीर को व्याधि-मन्दिर बना दिया था। किसी न किसी रूप में सर्वदा जड़ जमाये रहने वाली व्याधियाँ उनके जीवन की संधातिनी अनियमितताओं के कारण उत्पन्न हुई थी। अपने जीवन के प्रति लापरवाही और रहन-सहन तथा व्यापार में विरक्ति का समावेश कर लेने के फलस्वरूप उनके समस्त उपचार निष्क्रिय और निष्फल हो जाते थे।

बवासीर की बीमारी ने उनको ऐसा ग्रस्त किया था कि वे आजीवन उससे मुक्ति न पा सके। उसके अतिरिक्त कई बीमारियों ने कुछ समय के अनन्तर उन पर प्रबल आक्रमण किये, जिनके कारण उनके बचने की आशा बार-बार धूमिल हो जाती थी। नवम्बर 1885 ई० में वे ऐसे चारपाई पर पड़े कि तीन महीने तक उठ न सके और उनकी दुर्दशा देख-देख उनके इष्टमित्रों तक को रोना आ गया। इस बीमारी के सम्बन्ध में उन्होंने ब्राह्मण में जो सूचना प्रकाशित की थी उसको पढ़कर उनकी कारुणिक दशा का सहज ही बोध हो जाता है हम तीन मास में ऐसे रोगग्रस्त हो रहे हैं कि जिसका वर्णन नहीं। पाठक यदि देखते तो त्राहि-त्राहि करते। रोज के मिलने वाले मित्रों से कोई पूछे जिन्हें किसी-किसी दिन हमारी दशा पर रोना आता है। फिर आप जानिये अकेला मनुष्य पत्र-संपादन करता कि रोग जानता भोगता। अतः हम क्षमा पत्र हैं। इस बीमारी के बाद ऐसा क्रम बंधा कि मिश्र जी कभी एक वर्ष तक रोग ग्रस्त रहते और कभी डेढ़ वर्ष तक। 'ब्राह्मण पत्र

का संपादन उस अवधि में बन्द रहता था। इन बीमारियों के क्रमागत आक्रमणों से तंग उन्होंने अपने पत्र में बड़ी वेदनापूर्ण अपील प्रकाशित की थी हमने रोग और निर्बलता के कारण अब की बार का सा क्लेश कभी नहीं उठाया और अब भी चार महीने हो गये पूर्ण स्वास्थ्य के लक्षण नहीं देख पड़ते। इधर हम दवा और परहेज कर ही रहे हैं, यदि कोई सज्जन पत्र द्वारा बीमारी का हाल पूछ के कोई शीघ्र गुणकारी परीक्षित औषधि बतलावेगे तो भी हम उनका गुण मानेंगे। उनकी बीमारियों का इलाज कानपुर के डाक्टर भोलानाथ किया करते थे, जिनके वे बड़े आभारी थे। उनके वैद्यों सन्यासियों और डॉक्टर के उपचार भी मिश्र जी को रोगमुक्त नहीं कर सके। 1894 में मिश्र जी ऐसे बीमार पड़े कि फिर उठ न सके और अन्त में हिन्दी का यह सर्वप्रिय साहित्य महारथी आषाढ शुक्ल 4, शुक्रवार, संवत् 1951 वि० (6 जुलाई, 1894) को रात्रि के दस बजकर 38 मिनट की अल्पायु में ही स्वर्गस्थ हो गया।

प्रतापनारायण मिश्र का कृतित्व :

जनता, प्रकाशकों, मित्रों और स्वयं लेखक द्वारा इतनी उपेक्षा होने पर भी बहुत सा प्रताप साहित्य में प्राप्त होता है। मिश्र जी के कुछ श्रद्धालु प्रेमियों और मित्रों द्वारा उनका साहित्य एकत्रित करके प्रकाशित करने की योजना बनाई गयी है और उसका अन्वयन ही हुआ है। मिश्र जी ने 'कविवचन सुधा', 'भारत प्रताप', 'हिन्दुस्तान' और 'ब्राह्मण' में अपनी रचनाएं समय-समय पर प्रकाशित करवायी थीं। 'ब्राह्मण' उनका ही पत्र था, इसलिए उसमें उनकी अधिकांश रचनाएं प्रकाशित हुई थीं। किन्तु आज 'ब्राह्मण' के अतिरिक्त अन्य पत्र-पत्रिकाओं के स्फुट अंक मिलते हैं और 'ब्राह्मण' के भी सभी अंक प्राप्त नहीं होते।

सन् 1906 ई० में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के एक लेख के पश्चात् मिश्र जी के साहित्य का पहला संकलन 'निबन्ध नवगीत' (प्रथम भाग) में हुआ और उसके बाद रमाकान्त त्रिपाठी ने 'प्रताप पीयूष' प्रेमनारायण टण्डन ने 'प्रताप समीक्षा' नारायण प्रसाद अरोड़ा तथा लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी ने 'प्रतापनारायण मिश्र' और नारायण प्रसाद अरोड़ा ने 'प्रतापलहरी' का सम्पादन करके मिश्र साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया। इन व्यक्तिगत प्रयासों के अनन्तर काशीनागरी

प्रचारिणी सभा ने मिश्र साहित्य के सम्पादन बीड़ा उठाया और विजयशंकर मल्ल को उसका भार सौंपा। मल्ल जी ने 'ब्राह्मण' की प्रतियों में से चुनकर प्रतापनारायण मिश्र के लेखों और निबन्धों का सम्पादन किया। सभा ने उसे 'प्रतापनारायण ग्रन्थावली' (प्रथम भाग) शीर्षक से संवत् 2014 वि० में प्रकाशित किया था किन्तु अभी इस ग्रन्थावली में मिश्र जी के कई निबन्धों और लेखों का पूर्ण अथवा अपूर्ण अंश प्रकाशित नहीं हुआ है। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रताप-साहित्य की संरक्षा और प्रकाशन के लिए योजनाबद्ध पग उठाये जायें। मिश्रजी का यत्र-तत्र विकीर्ण साहित्य संकलित करके सुसंपादित रूप में प्रकाशित होना चाहिए। शान्ति प्रकाश वर्मा जी को मिश्र जी का विपुल अवशिष्ट साहित्य भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी रामरतन पुस्तकालय, नन्दन साहू लेन, ठठेरी बाजार, वाराणसी, प्रताप साहित्य मण्डल, बैजगांव बेथर (उन्नाव) नारायण प्रसाद अरोड़ा के निजी पुस्तकालय, कलाभवन, काशी विश्वविद्यालय आदि स्थानों में देखने को मिला।

मिश्र जी का साहित्य तीन प्रकार का है—(1) रागात्मक (2) ज्ञानात्मक (3) संग्रहीत।

रागात्मक साहित्य में नाटक, परिसंवाद, निबन्ध, समालोचना, उपन्यास, कहानी तथा कविता आती हैं। ये मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार के हैं तथा इनके लिए आवश्यकतानुसार गद्य और पद्य का प्रयोग किया गया है। दूसरे वर्ग के साहित्य में मिश्र जी के इतिहास, भूगोल तथा धार्मिक ग्रन्थ आते हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने गद्य और पद्य साहित्य प्रायः समान मात्रा में ही लिखा है और दोनों ही क्षेत्रों में उनकी साहित्यकता कल्पना-प्रवणता और ज्ञानात्मकता का चमत्कार दृष्टिगत होता है।

(1) रागात्मक साहित्य—रागात्मक साहित्य दो प्रकार के होते हैं—

(क) पद्यात्मक तथा (ख) गद्यात्मक।

(क) पद्यात्मक साहित्य में मिश्र जी की कविताएँ आती हैं और वे सब मौलिक हैं। उनके काव्य ग्रंथों की संख्या और नामावली इस प्रकार है :—

01. कानपुर माहात्म्य

02. तृप्यन्ताम्
03. तारापति पचीसी
04. दीवाने बरहसन (वेदान्त शतक)
05. दंगल-खंड
06. प्रार्थनाशतक
07. प्रेमपुष्पावली
08. फाल्गुन माहात्म्य
09. बैडला का स्वागत
10. मनकी लहर
11. युवराज कुमार
12. लोकोक्तिशतक
13. शोकाश्रु
14. शृंगार विलास
15. श्री प्रेमपुराण
16. होली है
17. स्फुट कविताएँ

T-7445

(ख) गद्यात्मक साहित्य में मिश्र जी का नाटकादि मौलिक एवं अनूदित साहित्य आता है:-

(क) नाटक, प्रहसन, भाण आदि।

01. गो संकट (रचनाकाल 1882 ई० प्रकाशन काल 1886 ई०)
02. कलिकोटुक रूपक
03. जुवारी खुवारी (अपूर्ण प्रहसन) ब्राह्मण, खण्ड-1, संख्या-4
04. हठी हम्मीर (लगभग 1887 ई०)
05. संगीत शाकुन्तल (छायानुवाद) (प्रकाशन काल 1891 ई०)
06. भारत दुर्दशा रूपक (प्रकाशन काल 1902 ई०)
07. कलिप्रवेश (गीतिरूपक) (ब्राह्मण खण्ड-4, संख्या-4-5)
08. दूध का दूध पानी का पानी (अपूर्ण भाग ब्राह्मण खण्ड-1, संख्या-7)

09. जयनार सिंह (संदिग्ध)

10. भारतेन्दु धारामृत (संदिग्ध)

(ख) प्रश्नोत्तरी अथवा आलाप—

(प्रकाशन)

01. हो ओ ओ ली है

ब्राह्मण, खण्ड-1, संख्या-1

02. ज्ञानचन्द्र और प्रेमचन्द्र

" खण्ड-1, संख्या-5

03. फक्कड़ और भंगड़

" खण्ड-1, संख्या-9

04. प्रश्नोत्तर

" खण्ड-2, संख्या-11

05. प्रश्नोत्तर

" खण्ड-3, संख्या-1

06. प्रश्नोत्तर

" खण्ड-3, संख्या-3

01. कुतर्क का मुंह तोड़ उत्तर

" खण्ड-3, संख्या-9-10

02. प्रश्नोत्तर

" खण्ड-5, संख्या-7

03. प्रश्नोत्तर

" खण्ड-5, संख्या-10

04. प्रश्नोत्तर

" खण्ड-9, संख्या-4

होली है

" खण्ड-9, संख्या-8

नवपंथी और सनातनाचारी

" खण्ड-9, संख्या-12"³⁶

(ग) निबन्ध (संकलित एवं असंकलित)

01. प्रस्तावना

02. असेसर

03. स्यापा

04. ज्यूरिसडिक्शन बिल

05. बेगार

06. रिश्वत

07. दयापात्र जीव

08. कचहरी में शालिग्रामजी

09. गुप्त ठग

10. मारमार कहे जाओ, नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है

11. देशोन्नति

12. शालिग्रामजी का कचहरी में जाना ठीक है या नहीं
13. मस्ती का बड़
14. ज़रा अब तो आँखें खोलिए
15. काव्यकुब्जों ही की सबसे हीन दशा क्यों है
16. मुक्ति के भागी
17. तीन दबाबत निबल के पातक राजा रोग
18. न भूतो न भविष्यति
19. ज़रा सुनो तो सही
20. फूटी सहै आँजी न सहै
21. बेकाम न बैठ कुछ किया कर
22. सूचना
23. वर्षारम्भ
24. घूरे से लत्ता बिनै कनातन का डौल बाँधे
25. विस्फोटक
26. हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार ही होगा
27. टेढ़ जानि शंका सब काहू
28. भविष्यत वाणी
29. दूसरी पेशी गोई
30. मतवालों की समझ
31. ज़रूर पढ़िए
32. सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय । पवन जगावत अग्नि
को, दीपहिं देत बुझाय
33. समझदार की मौत
34. सुनो भाई
35. कलिकोष
36. मुनीनां च मतिभ्रमः
37. श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका

38. मुच्छ
39. क्षमा कीजिए
40. गपशप
41. स्वत्ताश्रु
42. भारत का सर्वोत्तम गुण
43. प्रयाग हिन्दू समाज का महोत्सव
44. प्रिय वियोग समदुःख जग नहीं
45. विशेष सूचना
46. वर्षारम्भे मंगलाचरण
47. भारत का सर्वोत्तम गुण
48. बस बस होश में आइये
49. हुची चोट बिहाई के माथे
50. आकाशवाणी
51. अतिसर्वत्र सर्जयेत्
52. रूस और मूस
53. तत्व के तत्व में अंग्रेजी बाजों की भूल है
54. प्रेम एवं परोधर्मः
55. अखण्डनीय सिद्धान्त
56. कलयुगी सत्य
57. टॉय टॉय फिस
58. एक अकिल के पुतले चिट्ठी लिखते हैं
59. बुद्धिमानों विचार के कहना
60. सरकार से जरा कोई पूछे
61. जरा अक्ल दौड़ाओ
62. ढूँढ लाओ तो एक पैसा दें
63. कोई शुद्ध कर दे तो दो पैसा इनाम दें
64. मतलब की बातें

65. सेत का लटका
66. खुदा से शिकवा हमें किस कदर है क्या कहिए
67. मुनीनां च मतिभ्रम
68. दंगल
69. मोहरर्म से खुदा बचाये
70. सच्चे जी से धन्यवाद
71. भारत दुर्दशा की दुर्दशा
72. इस सादगी (मूर्खता) पे कौन न मर जाए ऐ खुदा, लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं
73. कुतर्क का मुँहतोड़ उत्तर
74. गंगाजी
75. हमारे यहाँ की रामलीला
76. हाथी चले ही जाते हैं कुत्ते भौंका ही करते हैं
77. खरी बात सहिदुल्ला कहें सबके जी से उतरे रहें
78. भारतेन्दु का दालभात में मूसलचन्द
79. नागरी महिमा की एक चोज
80. बाल्यविवाह विषयक एक चोज
81. पड़े पत्थर समझ पर आपकी समझे तो क्या समझें
82. भ्रम है
83. धर्मोत्सव
84. इनकम टैक्स
85. सोना
86. देशी कपड़ा
87. सूचना
88. दुनिया अपने मतलब की है
89. आप बीती
90. धन्यवाद

91. जुबली
92. चर्बी मिलायी
93. सोने का डंडा और पौंडा
94. मिडिल क्लास
95. उर्दू बीबी की पूंजी
96. द
97. चुटकुला
98. बालक
99. दिवाली में उपासना
100. भौं
101. दिन थोड़ा है दूर जाना है, यहाँ ठहरूँ तो मेरा निबाह नहीं है
102. कानपुर रत्नहानि
103. अंग्रेज बहादुर
104. रामलीला और मौहरम
105. युवावस्था
106. नारी
107. ऊँच निवास नीच करतूती
108. कानपुर कुछ कुनमुनाया है
109. ज़रा सुनो
110. पादरी साहब का व्यर्थ यत्न
111. जवानी की सैर
112. जरूर देखो
113. जातीय महासभा
114. भारत पर भगवान की अधिक ममता है
115. खड़ी बोली का पद्य
116. नेशनल कांग्रेस
117. परीक्षा

118. बलि पर विश्वास
119. सुनने लायक बात
120. मरे का मारें साह मदार
121. ककराष्टक
122. आलमें तस्वीर (1)
123. आलमें तस्वीर (2)
124. न्याय
125. नेशनल कांग्रेस
126. हमारे यहाँ की कोई बात व्यर्थ नहीं है
127. ट
128. पतिव्रता
129. दबी हुई आग
130. हमारे दयालु
131. पक्ष
132. स्त्री
133. कलिमह केवल नाम प्रभाऊ
134. कानपुर और नाटक
135. कन्नौज में तीन दिन
136. काम
137. हम राजभक्त हैं
138. प्रताप चरित्र
139. सबकी देखली
140. महाविज्ञापन
141. नास्तिक
142. जुबाँ
143. हमारे अनुग्राहक
144. खुशामद

145. बालशिक्षा
146. आल्हा अहलाद
147. अपूर्व रहस्य
148. कांग्रेस की जय
149. अहह कष्टम पंडितता विधे :
150. समझने की बात
151. सुनिये तो
152. कांग्रेस कर्तव्य
153. किस पर्व में किसकी बन आती है
154. किस पर्व में किसी आफ़त आती है
155. एक विचार
156. संसार की अद्भुत गति है
157. ठगों के हथकण्डे
158. दौत
159. धरती माता
160. बधाई है
161. धरती माता की पूजा
162. समय का फेर
163. मतवादी अवश्य नर्क जायेंगे
164. हमारे कलैक्टर साहब
165. एक
166. लत
167. उपाधि
168. त
169. होम करते हाथ जलता है
170. राम
171. ईश्वर का वचन

172. दान
173. धर्म और मत
174. दानपात्र
175. देय वस्तु
176. स्वार्थ
177. झलमंसी
178. मूलन्नास्ति कुतः शाखा
179. देखिए ! देखिए ! आवश्यक देखिए
180. सोशल कान्फरेन्स
181. तिल
182. काल
183. वृद्ध
184. पौराणिक गूढार्थ
185. दो
186. धन्यवाद
187. अब बातों का काम नहीं
188. अष्टकपारी दारिद्री जहां जाय तंह सिद्धि
189. रथयात्रा
190. एक कथा (आरम्भिक अंश)
191. पंच परमेश्वर
192. सूचना ! सूचना ! सूचना !
193. पंचायत
194. सत्य
195. हमारी आवश्यकता (1)
196. यह तो बतलाइये
197. और सुनिये
198. ममता

199. हमारी आवश्यकता (2)
200. एक सलाह
201. मूर्ति पूजकों की महौषध
202. श्री भारत धर्म महामण्डलम
203. सच्चा सदनुष्ठान
204. लेजेसलैटिव कौंसिल के मेम्बरों की नियुक्ति का प्रबंध
205. ग्रामों के साथ हमारा कर्तव्य
206. अपभ्रंश
207. सहवास बिल अवश्य पास होगा
208. न जाने क्या होना है
209. देव मंदिरों के प्रति हमारा कर्तव्य
210. एक साधे एक सधै, सब साधे सब जाय
211. अवश्य देखिए
212. पेट
213. गंगाजी की स्थिति
214. असम्भव है
215. बात
216. देखिए तो
217. भ्रम है
218. हरि जैसे को तैसा है
219. दशावतार
220. हमारे उत्साहदाता
221. स्वतंत्रता
222. अन्तिम सम्भाषण
223. नव सम्भाषण
224. पढ़े—लिखों के लक्षण
225. ब्रजमूर्ख

226. रसिक समाज
227. पुलिस की निंदा क्यों की जाती है
228. क्या हम यह मान लें
229. विश्वास
230. उन्नति की धूम है
231. एक सलाह
232. भेड़िए धसान
233. निर्णय शतक
234. आसबर्न
235. बाल्य विवाह
236. छल
237. एक सलाह
238. प्रतिमा पूजन के द्वेषी देशहितैषी क्यों बनते हैं
239. असर इसको कहते हैं
240. सच्चा विज्ञापन
241. गपशप
242. समझ की बलिहारी
243. भगवत्कृपा
244. अवतार
245. मित्र कपटी भी बुरा नहीं होता
246. पढ़े लिखों के लक्षण
247. दूध की उत्पत्ति
248. सिद्धान्त वाक्यावली
249. ईश्वर की मूर्ति
250. लड़ते हैं और हाथ में 'तलवार भी नहीं'
251. गपशप
252. छल

253. पुराण समझने को समझ चाहिए
254. क्या लिखें
255. सर्वसंग्रह कर्तव्य का: काले फलदायक
256. प्रह्लाद चरित्र
257. निर्णय शतक
258. जरा मन लगाकर पढ़िए
259. जरा पढ़ लीजिए
260. झगड़ालू पंथ
261. प्रतिष्ठा केवल प्रेम की है
262. चिन्ता
263. गोरक्षा (1)
264. मना
265. गोरक्षा (2)
266. आप
267. अपव्यय
268. गपशप
269. धोखा
270. विलायत यात्रा
271. मंगल समाचार
272. आप बीती कहूँ कि जग बीती
273. गोरखा (3)
274. वाजिद अलीशाह
275. स्वतंत्र आदि ।³⁷

(घ) समालोचना :

01. भाषादीपिका की समालोचना
02. वैष्णव पत्रिका की समालोचना
03. हित प्रबोध की समालोचना

04. सुखदवार्ता की समालोचना
05. लतिका नाटिका की समालोचना
06. तप्ता संवरण नाटक
07. नीत्योपदेश की समालोचना
08. समालोचना (चारूपाठ, शृंगारचन्द्रिका और गुलस्ते बेनजीर)
09. प्राप्ति स्वीकार (हिन्दुस्तान पत्र की समालोचना)
10. समालोचना (दिनकर प्रकाश की)
11. कान्यकुब्ज प्रकाश, तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूप तथा स्त्री शिक्षा की समालोचना
12. प्रेमतरंग, काश्मीर कीर्ति की समालोचना
13. आनन्द कादम्बिनी की समालोचना
14. श्री भारतेन्दु शताब्दी की समालोचना
15. सुश्रुत संहिता की समालोचना
16. संयोगिता स्वयंकर की आलोचना
17. दुर्गाशतक और संध्याविधि की आलोचना
18. समालोचना
19. सती नाटक, पद्मावती, वीर नारि नाटक की समालोचना
20. वेनिस का बाँका की आलोचना
21. गौरक्षार्थ दीपिका की समालोचना
22. ऊजड़ गाँव की समालोचना
23. प्राप्ति स्वीकार
24. तन, मन, धन, गुसाई जी के अर्पण, भारत सौभाग्य, हास्य तरंग की समालोचना
25. मनस्मृति, रत्नावली, निस्साहस हिन्दु की समालोचना
26. भाग्यवती की समालोचना
27. प्राप्ति स्वीकार
28. प्राप्ति स्वीकार

29. प्राप्ति स्वीकार
30. चतुर्भुजकृत, आल्हा रामायण 'सुन्दरकाण्ड' की समालोचना
31. नारी धर्म की समालोचना
32. किस्सा आर्यनाटक की समालोचना
33. समालोचना
34. मास्टर नन्हेमल रचित 'सुखदवार्ता' की समालोचना
35. पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'देवीस्तुति' की समालोचना
36. 'वैष्णवपत्रिका' की समालोचना
37. लाला श्रीनिवास कृत 'तप्तासंवरण नाटक' की समालोचना
38. पं० नकछेदी तिवारी कृत 'शृंगारलतिका' की समालोचना
39. बाबू जगन्नाथ द्वारा प्रकाशित 'शतरंज विलास' की समालोचना
40. भारतेन्दु रचित 'भारत दुर्दशा' की समालोचना
41. पं० बदरीनारायण चौधरी की 'आनन्द कादम्बिनी' की समालोचना
42. सुश्रुत-संहिता की समालोचना
43. पं० श्रीधर पाठक की 'एकान्तवासी योगी 'मनोविनोद' बाल भूगोल' तथा ऊजड ग्राम की समालोचनाएँ
44. पं० अयोध्यासिंह उपाध्यायकृत 'वोनिस का बॉका की समालोचना
45. स्वामी सदानन्द आग्नहोत्री के 'कौमी अखबार' की समालोचना

(ड) अनूदित : साहित्य

उपन्यास : मिश्र जी का कोई भौतिक उपन्यास नहीं मिलता है। उन्होंने बंगला भाषा के प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिम बाबू के सात प्रसिद्ध उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया था। उन उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं –

01. अमरसिंह
02. इन्दिरा
03. कपाल कुण्डला
04. देवी चौधरानी
05. युगलागुलीय

06. राजसिंह

07. राधारानी

(च) कहानी :

उपन्यास की भाँति मिश्र जी ने बंगला की कहानियों का भी हिन्दी में अनुवाद किया है। वह इस प्रकार है –

01. कथा बाल संगीत

02. कथा माला

03. चरिताष्टक

(2) ज्ञानात्मक साहित्य :

(क) इतिहास

01. सेन राजवंश

02. सूबे बंगाल का इतिहास

03. त्रिपुरा का इतिहास

(ख) भूगोल

सूबे बंगाल का भूगोल

(ग) विविध रचनाएँ

मौलिक

01. शेवसर्वस्व

02. सुचाल शिक्षा

03. स्वास्थ्य विधा

04. शिशु शिक्षा

05. प्रताप चरित्र (अपूर्ण)

06. पौराणिक गूढ़ार्थ (अपूर्ण)

07. रामायणरमण (अपूर्ण)

08. सौन्दर्यमयी (संदिग्ध)

09. प्रताप संग्रह (संदिग्ध)

अनूदित

01. आर्य कीर्ति भाग-1 और 2

02. नीति रत्नावली

03. पंचामृत

04. बोधोदय

05. वर्णपरिचय
06. शिशुविज्ञान

(3) संगृहीत रचनाएँ :

01. मानसविनोद (पद्य)
02. रसखानशतक (पद्य)
03. रहिमनशतक (पद्य)
04. सतीचरित संग्रह ब्राह्मण, खण्ड 8 / 10 / 6
(गद्य संग्रह)

‘प्रताप साहित्य मण्डल’ बैजगाँव, बेथर से प्राप्त मिश्र जी की पुस्तकों की सूची में उपर्युक्त सूची में उल्लिखित पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों के नाम भी प्राप्त हुए हैं; जिनका न तो कहीं अन्यत्र नामोल्लेख ही मिलता है और न विवरण ही, उन पुस्तकों के नाम और प्रकाश-स्थलों के नाम इस प्रकार हैं—

- | | |
|---------------------|----------------------------------|
| 01. अनुरागवर्द्धिनी | नवलकिशोर प्रेस, कानपुर |
| 02. त्रिफला | इण्डियन प्रेस, कानपुर |
| 03. होड़ा चक्र | ब्राह्मण प्रेस, कानपुर |
| 04. जनक बाजार विनोद | ब्राह्मण प्रेस, कानपुर |
| 05. गिरजा विनोद | ब्राह्मण प्रेस, कानपुर |
| 06. शुभ वार्ता | शंकर प्रेस, कानपुर ³⁸ |

बदरी नारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ का व्यक्तित्व और कृतित्व :

बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ हिन्दी साहित्य के महान साहित्यकार हैं। उन्होंने निबन्ध, नाटक, आलोचना आदि समीक्षाओं पर लिखा एवं साहित्य की उन्नति में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

वंश :

“पंडित बदरीनारायण चौधरी के पूर्वज “खोरिया” नामक गाँव जिला—बस्ती से सुल्तानपुर जिले के दोस्तपुर नामक गाँव में आ बसे थे। उसके बाद वे जिला—आजमगढ़ के दत्तापुर गाँव में आकर रहने लगे।” जहाँ से बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ के दादा पं० जगन्नाथ प्रसाद को अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए

मिर्जापुर आना पडा। वहाँ से सन् 1830 के पूर्व मुहल्ला गुरहट्टी में आकर रहने लगे। पं० जगन्नाथ प्रसाद के तीन पुत्र थे—बकतूराम, शिवसहाय और पं० शीतल प्रसाद। इन तीनों में प्रथम दो को पंडित जगन्नाथ प्रसाद खेतीबाडी की देखरेख के लिए 'दत्तापुर' गाँव में ही छोड़ आये। शीतलप्रसाद ने अपनी लगन से कुछ लिखना—पढ़ना सीख लिया था। वहाँ उनका मन नहीं लगता था अतः वे अपने पिता के कारोबार में हाथ बटाने के उद्देश्य से मिर्जापुर चले आये पिता के कार्य में विशेष रुचि न होने के कारण वे किसी अन्य धन्धे की बात सोचने लगे। अपने चातुर्य व यत्न से उन्होंने मिर्जापुर के तत्कालीन जिलाधीश श्री ए०एच० बुडकाक (A.H. Wood Cock) को प्रसन्न कर लिया। परिणामः वे सरकार की ओर से बैलगाडियों के चौधरी नियुक्त किये गये। चौधराने का पंडित जगन्नाथ प्रसाद ने बड़ी तत्परता से कार्य किया। अतः पंडित जगन्नाथ प्रसाद को इस कार्य में आशातीत सफलता मिली। थोड़े ही समय में वे मिर्जापुर के एक बहुत बड़े सेठ हो गये थे। धनाढ्य के साथ वे धार्मिक सदाचारी व उदार व्यक्ति थे।³⁹

चौधरी गुरुचरण लाल के तीन पत्नियाँ थी, प्रथम तुलसादेवी तथा अन्य दो गोविन्दी एवं लक्खी देवी आपस में बहिनें थीं। तुलसा देवी विदुषी व शीलवती थीं। अतएव चौधरी शीतल प्रसाद तक उनका बड़ा आदर करते थे। उनसे सात पुत्र इस प्रकार हैं— बदरीनारायण, प्रेमघन, वासुदेव प्रसाद, मथुरा प्रसाद, यदुनाथ प्रसाद, हरिश्चन्द्र, अनन्त प्रसाद और लोचन प्रसाद तथा एक पुत्री ने जन्म लिया। अन्य दो पत्तिनियों में गोविन्दी से केवल एक पुत्र (चन्द्रचुड प्रसाद) और लक्खीदेवी ने तीन पुत्रों को जन्म दिया। (चन्द्रमौली, दुष्यंत तथा श्रीनिवास) इस प्रकार चौधरी गुरुचरणलाल के कुल मिलाकर बारह संताने थीं जिनमें हमारे चरित नायक बदरीनारायण प्रेमघन सबसे बड़े थे।

जन्म :

“चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' का जन्म भाद्रपद कृष्ण 6 सं० 1912 को इनके पूर्वजों के गाँव दत्तापुर जिला गोंडा में हुआ था।”⁴⁰ कुछ विद्वानों का मत है कि चौधरी, बदरीनारायण 'प्रेमघन' का जन्म मिर्जापुर के एक अभिजात ब्राह्मण वंश में भाद्र कृष्ण 6 सं० 1912 को हुआ और इस संबंध में हिन्दी के प्रायः विद्वान मत

हैं। अंग्रेजी तिथि के अनुसार यह दिन 21 अगस्त सन् 1856 ई० ठहरता है। परन्तु प्रेमघन जी की जन्म पत्रिका के अभाव में उनके जन्म मुहूर्त के संबंध में निश्चित रूप से कहना सम्भव नहीं। एक जन्म-चक्र जो उनका बतलाया जाता है उसके आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उनका जन्म मध्यरात्रि को हुआ होगा।

शिक्षा :

“पंडित बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ को उनकी विदुषी माता ने उन्हें छोटी उम्र में ही हिन्दी का अक्षर ज्ञान करना आरम्भ कर दिया था। उस समय फारसी का विशेष चलन था अतः प्रेमघन को फारसी की शिक्षा दिलाई गयी।”⁴¹ उन्होंने फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा ‘दत्तापुर’ के मकतबखाने में ही प्राप्त की थी। ‘दुर्दशा दत्तापुर’ नामक कविता से यह भली भाँति विदित हो जाता है कि दत्तापुर के मकतबखाने का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं —

“यही ठौर हुतो हाय वह मकतब खाना।

पढ़न पारसी विद्या शिशुगन हेतु ठिकाना।

पढ़त रहे बचपन मैं हम जहँ निपज भाइन संग।

अजहुँ आय सुधि जाकी पुनि मन रंगत सोई रंग।।”⁴²

प्रेमघन के समय में शासकों की अंग्रेजी भाषा का बोलबाला होना स्वाभाविक था। देश में उसका प्रचार-प्रसार दिनोंदिन बढ़ रहा था। उस युग की हवा और आवश्यकता के अनुसार प्रेमघन को भी अंग्रेजी शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की गयी। इस लिए उन्हें फैजाबाद के राजकीय स्कूल में प्रविष्ट कराया गया। फैजाबाद के पूर्व गोंडा में भी उनकी शिक्षा का उल्लेख कतिपय लेखकों ने किया है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं— “कुछ कालांतर में गौड़ों में अंग्रेजी की शिक्षा के सिलसिले में भेजे गये। जहाँ अवधेश महाराज पर प्रतापनारायण सिंह, लाल त्रिलोकी नाथ सिंहा और राजा उदयनारायण सिंह के साथ हो जाने से उन्हें अश्वारोहण, गज संचालन, लक्षवेध और मृगया से अधिक अनुराग हो गया।”⁴³

किन्तु पंडित दिनेश नारायण उपाध्याय ने प्रेमघन की गौड़ शिक्षा का प्रतिपाद करते हैं वे लिखते हैं—“प्रेमघन ने फैजाबाद के पूर्व अन्य किसी अंग्रेजी

स्कूल में शिक्षा नहीं पायी। फैजाबाद के गवर्नमेन्ट स्कूल में पढ़े थे—गोंडा में शिक्षा प्राप्त करना आदि बिल्कुल गलत है। उस समय गोंडा में हाई स्कूल था ही नहीं फैजाबाद में कमिश्नरी होने के नाते एक हाईस्कूल नहीं था।”⁴⁴

अंतर्साक्ष्य के आधार पर त्रिपाठी के इस कथन की भी पुष्टि नहीं होती कि प्रेमघन का अवधेश महाराज सर प्रताप नारायण सिंह आदि से गोंडा में परिचय हुआ था क्योंकि स्वयं प्रेमघन ने फैजाबाद स्कूल में उनसे परिचय का उल्लेख किया है यदि इसके पूर्व भी उनसे परिचय होता तो वे उसका अवश्य उल्लेख करते। वे लिखते हैं—“यद्यपि हम लोग उनके अंतरंग भेदों के जानकार थे और संबंध हमारा अत्यन्त धनिष्ठ था किशोरावस्था अर्थात् छात्रावस्था ही से हम परस्पर परिचित थे। क्योंकि हम भी उन दिनों फैजाबाद के जिला स्कूल में पढ़ते थे उस समय हमें उनकी अलौकिकता भस्मपुंज में छिपी आग की चिनंगारी सी जुगजुगाती लखाती थी।”⁴⁵

अतः यह कहना अधिक संगत है कि प्रेमघन की अंग्रेजी शिक्षा पहले फैजाबाद जिला स्कूल में हुई थी। प्रेमघन जब फैजाबाद स्कूल में पढ़ते थे उन दिनों वे अयोध्या में अपने पिता की सरयूबाग वाली ब्राह्मण वैदिक संस्कृत पाठशाला में रहा करते थे। फैजाबाद स्कूल में ही उनका प्रतापनारायण सिंह, लाल त्रिलोकीनाथ सिंह और उदयनारायण सिंह आदि से सम्पर्क हुआ जो मित्रता के परिणत हो गया। उक्त महानुभाव के संसर्ग से प्रेमघन की घुड़सवारी गजसंचालन और लक्ष्य भेद के प्रति आकृष्ट हुए। इस संबंध में जब उनके पितामह पंडित शीतल प्रसाद जी को ज्ञात हुआ तो उन्होंने प्रेमघन को अपने पास मिर्जापुर बुला लिया और घर पर ही प्रेमघन के पढ़ने की व्यवस्था की गयी। उन्हें पढ़ाने के लिए मौलवी और पंडित नियुक्त किये गये।

स्वर्गवास :

“बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ के परिवार का झगड़ा शान्त होने के लिए वह अपने भाईयों को जमींदारी कार्य देखरेख में देकर प्रेमघन मिर्जापुर में रहने लगे। आपको भाईयों से बंटबारा करना पड़ा और तुरन्त आपको गोंडा जिले में शीतल गंज ग्रान्ट नामक ग्राम में अन्तिम समय में रहना पड़ा। संवत् 1978 में

प्रेमघन एक बार चौधराने के काम की देख-रेख के सम्बन्ध में शीतलगंज से मिर्जापुर गये थे।⁴⁶ वहाँ उन्हें 31 जनवरी को प्रातः 5 बजे अचानक लकवा मार गया और उनका दाहिना अंग शून्य हो गया। बहुत उपचार किया परन्तु सब निष्फल रहा। कुछ दिन पश्चात् यह पक्षाघात ही उनके निधन का कारण बना। सम्पादक 'माधुरी' के अनुसार लकवा तो उनकी मृत्यु का बहाना मात्र था, वास्तव में उन्हें पारिवारिक फूट रूपी सर्पिणी ने ही उस लिया था।⁴⁷

सन् 1923 ई० की 14 फरवरी (फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी बुधवार वि०सं० 1979) को रात्रि के लगभग नौ बजे वे इस संसार को छोड़कर चले गये। दूसरे दिन सूर्योदय से पंचक लगने वाले थे इसलिए प्रायः चार बजे पूर्व ही गंगा पार उनका दाह संस्कार कर दिया। हिन्दी भाषा साहित्य के उस महारथी का निधन समाचार हिन्दी जगत् में विद्युत वेग से फैल गया और वह हिन्दी की प्रायः सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में काले हाशियों में छापा गया। उनके निधन रूप में ब्रज भाषा-काव्य और आधुनिक हिन्दी साहित्य का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र सदा के लिए अस्त हो गया।

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का कृतित्व :

“बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का कार्य-क्षेत्र व्यापक था। वे साहित्यकार एवं सम्पादक होने के साथ जाति, धर्म समाज तथा देशहित के कार्यों में रहते थे। हिन्दी भाषा व साहित्य की उन्नति में ये आजीवन लगे रहे। वे हिन्दी के प्रबल समर्थकों में थे तथा देश की एकता के लिए उन्होंने हिन्दी या नागरी को ही एक मात्र उपयुक्त भाषा समझा था।”⁴⁸

“बदरीनारायण 'प्रेमघन' ने विविध विद्याओं कविता, नाटक, प्रहसन, निबंध और आलोचना आदि के द्वारा साहित्य को परिपुष्ट किया। अपने समय के भाषा साहित्य-सेवियों में वे अग्रगण्य थे। इस दिशा में उनका सक्रिय महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उनकी हिन्दी भाषा-साहित्य विषयक महत्त्वपूर्ण सेवाओं को पुरस्कार रूप ही “हिन्दी साहित्य सम्मेलन” ने उन्हें अपने तृतीय अधिवेशन (वि०सं० 1970) का सभापति निर्वाचित किया था। उस समय बाबू राजेन्द्र प्रसाद अधिवेशन की स्वागत

कार्यकारिणी समिति के मंत्री तथा बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन सम्मेलन के प्रधान मंत्री थे।⁴⁹

सम्पादक के रूप में प्रेमघन ने “आनन्द कादम्बिनी” नामक एक मासिक पत्रिका और “नागरी नीरद” नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन किया था। वे अपने समय के हिन्दी सम्पादकों में विशेष रूप से सम्मान्य थे। सन् 1907 ई० में प्रयाग की सम्पादक समिति के वे उपसभापति और 1911 ई० में सभापति निर्वाचित हुए।⁵⁰

प्रेमघन हिन्दु जाति, धर्म और समाज की शुभ परम्पराओं के प्रबल समर्थक थे। नव शिक्षितों द्वारा अपनी श्रेयस्कर परम्पराओं का परित्याग करना तथा पाश्चात्य सभ्यता के अधप्रवाह में बहते आना उन्हें अहितकर प्रतीत होता था। इसे वे देश के लिए घातक समझते थे। साथ ही वे भारत के नवोदभूत समाजों ब्राह्मसमाज व आर्य समाज आदि के भी पक्ष में नहीं थे। वे लिखते हैं—“ईसाई, मुसाई, यवन, मलेच्छादि, हमारे धर्म, कर्म, आचार, विचार के पूरे शत्रु हैं और ब्राह्मसमाजी, आर्य समाजी तथा अंग्रेजी शिक्षा के दुष्प्रभाव से विकृत मस्तिष्क वाले कानों साहब लोग व जिन्हें नकली अंग्रेजी कहना चाहिए, आधे शत्रु हैं। अथवा यो कहिये कि वे दाना, दुश्मन और ये नादान दोस्त हैं। क्योंकि उनका आघात केवल धर्म ही पर होता है और वे केवल हमारे विश्वास का नाश करना चाहते, परन्तु ये तो आचार—विचार व्यवहार और जातीय संस्कार आदि सभी को समूल नाश करने की ताक में अहर्निश पड़े रहते हैं।”⁵¹ जाति धर्म और समाज के विकास की दिशा में उनका सक्रिय योग था। इनकी श्रेष्ठ परम्पराओं के रक्षणार्थ उन्होंने साहित्य व पत्रकारिता का सहारा तो लिया ही अपने नगर में इन विशेषताओं में संबंधित अनेक सभाएँ भी स्थापित कीं।

कविता :

बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ का काव्य लेखन में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह आगे इस प्रकार है—प्रेमघन की कविताएँ प्रायः उनकी पत्र—पत्रिकाओं—‘आनन्दकादम्बिनी’ और ‘नागरी नीरद’ में निकली थीं। कुछ प्रथक रूप में पुस्तक के आकार में भी प्रकाशित हुई जिनका यथास्थान उल्लेख करना अभीष्ट (मनोरथ)

है, किन्तु वे सब सर्वप्रथम वि०सं० 1996 में ही प्रेमघन सर्वस्व-प्रथम भाग में एक साथ संकलित हो सकीं। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमघन की प्रायः सभी कविताओं को इसमें संकलित करने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी कतिपय रचनाएँ इसमें सम्मिलित नहीं हो सकी हैं। 'सर्वस्व' की द्वितीयवृत्ति में पंडित दिनेशनारायण उपाध्याय का द्वितीय संस्करण का 'निवेदन' और संकलित कविताओं के साथ उनकी परिचयात्मक टिप्पणियाँ अधिक दी हुई हैं प्रेमघन की जो कविताएँ दृष्टिगोचर हो सकीं। वह इस प्रकार हैं —

युगमंगल स्तोत्र

ब्रजचन्द्र पंचक

राजराजेश्वरी जयति

कलम की कारीगरी

कलिकाल-तर्पण

'पितर-प्रलाप'

शोकाश्रु बिन्दु

नेहनिधि पयान

होली की नकल या मुहर्रम की शकल

मान की मौज

प्रेमपीयूष वर्षा

सूर्य स्तोत्र

मंगलाशा अथवा हार्दिक धन्यवाद

'हास्य बिन्दु'

हार्दिक हर्षादर्श

आनन्द बधाई

लालित्य लहरी

भारत बधाई

स्वागत पत्र

आनन्द अरुणादेय

संभ्रान्त स्वागत
आर्याभिनन्दन
साम्राज्यभिनन्दन
जीर्ण जनपद अथवा दुर्दशा दत्तापुर
सौभाग्य समागम
श्री अलौकिक लीला
मंयक महिका
संगीत काव्य
शृंगार बिन्दु
वर्षा बिन्दु
स्फुट बिन्दु
बसन्तबिन्दु तथा बसंत प्रकरण
स्वदेश बिन्दु

नाटक :

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने कविता की भाँति नाट्य साहित्य में भी उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण देन रही है। प्रेमघन ने अनेक नाटक, प्रहसन व आलाप आदि लिखे हैं। प्रेमघन की भाषा खड़ी बोली हिन्दी का आरम्भिक रूप मिलता है। आज जो मानक हिन्दी का रूप प्रचलित है उसके अनुसार यदि प्रेमघन की भाषा को परखा जाय, तो निश्चय ही उसमें व्याकरणिक तथा वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ मिलेंगी, किन्तु वास्तविकता यह है कि उस समय हिन्दी गद्य प्रारम्भ ही हुआ था तथा ऐसी ही भाषा प्रचलित थी। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भाषा के विकास में प्रेमघन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रेमघन ने कई नाटक लिखे जैसे— 'भारत सौभाग्य', 'कांग्रेस के अवसर पर खेले जाने के लिए सन 1888 में लिखा गया था। यह नाटक विलक्षण है। पात्र इतने अधिक और इतने प्रकार के हैं कि अभिनय दुस्साध्य ही समझिए। भाषा रंग विरंगी है—पात्रों के अनुरूप उर्दू, मारवाड़ी, बैसबाड़ी, भोजपुरी, पंजाबी, मराठी, बंगाली सब कुछ मिलेगी।'⁵²

‘प्रयाग रामागमन’ नाटक में राम का भारद्वाज आश्रम में पहुँचकर अतिथ्य ग्रहण है इसमें सीता की भाषा ब्रज रखी गयी है। ‘वीरांगना रहस्य महानाटक’ (अथवा वेश्याविनोद महानाटक) दुर्व्यसनग्रस्त समाज का चित्र खींचने के लिए उन्होंने सं० 1943 से ही उठाया और थोड़ा-थोड़ा करके समय-समय पर अपनी आनन्दकादंबिनी में निकलते रहे, पर पूरा न कर सके। इसमें जगह-जगह शृंगार रस के श्लोक, कवित्त, सवैया, गज़ल, शेर इत्यादि रखे गये हैं।⁵³

प्रेमघन का नाट्य साहित्य इस प्रकार है —

माधवी माधव नाटक (सन् 1878 ई०)

वारांगना रहस्य महानाटक अथवा वेश्याविनोद (वि०सं० 1942)

भारत सौभाग्य

प्रयाग रामागमन

प्रहसन व अलाप

पाठशाला कुतूहल

घोंघेमल साहु और सिविलाइज्ड जेंटिल मैन

रोवो रोवो रोते जाबो (वि०सं० 1938)

बीबी मेहतरानी और ब्राह्मणी की बात चीत

आर्य्या किसकी भार्या

पंडित मुंशी और महाजन (वि०स० 1942)

जुबिली जमघट या कि यारों के ठट्ट (वि० स० 1944)

पशु प्रपंच (वि०स० 1961)

अपूर्व सम्मिलित (वि०स० 1969)

कुट्टी और जुट्टी (वि०स० 1964)

उपासक और परिहास

वक्ता और श्रोता (वि०स० 1934)

एक आर्य समाजी बरात के बराती और दर्शक की बातें

पांडेय और पादड़िन का समागम

निबन्ध :

निबन्ध शब्द का अर्थ रोकना या बाँधना है। इसके पर्यायवाची रूप में 'लेख', 'सन्दर्भ', 'रचना', 'प्रस्ताव' आदि का उल्लेख किया जाता है। आजकल इसका प्रयोग लैटिन के 'एग्जीजियर' (निश्चितापूर्वक परीक्षण करना) आधुनिक साहित्य के 'निबन्ध' का विकास भी बहुत कुछ पाश्चात्य साहित्य की प्रेरणा से हुआ है। आधुनिक निबन्ध के जन्मदाता मौतेन महादेय का कथन है—“निबन्ध विचारों उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है। दूसरी ओर जॉनसन महोदय के मत में निबन्ध का आकस्मिक और उच्छृंखल आवेग असम्बद्ध और चिन्तनहीन बुद्धि विलास मात्र है।”⁵⁴

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के साहित्यिक अदभव से पूर्व हिन्दी में निबन्ध परम्परा का सूत्रपात हो चुका था। सदासुखलाल, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, भातेन्दु हरिश्चन्द्र और बालकृष्ण भट्ट जैसे इस दिशा में पहल कर चुके थे। यों तो सदा सुखलाल के 'सुरासुर निर्णय' (वि०स० 1839 से 1841) से आधुनिक काल में निबन्ध परम्परा का सूत्रपात हो चुका था। परन्तु उसका अजस्त्र प्रवाह भारतेन्दु युग से आरम्भ हुआ। इस युग के प्रेरणा केन्द्र हरिश्चन्द्र ही थे तथा तत्कालीन प्रायः सभी हिन्दी लेखकों ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की थी।

वह युग हिन्दी निबन्ध या लेख के निर्माण का आरम्भ काल था तथा प्रेमघन के पूर्व बहुत कम ही लेखक इस दिशा में उल्लेखनीय थे।

निबन्धों के वर्गीकरण की अनेक पद्धतियाँ रही हैं। सभी विषय की दृष्टि से उनके वर्गीकरण किये जाते हैं। प्रेमघन के निबन्धों का भी अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है। पं० दिनेश नारायण उपाध्याय ने उनके निबन्धों को साहित्यिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐतिहासिक, आलोचनात्मक और सम्पादकीय अग्रलेख जैसे वर्गों में रखने की चेष्टा की है। यह विभाजन प्रायः विषय के आधार पर हुआ है। उनके निबन्धों का विचारात्मक, आलोचनात्मक और वैयक्तिक जैसे वर्गों में उल्लेख किया है, किन्तु इसमें आलोचनात्मक निबन्धों का विचार विवेचन प्रधान होने के कारण विचारात्मक वर्ग के अन्तर्गत ही उल्लेख किया जा सकता था। प्रेमघन के निबन्ध में सामान्यतः विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक और

वैयक्तिक जैसे वर्गों के अन्तर्गत विचार किया है। प्रेमघन के निबन्धों (लेखों) में प्रायः विचार तत्त्व की प्रधानता मिलती है। अतः वह प्रधान रूप से विचारात्मक लेख थे। भारतेन्दु युग में विचारात्मक निबन्धों का श्री गणेश ही उनके द्वारा हुआ था। इस वर्ग में जिन निबन्धों का उल्लेख किया जा रहा है समाचार पत्र अथवा अखबार किसे कहते हैं; नागरी भाषा, दृश्य रूपक वानाटक, हिन्दू हिन् और हिन्दी, हमारे देश की भाषा और अक्षर, हमारे धार्मिक सामाजिक व व्यवहारिक संशोधन, विधवा विपत्ति वर्षा, तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन कलकत्ता की सभापति भाषण, संयोगिता स्वयंवर की आलोचना, बंग विजेयता की आलोचना, कठाली-कुतूहल एवं कजली की कुछ व्याख्या, नागरी के समाचार पत्र और उनके सम्पादकों का समाज, नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा, नागरी के समाचार पत्र और उनकी आलोचना, हमारा नवीस सवंत्सर, भावी भारतीय महासम्मिलन, स्वादेशी वस्तु स्वीकार और विदेशी वहिष्कार, भारतीय प्रजा में दो दल, पुरानी तिरस्कार और नयी का सत्कार, भारत वर्ष की दरिद्रता, कांग्रेस की दशा नागरी के पत्र और उसकी विवाद प्रणाली तथा हमारी प्यारी हिन्दी आदि। इन निबन्धों में प्रायः 'सामयिक विषयों के सम्बन्ध' रहा है तथा इसमें से अधिकांश पत्रकारिता के ढंग से निबन्ध है। जिनमें भाषा राजनीति, समाज और आलोचनादि विषयों का समावेश हुआ है।

वर्णनात्मक या विचारात्मक :

इस वर्ग में निबन्धों में प्रायः दर्शनीय स्थानों, यात्रा तथा ऋतु आदि के वर्णन हुआ करते हैं जिनमें विचार अनुभूति और कल्पना का समावेश देखा जा सकता है प्रेमघन के इस वर्ग निबन्धों में ऋतुवर्णन। परिपूर्ण पावस और पावस प्रस्थानादि तथा गंगा सागर यात्रादि। वस्तुतः इस वर्ग के निबन्ध उन्होंने बहुत कम लिखे हैं। उनके 'बनारस का बुढ़वा मंगल' और 'दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार संस्करणात्मक एवं वैयक्तिक निबन्धों में भी वर्णनात्मक प्रसंग आये हैं।

भावात्मक :

प्रेमघन के निबन्धों में भावत्व का समावेश दिखाई देता है। वे हैं भारतेन्दु अवसान और शोकोच्छ्वास आदि।

वैयक्तिक :

इसके अन्तर्गत प्रेमघन के उन निबन्धों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें उनके जीवन की व्यक्तिगत घटनाओं और निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है—ऐसे निबन्धों में गुप्त गोष्ठी, गाथा, बनारस का बुढ़वा मंगल और दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार हैं। शोकाच्छवास निबन्ध बहुतांशतः इसी प्रकार के हैं। बुढ़वा आधुनिक ढंग से निबन्ध कही जाने वाली रचनाओं में गुप्त गोष्ठी गाथा, बनारस का मंगल, दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार और ऋतुवर्णन जैसे निबन्धों का उल्लेख किया गया है।

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जी के निबन्धों का संग्रह संपा० श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय जी ने प्रेमघन—सर्वस्य के दूसरे भाग में किया है। जो इस प्रकार है—

“समाचार पत्र या अखबार किसे कहते हैं।

नागरी भाषा (या इस देश की बोल-चाल की भाषा)

ऋतु वर्णन

बेसुरी तान

दृश्य, रूपक वा नाटक

त्रिवेणी तरंग

समय

हिन्द, हिन्दू और हिन्दी

हमारी प्यारी हिन्दी

हमारे देश की भाषा और अक्षर

भारतेन्दु अवसान

गुप्त गोष्ठी गाथा

बनारस का बुढ़वा मंगल

दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार

शोकोच्छवास

विधवा विपत्ति वर्षा

देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक
हमारे धार्मिक, सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन
वीर पूजा
भावी भारतीय महा-सम्मेलन
स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार
भारतीय प्रजा में दो दल
रंग की पिचकारी
पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार
भारत वर्ष की दरिद्रता
कांग्रेस की दशा
भारतवर्ष के लुटेरे और उनकी दीन दशा
नागरी के पत्र और उनकी विवाद प्रणाली
नागरी समाचार पत्र और उनके सम्पादकों का समाज
नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा
कजली कुतूहल
कजली की कुछ व्याख्या
तृतीय साहित्य सम्मेलन कलकत्ते के सभापति का भाषण
भारतीय नागरी भाषा
नीलदेवी की समालोचना
संयोगिता स्वयम्बर और उसकी आलोचना
बंग विजयता की आलोचना
नागरी के समाचार पत्र और उनकी आलोचना
उर्दू बेगम की आलोचना
आनन्द कादम्बिनी का प्रथम प्रादुर्भाव
पत्रिका की प्रार्थना
नागरी नीरद का पत्र परिचय
नीरद का नवीन वर्षारम्भ

हमारा नवीन संवत्सर
आनन्द कादम्बिनी का नवीन संवत्सर
नवीन वर्षारम्भ
स्थानक संवाद
स्थानिक संवाद
अब क्या करें
पंच का विज्ञापन
प्रेषित पत्र।”⁵⁵

पत्रिकाएँ :

प्रेमघन जी की पत्रिकाएँ इस प्रकार हैं —
‘आनन्द कादम्बिनी—
‘नागरी नीरद’

लाला श्रीनिवासदास का व्यक्तित्व और कृतित्व :

भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों में एक नाम लाला श्रीनिवासदास का भी आता है उनकी हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका है। इन्होंने नाटक, उपन्यास तथा निबन्ध आदि लिखकर हिन्दी गद्य की बहुमूल्य सेवा की है। परीक्षागुरु इनके द्वारा रचित ऐसा उपन्यास है, जिसको पहला मौलिक उपन्यास होने का श्रेय प्राप्त है। इनका निबन्ध के क्षेत्र में अधिक योगदान नहीं है किन्तु एक प्रसिद्ध निबन्ध ‘भरतखण्ड की समृद्धि’ एवं भूमिका के रूप में लिखे गये कुछ लेख ही निबन्ध की श्रेणी में आते हैं देखा जाय तो इनके अप्रत्यक्ष रूप से निबन्ध में सहयोग द्वारा प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं।

जन्म और स्वर्गवास :

“लाला श्रीनिवासदास के पिता लाला मंगलीदास मथुरा के प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचंद्र के मुनीम क्या मैनेजर थे और दिल्ली में रहा करते थे। वहाँ श्रीनिवासदास का जन्म संवत् 1908 और मृत्यु सं० 1944 में हुई।”⁵⁶

कृतित्व :

“लाल श्रीनिवासदास का भारतेन्दु के समसामयिक लेखकों में उनका भी एक विशेष स्थान था। उन्होंने कई नाटक लिखे हैं। ‘प्रह्लाद चरित’।। दृश्यों का एक बड़ा नाटक है, पर उसके संवाद आदि रोचक नहीं, भाषा भी अच्छी नहीं है। ‘तप्तासंवरण नाटक’ सन् 1874 के हरिश्चन्द्र मैगनीज़ में छपा था पीछे सन् 1883 ई० में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इसमें तप्ता और संवरण की पौराणिक प्रेमकथा है।”⁵⁷

“श्रीनिवासदास नाटककार और उपन्यासकार के रूप में विख्यात हैं। उनका सन् 1882 में प्रकाशित ‘परीक्षागुरु’ उपन्यास हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है। इनके चार नाटक उपलब्ध हैं। ‘प्रह्लाद चरित्र’ तप्ता संवरण, रणधीर प्रेममोहिनी और संयोगिता स्वयंवर। निबन्ध के क्षेत्र में इनका विशेष योगदान नहीं है। इन्होंने दिल्ली से सन् 1874 ई० में ‘सदादर्श’ नामक पत्र निकाला था। इनके लेख प्रायः इसी पत्र में प्रकाशित हुए हैं। ये एक अच्छे शैलीकार थे। इनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। लेकिन इनके निबन्धों में ‘भारतेन्दुयुगीन मस्ती और हास्यव्यंग्य का अभाव खटकता है। ‘भरतखण्ड की समृद्धि’ इनका श्रेष्ठ निबन्ध है।”⁵⁸

श्री राधाचरण गोस्वामी का व्यक्तित्व और कृतित्व :

गोस्वामी ब्रजभाषा के बहुत बड़े समर्थक ही नहीं, खड़ी बोली के विरोधियों में से थे। जिस समय खड़ी बोली का आन्दोलन चला था गोस्वामी जी ने उसमें प्रमुख भाग लिया और हर प्रकार से खड़ी बोली को अयोग्य बताते हुए ब्रजभाषा को प्रमुखता दिलवाने की चेष्टा की थी। ये ब्रज निवासी थे। ये संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के साथ ही साथ समाज सुधारक, देश प्रेमी, साहित्यिक और रसिक व्यक्ति थे और इन पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित ‘हरिश्चन्द्र मैगनीज़’ का काफी प्रभाव पड़ा था और उससे प्रेरणा पाकर इन्होंने वृन्दावन से कुछ दिनों तक ‘भारतेन्दु’ नामक एक पत्र भी निकाला था। इनकी साहित्यिक प्रतिभा ने हिन्दी साहित्य को कुछ मौलिक नाटक, यथा ‘सुदामा नाटक’, ‘सती चन्द्रावली’, ‘अमर सिंह राठौर’ तथा ‘तन मन धन’ श्री गोसाई जी के अर्पण और कुछ बंगला

उपन्यासों के अनुवाद जैसे—‘बिरजा’, ‘जाबिजी’ तथा ‘मृणमयी’ दिये थे। किन्तु गोस्वामी जी की साहित्यिक प्रसिद्धि का मुख्य कारण खडी बोली के पद्य का विरोध ही था।”⁵⁹

जन्म :

“श्री राधाचरण का जन्म फाल्गुन 5, सं० 1918 (तदनुसार 25 फरवरी, 1859 ई०) को वृन्दावन में गोस्वामी गल्लू जी उपनाम गुणमंजरीदास के घर में हुआ था।”⁶⁰

शिक्षा :

“श्री राधाचरण गोस्वामी जी की सं० 1927 में नियमित संस्कृत शिक्षा प्रारम्भ हुई। पंडित परिवार होने के कारण अब तक अनेक श्लोक कंठ हो गये थे। अपने पितृचरण के साथ शिष्य वर्ग में बहुधा जाते रहने से आप पर आचार—व्यवहार का बड़ा सुन्दर संस्कार पडा। विविध परिवारों के संस्कार का ही परिणाम था कि कट्टर सनातनी युवक में भारतीय उदारता की नींव जमी 13 वर्ष पश्चात् फर्रुखाबाद में पंडित उमादत्त जी से कौमुदी पढी और राजकीय स्कूल में अंग्रेजी पढने को नाम लिखाया। यह समाचार शिष्यवर्ग में दावाग्निसां अविलम्ब फैल गया। गुरु—घराने का बालक क्लेच्छ भाषा सीखे यह शिष्य वर्ग सहन कैसे करता।”⁶¹

“पर शिष्य ने इस बात को उचित नहीं समझा कि उनके गुरु का बेटा और भावी गुरु क्लेच्छ भाषा पढे, अतः इन्हें स्कूल से नाम कटा लेना पडा। बाद में गोस्वामी जी ने घर पर ही छिपाकर हिन्दी, अंग्रेजी शिक्षक जैसी किसी पुस्तक से अपने आप अंग्रेजी पढी।”⁶²

स्वर्गवास :

“श्री राधाचरण गोस्वामी ब्रजभाषा के दिग्गज पंडित, प्रेमी और सुकवि थे। आपका निधन 64 वर्ष की अवस्था में पौष बदी 12, सं० 1982 वि० को वृन्दावन में हुआ। आपके पौत्र श्री गो० अद्वैतचरण जी ने अपने पितामह की पुण्य स्मृति में श्री राधाचरण पुस्तकालय, वृन्दावन की स्थापना की है, जिसका उद्घाटन 26 मार्च 1964 ई० को श्री वियोगीहरि जी ने किया था।”⁶³

श्री राधाचरण गोस्वामी जी का कृतित्व :

श्री राधाचरण गोस्वामी जी न सं० 1934 में आपने जीविका और कलम दोनों सभौली तथा 6 वर्ष तक अनवरत हिन्दी के प्रचलित प्रायः सभी पत्रों में लिखा। आपके लेख सारगर्भित एवं प्रभावशाली हैं। आप के लेखों की संख्या दो सौ होगी, इनमें वे प्रबंध भी सम्मिलित हैं जो अलग पुस्तकाकार भी हो सकते हैं। सतत लिखने के अभ्यास से प्रतिभा को मँजने का अवसर मिला। आपके लेख के विषय बहुत विस्तृत हैं, आपकी प्रतिपादन शैली विचित्र है। प्रत्येक बात को अपने ढंग से ही देखते हैं, प्रतिभा उसमें चार चाँद जड़ देती है। साहित्य राजनीति, समाज और धर्म को आपने अपनी लेखनी द्वारा नवीन प्रेरणा तथा चेतना दी।⁶⁴

सं० 1938 की वसन्त पंचमी को लाहौर में 'भारतेन्दु' नामक पत्र निकला था। यह किसी प्रकार एक साल चला, फिर बन्द हो गया। राधाचरण जी भारतेन्दु के भक्त थे, वे इस पत्र को चैत्र पूर्णिमा सं० 1940 से अपने सम्पादन तथा प्रबंध में वृन्दावन से निकालने लगे। यहाँ भी यह श्रावण पूर्णिमा 1943 तक चला, फिर धनाभाव के कारण बन्द हो गया। सं० 1947 में यह फिर निकला, पर पाँच अंक के ही बाद सदा के लिए सो गया। गोस्वामी जी ने सं० 1968 में 'श्री कृष्ण चैतन्य चंद्रिका' नामक पत्रिका निकाली थी, यह भी शीघ्र समाप्त हो गई। भारतेन्दु में राधाचरण जी ही के लेख अधिकांश में रहा करते थे।⁶⁵

गोस्वामी जी ने लगभग तीन दर्जन गद्य-पद्य ग्रंथ लिखे, जिनमें नाटक, कविता, उपन्यास आदि सभी हैं। इनकी सूची नीचे प्रस्तुत की जा रही है।

नाटक :

01. सरोजनी (अनुवाद)
02. श्रीदामा (सुदामा का दारिद्र्य मोचन)
03. सती चंद्रावली (दुखांत नाटक, मुस्लिम अत्याचार की करुण कहानी)
04. अमर सिंह राठौर (ऐतिहासिक)
05. तन मन धन श्री गोसाई जी के अर्पण (प्रहसन)
06. मंग तरंग (प्रहसन)
07. बूढ़े मुँह मुँहासे (प्रहसन)

उपन्यास और कहानी :

01. जावित्री
02. विधवा विपत्ति
03. सौदामिनी
04. विंदो चतुरा (अनूदित कहानी)

विविध गद्य ग्रन्थ :

01. विदेश यात्रा विचार
02. विधवा विवाह विवरण
03. देशोपकारी
04. ब्रजेन्द्र विजय
05. शिक्षा सार
06. हिन्दी बँगला वर्ण शिक्षा
07. पतितपावन श्री गौरांग
08. शिक्षामृत
09. श्री वैष्णव बोधिनी

कविता :

01. नव भक्तमाल
02. दामिनी दूतिका
03. शिशिर सुषमा
04. इश्क चमन-प्रेम संबंधी दोहे
05. भ्रमर गीत
06. निपट नादान बारहमासी
07. प्रेम-बगीची-17 पद
08. भारत संगीत-19 पद
09. विधवा मिलाप-50 दोहे
10. भू-भार-हरणार्थ-प्रार्थना-12 छप्पय
11. श्री गोपिका गीतम् (संस्कृत में)⁶⁶

निबन्ध :

श्री राधाचरण गोस्वामी जी की चुनी रचनाएँ –

01. मेरा संक्षिप्त जीवन—चरित्र
02. यमलोक की यात्रा
03. एक नये कोष की नकल
04. नापित स्तोत्र
05. रेलवे स्तोत्र
06. मिस्टर बूट
07. रेलवे दोकट
08. पंडित सभा
09. कवि—सभा
10. सुराज्य—कुराज्य
11. वैद्यराम स्तवराज
12. मूषक—स्तोत्र
13. प्रेस एक्ट का अचिन्तित फल
14. तुम्हें क्या
15. वेदों का अर्थ
16. भारतवासियों की महादुरवस्था
17. जार रूस के नाम चिट्ठी
18. नेटिव क्रिश्चियन
19. भारतवर्ष में धर्म—चर्चा
20. हमारा विश्वास करो
21. हम लोग अपने आप ही दुःख पाते हैं
22. आर्य समाज
23. बिहार का धार्मिक महत्त्व
24. हिन्दु बाल—विधवाओं का न्याय ईश्वर के हाथ है
25. विदेश—यात्रा—विचार

26. विधवा-विवाह-विवरण
27. उपसंहार
28. शिक्षा-प्रसार
29. हिन्दोस्थान
30. हिन्दी पत्र वा हिन्दी ग्रंथ
31. खड़ी बोली का पद्य
32. प्रतिवाद
33. खड़ी बोली और ब्रजभाषा कविता
34. खड़ी बोली की कविता
35. कवि-कल्पना
36. पतित पावन गौरांग
37. देशोपकारी पुस्तक
38. बूढ़े मुँह मुँहासे लोग देखें तमासे
39. होली
40. शिशिर सुषमा
41. भारत पावस
42. दामिनी दूतिका
43. सम्मेलन का स्वागत — भाषण⁶⁷

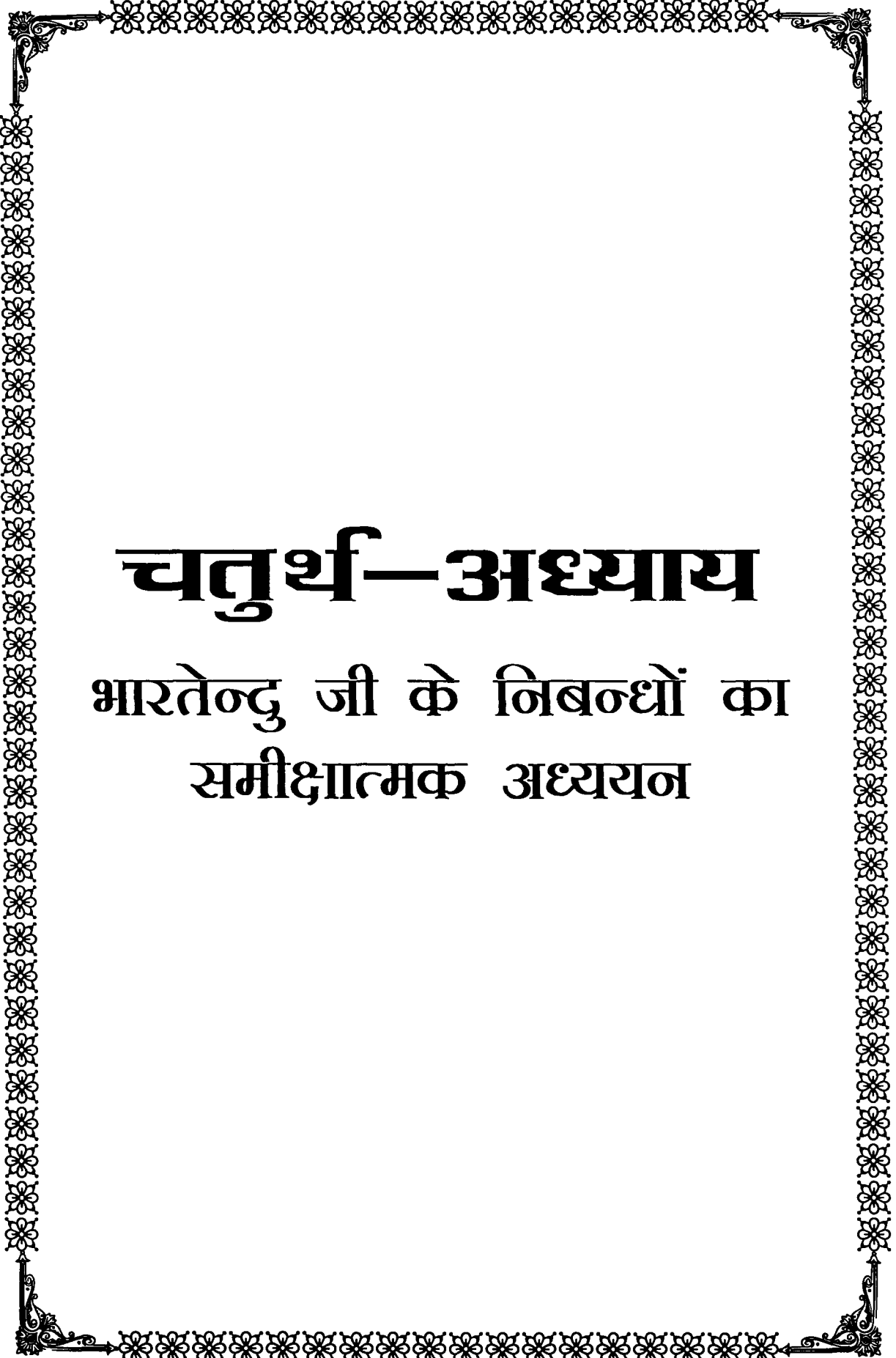
सन्दर्भ :

01. डॉ० अरविन्द कुमार देसाई : भारतेन्दु और नर्मद का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 17
02. वही,
03. डॉ० पद्मधर पाठक : श्रीधर पाठक ग्रन्थावली, पृ० 202-203
04. हेमन्त शर्मा : भारतेन्दु समग्र, पृ० 24
05. वही, पृ० 15
06. डॉ० अरविन्द कुमार देसाई : भारतेन्दु और नर्मद का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 17
07. केसरीनारायण शुक्ल : भारतेन्दु के निबन्ध, पृ० 6
08. हेमन्त शर्मा : भारतेन्दु समग्र, पृ० 3
09. वही, पृ० 19
10. वही, पृ० 20

11. वही, पृ० 25
12. वही, पृ० 29
13. वही, पृ० 30
14. वही, पृ० 30
15. डॉ० अरविन्द कुमार देसाई : भारतेन्दु और नर्मद का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 23
16. डॉ० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ० 70
17. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 318
18. डॉ० आरिफ नजीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० 121
19. देवीदत्त शुक्ल : भट्ट-निबंधावली (पहला भाग), पृ० 9
20. भगीरथ मिश्र : निबंधकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 40
21. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 378
22. भगीरथ मिश्र : निबंधकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 41-42
23. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 378
24. भगीरथ मिश्र : निबंधकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 51-52
25. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 379
26. भगीरथ मिश्र : निबंधकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 54
27. श्री लक्ष्मीशंकर व्यास : बालकृष्ण भट्ट के निबंधों का संग्रह, पृ० 13-16
28. देवीदत्त शुक्ल : भट्ट-निबंधावली (पहला भाग), पृ० 15-16
29. श्री धनंजय भट्ट 'सरल' : भट्ट निबंधावली (दूसरा भाग), पृ० 7-8
30. वही, (पहला भाग), पृ० 7-8
31. वही, पृ० 5-6
32. सत्यप्रकाश मिश्र : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० 56
33. डॉ० शान्ति प्रकाश वर्मा : द्वितीय भारतेन्दु : पं० प्रतापनारायण मिश्र, पृ० 26
34. डॉ० शान्ति प्रकाश वर्मा : प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन, पृ० 26
35. वही, पृ० 41
36. किशोरी लाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 383
37. विजयशंकर मल्ल : प्रतापनारायण ग्रंथावली, पृ० 1-7
38. डॉ० शान्ति प्रकाश वर्मा : प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन, पृ० 60-63
39. श्री दिनेश नारायण उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व (भाग-1), पृ० 15
40. डॉ० रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ० 61
41. किशोरी लाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 361
42. ब्रजरत्नदास बी०ए०एल०बी०, भारतेन्दु मण्डल, पृ० 79
43. श्री दिनेश नारायण उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व (भाग-1), पृ० 17
44. पं० रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी (भाग-2), पृ० 21
45. डॉ० रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ० 68
46. वही,
47. श्री दिनेश नारायण उपाध्याय : प्रेमघन सर्वस्व (भाग-1), पृ० 18
48. डॉ० रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमघन और उनका कृतित्व, पृ० 94

49. श्री दिनेश नारायण उपाध्याय : प्रेमधन सर्वस्व (भाग-1), पृ० 319-320
50. तृतीय हिन्दी सम्मेलन : कलकत्ता कार्य विवरण, भाग-1, वि० सं० 1970, पृ० 1
51. डॉ० रामचन्द्र पुरोहित : प्रेमधन और उनका कृतित्व, पृ० 83
52. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 256
53. वही,
54. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त : साहित्यक निबन्ध, पृ० 435
55. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय : प्रेमधन सर्वस्व (भाग-2), पृ० 5-6
56. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 258
57. डॉ० विनय मोहन शर्मा : हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, पृ० 280
58. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 130
59. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश (भाग-2), पृ० 495
60. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 48
61. रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री : सम्मेलन पत्रिका, पृ० 108
62. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 418
63. वही, पृ० 419
64. सम्मेलन पत्रिका, पृ० 109
65. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 419
66. वही, पृ० 420
67. कर्मन्दु शिशिर : राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, पृ० 5-6





चतुर्थ—अध्याय

भारतेन्दु जी के निबन्धों का
समीक्षात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय

भारतेन्दु जी के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी निबन्ध का जन्मदाता माना जाता है। प्रो० जयनाथ नलिन ने भारतेन्दु को उस युग का श्रेष्ठ निबन्धकार मानते हुए कहा है— “भारतेन्दु के नाटककार को तो समीक्षकों और इतिहासकारों ने पहचाना, निबन्धकार को वे भूल ही रहे, पर निबन्धकार को उनका नाटककार दबा न सका। भारतेन्दु अपने युग के श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। नाटक में कला की व्यापक चित्रशाला के पीछे भारतेन्दु छिप तक जाते हैं, निबन्ध में नहीं छिप सकते। निबन्ध में भी वह चमकीला और प्राणवान व्यक्तित्व लेकर आये।..... इस लिये भारतेन्दु का निज जितना स्पष्ट और साकार निबन्धों में मिलेगा अन्य रचनाओं में नहीं। निबन्ध ही भारतेन्दु के यथार्थ विचारों और विश्वासों का चित्र उपस्थित करते हैं। इनमें शैलियां भी सभी मिल जायगी।”¹

इसमें संदेह नहीं है कि भारतेन्दु के निबन्धों में उनका व्यक्तित्व दिखाई देता है। भारतेन्दु से पहले यद्यपि हिन्दी के कतिपय लेख लिखे जाते हैं परन्तु हिन्दी निबन्धों की परम्परा आरम्भ भारतेन्दु द्वारा ही माना जाता है। भारतेन्दु की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने ‘हरिश्चन्द्र मैग्जीन’ तथा ‘हरिश्चन्द्र चंद्रिका’ का प्रकाशन किया जिनके द्वारा हिन्दी में निबन्ध रचना का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की और कुल मिलाकर 175 छोटे बड़े ग्रन्थ लिखे। यही कारण है कि उन्हें युग प्रवर्तक कहा जाता है, भारतेन्दु ने भावुकता का प्रदर्शन करके न केवल उपन्यास, नाटक, निबन्ध और कहानी में वरन् छोटे-छोटे गद्य खण्डों में भी कवित्व डालकर नये ढंग के गद्य का समावेश किया।

डॉ० ओंकारनाथ शर्मा का इस विषय में विचार है— “आधुनिक हिन्दी निबन्ध की जो विशेषतायें हैं— ‘विषयमधि कृत्य वस्तु निबन्धनम्’ वैयक्तिक दृष्टि से विषय वस्तु प्रधान संक्षिप्त या सीमित रचना जिसमें वैयक्तिकता की छाप हो आदि, अधिकांश रूप में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की निबन्ध रचनाओं में ही सर्वप्रथम

दृष्टिगोचर होते हैं। पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, उपाध्याय, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' इत्यादि निबन्धकारों ने भारतेन्दु से ही प्रेरणा ली।²

आधुनिक हिन्दी भारतेन्दु के ही समय में पूर्ण रूप से सामने आती है। निबन्ध गद्य का महत्त्वपूर्ण अंग है और इसके कारण साहित्य में एक प्रकार की चैतन्यता प्रतीत होती है, वैसे विचार प्रवर्तक सजीव निबन्ध प्रथमतः भारतेन्दु जी ने ही प्रस्तुत किये हैं। भारतेन्दु की योग्यता के सन्दर्भ में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कहते हैं—“वास्तव में भारतेन्दु की अल्पायु को देखते हुये उनका महान साहित्यिक कार्य दैवी शक्ति से प्रेरित ही कहा जायेगा। वैसे तो उन्होंने पाँच छः वर्ष की अवस्था में ही एक दोहा बना डाला था, किन्तु लगभग 16 वर्ष की अवस्था से लेकर अंत समय तक वे हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाते रहे। राधाचरण गोस्वामी ने उन्हें अपने ‘नवभक्तमाल’ (1886) में उन्हें ‘चौसठ कला प्रवीन’ कहा भी है।”³

“जिस प्रकार जीर्णोद्धार से नव निर्माण का महत्त्व अधिक है उसी प्रकार परम्परा से चले आते हुये पद्य साहित्य में नवीन प्रगतिशीलता देने से उसके गद्य साहित्य का नव निर्माण विशेष महत्त्वपूर्ण है। भारतेन्दु जी की रचनाओं में धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक अनेक विषय लिये गये हैं, पर इसी कारण वे उन्हीं में सीमित हैं किन्तु निबन्ध या उनके ग्रन्थों में दिये हुये उपक्रम ऐसे बंधन रहित हैं। इनमें उनकी रुचि, विचार तथा व्यक्तित्व के प्रदर्शन का पूरा अवकाश रहा है और काव्य की अतिरंजना की कमी के साथ यथार्थता का पुट अधिक है।”⁴

उपर्युक्त टिप्पणी के आधार पर यह आसानी से कहा जा सकता है कि भाव प्रकाशन, विचारों के अभिव्यंजन तथा मनमौजीपन का पूर्ण प्रदर्शन भारतेन्दु के निबन्धों में पाया जा सकता है। ये निबन्ध तत्कालीन युग की सर्वतोमुखी उन्नति तथा जन जागृति के संवाहक थे। इन्हीं के द्वारा भारतेन्दु जी ने हिन्दी गद्य को पुष्ट किया था अतः ये भाषा शैली की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

भारतेन्दु ने देश के सभी अभावों तथा त्रुटियों को दृष्टि में रखकर बहुत से निबन्ध लिखे और वे इस कारण अनेक प्रकार के हो गये हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ही से इनके निबन्धों में विविधता तथा अनेकरूपता आ गई है और इनमें

यदि कहीं धर्म, समाज, राजनीति आदि की गंभीर आलोचना है तो कहीं व्यंग्यपूर्ण आक्षेप भी है। इन्होंने इतिहास, पुरातत्त्व तथा जीवन चरित्र आदि का पूर्ण अभाव देखकर इन पर लेख तथा पुस्तक लिखना आरम्भ किया। इन्होंने सुष्ठु देशवासियों को अतीत के गौरव तथा अर्वाचीन एवं वर्तमान की दुर्दशा दिखलाकर उनमें वह रुचि तथा उत्सुकता जगाने का प्रयास किया जिससे वे अपनी दशा सुधारने का उपाय सोचें तब भी भारतेन्दु जी ने इन रचनाओं में यथा संभव मनोरंज का समावेश करके इनमें शिक्षा तथा ऐतिहासिक भावना को भी प्रस्तुत किया। भारतेन्दु ने हिन्दी को बौद्धिक विचार विमर्श का वाहक ही नहीं बनाया इतिहास, पुरातत्त्व, जीवनी संस्मरण उपन्यास, नाटक, आलोचना, टिप्पणी, आलेख यात्रावृत्तान्त, विज्ञापन आदि लिखकर, लिखवाकर और अनुवाद करके तथा करवाकर आधुनिक विमर्शों के अनुकूल बनाया।

भारतेन्दु ने परम्परा और नवीनता का जो सम्बन्ध स्थापित किया और जिसे विवेक के साथ निभाया, वह उन्हें अनुभव से प्राप्त हुआ था। वे कालिदास के 'सन्तः परीक्ष्यनतरद भजन्ते मढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः' के सिद्धान्त का पालन करते थे। भारतेन्दु परतंत्रता और सेंसरशिप के उस युग में अपने समय के यथार्थ का जो उद्घाटन किया वह साहित्य और समाज दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में सत्यप्रकाश मिश्र ने कहा है— "व्यंग्य तो औपनिवेशिक विचारतंत्र और संस्कृति तंत्र के उद्घाटन का प्रमुख साधन है। भारतेन्दु ने एक ओर इसका प्रयोग ब्राह्मणों, पुरोहितों, पंडों, तांत्रिकों, ओझाओं आदि के धार्मिक पाखंड के उद्घाटन में किया और दूसरी ओर अंग्रेज और अंग्रेजों के विचारतंत्र और संस्कृति तंत्र का जो दूसरों को उनकी अपनी निगाह में छोटा मनवाने का साधन था, की वास्तविकता को उजागर करने के लिये किया। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'ज्ञाति विवेकिना सभा', 'संडभंडयो संवाद', 'प्रेमयोगिनी', 'नये जमाने की मुकरी', 'अंधेर नगरी', 'भारत दुर्दशा', 'वैष्णवत और भारतवर्ष', 'लेवी प्राण लेवी', दूसरे उदाहरण माने जा सकते हैं। 'स्वर्ण में विचार सभा' में लिबरल और कंजरवेटिव शब्दों के आधार पर जो मानकीकरण किया है वह गहरे बौद्धिक विमर्श का प्रमाण तो है ही वर्तमान से अतीत के आयत्तीकरण का भी प्रश्न है।"⁵

हिन्दी निबन्ध साहित्य में भारतेन्दु के महत्त्व के संदर्भ में केसरीनारायण शुक्ल का कहना है— “भारतेन्दु के निबन्धों का महत्त्व उनके काव्य या नाटकों से कम नहीं, प्रत्युत अधिक ही है। हरिश्चन्द्र की रुचि उनके विचार और उनके व्यक्तित्व के अध्ययन में ये निबन्ध विशेष रूप से सहायक होते हैं, क्योंकि इनमें काव्य की अतिरंजना कम है और यथार्थता का पुट अधिक है और लेखक को बंधन विहीन निबन्धों में भाव प्रकाशन, विचाराभिव्यक्ति और मन की तरंगों में बहने का पूरा-पूरा अवकाश मिला है। ये निबन्ध उस युग की सर्वतोमुखी उन्नति और जन जागृति के संवाहक थे। अतः इनका सांस्कृतिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। हिन्दी का गद्य भी इन्हीं निबन्धों के द्वारा परिमार्जित और पुष्ट हुआ और उसमें भाव वाहन की अद्भुत क्षमता आई। इस प्रकार इन निबन्धों का भाषा शैली के विकास की दृष्टि से भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है।”⁶

भारतेन्दु ने बहुत निबन्ध लिखे हैं और बहुत प्रकार के लिखे हैं। इन निबन्धों की विविधता और अनेकरूपता उनकी बहुमुखी प्रतिभा के अनुरूप ही है। इसी प्रकार उनके लिखने का प्रयोजन भी अनेक रूपात्मक है। कुछ उपादेयता को दृष्टि में रखकर लिखे गये हैं, कुछ ज्ञानवर्धन और शिक्षा के लिये और कुछ शुद्ध मनोरंजन के लिये। इनके अतिरिक्त कुछ धर्म, समाज और राजनीति की आलोचना तथा उन पर व्यंग्य इष्ट है। वस्तु विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक गवेषणात्मक, चारित्रिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, यात्रा संबंधी, प्रकृति संबंधी, व्यंग्य तथा हास्य प्रधान एवं आत्मकथा या आत्मचरित संबंधी निबन्धों की कोटियाँ स्थापित की जा सकती हैं। कथन के ढंग तथा निरूपण की दृष्टि से इन्हीं निबन्धों को हम तथ्या तथ्यनिरूपक, सूचनात्मक या शिक्षणात्मक, कल्याणात्मक और वर्णनात्मक कह सकते हैं।

भाषा और शैली की दृष्टि से ये निबन्ध भारतेन्दु की प्रांजल शैली, अलंकारिक शैली, प्रदर्शन शैली, प्रवाह शैली और वार्तालाप शैली से परिपूर्ण हैं।

‘काशमीर कुसुम’, ‘उदय पुरोदय’, ‘बादशाह दर्पण’, ‘महाराष्ट्र का इतिहास’, ‘बूंदी का राजवंश’, ‘कालचक्र’ आदि लेख ऐतिहासिक निबन्धों की श्रेणी में आते हैं जो कि इतिहास-समुच्चय के नाम से खड़गविलास प्रेस से प्रकाशित हुये हैं।

इसके अतिरिक्त 'पुरावृत्त संग्रह' में भी प्रशस्ति प्राचीन शिलालेख आदि का विवेचन हुआ है। इसी में 'अकबर और औरंगजेब' नामक लेख भी हैं। इन ऐतिहासिक निबन्धों के विषय में केसरीनारायण शुक्ल ने अपनी पुस्तक में कहा है— "वास्तव में ये इतिहास ग्रंथ न होकर इतिहास के ढाँचे हैं जिनमें उसकी स्थूल रूपरेखा मात्र दी गई है। अधिकांश में केवल वंश परम्परा राज्यारोहण तथा देहावसान का समय चक्र दिया है। कुछ में राजाओं का वृत्तांत भी है, जिसका आधार परम्परा और जनश्रुति है और जिनका उल्लेख बिना किसी शोध या छानबीन के कर दिया गया है। लेखक में असाधारण तथा आश्चर्यजनक वृत्तान्तों के उल्लेख की रुचि विशेष रूप से लक्षित होती है।"⁷

ये ऐतिहासिक निबन्ध विस्तृत न होते हुये भी इतिहास लेखन का श्रेष्ठ उदाहरण कहे जा सकते हैं। ये निबन्ध देशवासियों को अपनी प्राचीन गौरव गाथा को याद करके उनकी सुरक्षा का पाठ प्रस्तुत करते हैं। भारतेन्दु के समकालीन प्रचलित प्रवृत्ति के अनुसार ऐतिहासिक लेखों में केवल जन्मतिथि, युद्ध, मृत्यु, राजतिलक, जयपराजय आदि का ही उल्लेख मात्र ही अधिकतर दिखाई देता है। ऐसा उस युग की ऐतिहासिक भावना का दुर्बलता के चलते प्रतीत होता है। हिन्दुत्व की दृष्टि से ओत प्रोत भारतेन्दु भारत में आये मुसलमान एवं अंग्रेज शासकों को अपने व्यंग्य का विषय बनाना नहीं भूले—

“बागबाँ आया गुलिस्ताँ में कि सैयाद आया।

जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया।।”

भारतेन्दु के जीवन चरित्र सम्बन्धी निबन्धों में भी एक प्रकार से ऐतिहासिक भावना के दर्शन होते हैं। 'चरितावली' और 'पंच पवित्रात्मा' में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन चरित्र संगृहीत हैं। ये लेख चरित्र प्रधान न होकर घटना प्रधान हैं, इन जीवन वृत्तों में सुनी हुई बातों एवं घटनाओं का वर्णन अधिक है, हृदय की वृत्तियों के दिग्दर्शन के प्रयासों की अपेक्षा। इस संदर्भ में केसरीनारायण शुक्ल के विचार हैं—“लेखक का मन भी उन कथाओं और घटनाओं के वर्णन में अधिक रमा है। जिनमें कोई असाधारणता थी। भारतेन्दु अपने चरित्र नायकों का वर्णन करते हुये कहीं तो नैतिकता का पाठ पढ़ाया है, कहीं अलौकिक चमत्कार से चकित हुये

हैं और कहीं वे स्वयं भावुक होकर संसार की क्षण-भंगुरता की दार्शनिक भाव धारा में बह गये हैं।”⁸

भारत के जीवन चरित निबन्धों में उन्हें इतिहास पुरुष तो माना गया किन्तु समकालीन युग की परिस्थितियों का कितना बड़ा हाथ रहा है, इसका समुचित उल्लेख नहीं मिलता है। जीवन चरित संबंधी निबन्धों में रोचकता और साहित्यिकता है तथा भावों की विदग्धता और मार्मिकता है। भारतेन्दु की विविध शैलियों के दर्शन इन निबन्धों में भली भाँति होते हैं।

भारतेन्दु को विभिन्न धर्मों का समुचित ज्ञान था। ‘ईशु खृष्ट और ईशु कृष्ण’ ‘हिन्दी कुरान शरीफ’ इसी ज्ञान के आधार पर लिखे गये। आर्य समाज तथा थियासोफिष्ट आंदोलन और उनके प्रवर्तकों के सम्पर्क में भी भारतेन्दु रह चुके थे। इस कारण वे तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों से वे पूर्णतया अवगत थे और उनमें उनकी पूरी रुचि थी। अपने धर्म के प्रति अचल विश्वास रखते हुये भी वे अन्य धर्मों के प्रति सम्मान रखते थे इस सन्दर्भ में केसरीनारायण शुक्ल का कहना है— “उनमें भाव स्वातन्त्र्य और धार्मिक उदारता दोनों थीं। इसके साथ ही वे अपने सम्प्रदाय की उपासना पद्धति, रीति-नियम और परम्परा का पूरा पूरा पालन आस्था से करते थे। इसी प्रकार समाज सुधार के वे पूर्ण समर्थक थे। ‘वैष्णवता और भारतवर्ष’ इन सब बातों का बड़ा सुन्दर निदर्शन है।”⁹

भारतेन्दु ने प्रगतिशीलता और उसके स्वरूप के अध्ययन के लिये ‘वैष्णवता और भारतवर्ष’ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्हें अपने समय की पूर्ण परख थी और वे प्रगति के पथ पर कितना आगे बढ़े हुये थे इसकी झलक उनके उपर्युक्त निबन्ध के इस अंश से हो सकती है— “विदेशी शिक्षाओं से मनोवृत्ति बदल गई.....। जब पेट भर खाने को न मिलेगा तो धर्म कहाँ बाकी रहेगा, इससे जीव मात्र के सहज धर्म उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिये।..... अब महाघोर काल उपस्थित है। चारो ओर आग लगी हुई है। दरिद्रता के मारे देश जला जाता है.... कदाचित् ब्राह्मण और गोसाई लोग कहें कि हमको तो मुफ्त का मिलता है, हमको क्या ? इस पर हम कहते हैं कि विशेष उन्हीं का रोना है। जो कराल काल चला आता है उसको आँख खोलकर देखो।”¹⁰

भारतेन्दु के साहित्यिक कोटि में वर्गीकृत करने वाले निबन्ध भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं, इनमें वस्तु विषय, वर्णन तथा भाषा शैली की विविधता और अनेक रूपता मिलती है। 'संगीतसार', 'बलिया का व्याख्यान' (भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है), 'उत्सवावली' आदि लेखों को उपादेय निबन्ध कहा जा सकता है। ये ज्ञान वर्धन और शिक्षात्मक हैं। 'संगीत सार' में भारतीय संगीत का पूर्ण निरूपण हुआ है। उत्सवावली में कृष्ण सम्प्रदाय के उत्सवों की गिनती बताई गई है। बलिया व्याख्यान में देश की उन्नति के विषय में भाषण है। भारतेन्दु की विदग्धता, मार्मिकता, सजीवता और क्षमता के दर्शन इन निबन्धों में देखे जा सकते हैं। इनके यात्रा सम्बन्धी लेख व्यंग्य तथा हास्य प्रधान लेख साहित्यिक निबन्धों की श्रेणी में आते हैं। भारतेन्दु ने अपनी कुछ यात्राओं का सविस्तार वर्णन लिखा है। उनकी उदयपुर यात्रा, सरयूपार की यात्रा, जनकपुर की यात्रा तथा वैद्यनाथ की यात्रा के लेख प्रसिद्ध हैं। लखनऊ और हरिद्वार की यात्रा का वृत्तान्त उन्होंने 'यात्री' के नाम से 'कविवचन सुधा' में छपवाया था।

भारतेन्दु के यात्रा सम्बन्धी निबन्धों के विषय में केसरी नारायण शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'भारतेन्दु के निबन्ध' में लिखा है— "इन यात्रा सम्बन्धी लेखों में भारतेन्दु का स्वच्छन्द और अकृत्रिम स्वरूप खूब देखने को मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेन्दु सब प्रतिबन्धों को हटाकर घूमने निकले हैं, और इसी प्रकार उनकी प्रतिभा और वाणी भी स्वच्छन्द विचरण कर रही है.....। हृदय की प्रेरणा के अनुसार ही वे कभी उल्लास से भर जाते हैं कभी आश्चर्य चकित होते हैं कभी अतीत की स्मृति में डूब जाते हैं।..... इन यात्रा संबंधी लेखों में भाव और भाषा दोनों के विविधात्मक और स्वच्छन्द रूप देखने को मिलता है।"¹¹

भारतेन्दु ने यात्रा सम्बन्धी निबन्धों को वर्णनात्मक रूप में लिखा है। 'हरिद्वार' शीर्षक लेख की एक झलक प्रस्तुत है।

"इसमें दो तीन वस्तु देखने योग्य हैं एक तो (कारीगरी) शल्यविद्या का बड़ा कारखाना जिसमें जलचक्की, पवन चक्की और कई बड़े-बड़े चक्र अनर्बत खचक्र में सूर्य चन्द्र पृथ्वी मंगल आदि ग्रहों की भाँति फिरा करते हैं और बड़ी-बड़ी धरन ऐसी सहज में चिर जाती हैं, कि देखकर आश्चर्य होता है—यहाँ सबसे आश्चर्य श्री

गंगा जी की नहर है। पुल के ऊपर से तो नहर बहती है और नीचे से नदी बहती है। एक आश्चर्य का स्थान है।”¹²

भारतेन्दु ने कुछ निबन्ध हास्य और व्यंग्य की दृष्टि से भी लिखे हैं। यों तो व्यंग्य और हास्य की छटा उनकी अधिकांश गद्य रचनाओं में यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं। इन हास्य प्रधान लेखों का उद्देश्य शुद्ध हास्य का सर्जन, आलोचना, आक्षेप, व्यंग्य, परिहास सभी कुछ है। यद्यपि शुद्ध हास्य अपेक्षाकृत कम हैं। फिर भी उनका व्यंग्य बड़ा मार्मिक और कटु होता है। उन्होंने व्यक्ति, समाज, राजनीति सभी व्यंग्य के विषय बनाये हैं। इस प्रकार के लेखों में ‘स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन’, ‘लेवी प्राण लेवी’, ‘पाँचवें पैगम्बर’, ‘कंकड़ स्तोत्र’, ‘अंगरेज-स्तोत्र’ आदि मुख्य हैं। सड़क के किनारे पड़े कंकड़ों की महिमा में भारतेन्दु कहते हैं—“कंकड़ देव को प्रणाम है देव नहीं महादेव क्योंकि काशी के कंकड़ शिवशंकर समान हैं। हे लीला कारिन, आप केशी, शंकट, वृषभ, खरादि के नाशक हौ इससे मानो पूर्वाद्ध की कथा हौ अतएव व्यासों की जीविका हो आप वाण-प्रस्थ हौ क्योंकि जंगलों में लुड़कते हौ, ब्रह्मचारी हो क्योंकि वह हौ गृहस्थ हौ चूना रूप में, संयासी हो क्योंकि घुटमघुट हौ आप अंग्रेजी राज्य में भी.... गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छन्द रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पर पड़ कर रुधिर धारा से नियम और शक्ति का अस्तित्व बहा देते हो।”¹³

भारतेन्दु के आत्मरचित सम्बन्धी लेख उनकी अपूर्ण आत्मकथा हैं। यदि उनकी आत्मकथा ‘एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती’ पूरी हो जाती तो हिन्दी साहित्य को आत्मकथा का सुन्दर निदर्शन प्राप्त हो जाता। भारतेन्दु इसका ‘प्रथम खेल’ ही लिख सके थे। जिसमें उन्होंने अपने चारों ओर के वातावरण का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है और अपनी पैनी दृष्टि और परख का परिचय दिया है। मानव प्रकृति को पहचानने में वह कितने पटु थे और उसकी अभिव्यक्ति में कितने कुशल थे इसका उत्कृष्टतम रूप उनकी आत्मकथा है, ‘रसकाई’ में मस्त भारतेन्दु अपने चारों ओर के वातावरण का (छोटे छोटे शब्द और शब्द समूह के द्वारा) समा बांध रहे हैं और अपना हृदय खोलकर सामने रख रहे हैं। निम्न शब्दों में उनका ‘कन्फेशन’ देखा जा सकता है—“सं० 1930 में जब मैं तेईस वर्ष का था,

एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसन्त ऋतु हवा ठंडी चलती थी। सांझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य, पर दोनों लाल लाल अजब समा बंधा हुआ। कसेरुगडेरी और फूल बेचने वाले सड़क पर पुकार रहे थे। मैं भी जवानी के उमंगों में चूर, जमाने के ऊंचनीय से बेखबर, अपनी रसकाई के नसे में मस्त, दुनिया के मुफ्त खोरे सिफारशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भलीभाँति पहचानता था।”¹⁴

भारतेन्दु के निबन्धों के भेद स्वरूप और उनके भावपक्ष का विवेचन करने के बाद उनकी भाषा शैली को भलीभाँति समझ सकते हैं। निरूपण के ढंग के अनुसार इनके निबन्धों की तथ्या तथ्यनिरूपक, शिक्षात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक और कल्पनात्मक श्रेणियां बनाई जा सकती हैं। निरूपण के ढंग का निबन्धों की भाषा शैली पर प्रभाव देखा जा सकता है जैसे तथ्या तथ्यनिरूपक, शिक्षात्मक तथा उपादेय लेखों की भाषा शैली में लेखक का ध्यान वस्तु विषय में स्पष्टीकरण और प्रतिपादन की ओर अधिक है और वाणी वक्रता या वाणी के विलास की ओर कम है। भारतेन्दु के ऐतिहासिक ‘संगीत सार’, गणेषणात्मक भाषा संस्कृत या तत्सम पदावली से समन्वित तो अवश्य है, किन्तु उसमें अतिरंजना या अलंकरण नहीं है। इन लेखों को हम भारतेन्दु की प्रांजल या प्रसादपूर्ण शैली का उदाहरण कह सकते हैं, इनमें अलंकरण या अतिरंजना या भाषा की मार्मिकता उन्हीं कतिपय स्थलों पर देखने को मिलती है जहाँ लेखक किसी प्रबल भाव से आक्रान्त होकर भावुक बन जाता है।

भारतेन्दु के वर्णनात्मक लेखों में भी दो प्रकार का पद विन्यास देखने को मिलता है। कहीं पर तो संस्कृत की तत्सम पदावली अधिक प्रयुक्त हुई है, और कहीं पर उर्दू का शब्द समूह अपने चलते और अलंकृत दोनों रूपों में प्रयुक्त हुआ है। भारतेन्दु की वार्तालाप शैली उनकी आत्मकथा में देखने को मिलती है। बिल्कुल बोलचाल की भाषा और अत्यन्त विश्वसनीय वातावरण शब्द समूह सभी प्रकार के किन्तु चलते हुये मुहावरों की छटा इसकी विशेषता है। कहीं मुहावरों का बन्धन है और कहीं शब्द क्रीड़ा या चमत्कार की प्रवृत्ति है। इन वर्णनात्मक लेखों में भी दो प्रकार का पद विन्यास देखने को मिलता है। कहीं पर तो संस्कृत की

तत्सम पदावली अधिक प्रयुक्त हुई है और कहीं पर उर्दू का शब्द समूह अपने चलते और अलंकृत दोनों रूपों में प्रयुक्त हुआ है। 'हरिद्वार' के निम्नलिखित वर्णन की आलंकारिक शैली का पद विन्यास संस्कृत समन्वित है जैसे—“यह भूमि तीन ओर सुन्दर हरे भरे पर्वतों से घिरी है जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की बल्ली हरी भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भाँति फैलकर लहलहा रही है और बड़े-बड़े वृक्ष भी ऐसे खड़े हैं मानों एक पैर से खड़े तपस्या करते हैं..... अहा ! इनके जन्म भी धन्य हैं जिनसे अर्थी विमुख जाते ही नहीं।”¹⁵

भारतेन्दु ने देश की उन्नति के लिये सर्वप्रथम निज भाषा की उन्नति की कामना की है। प्रयाग में हिन्दी भाषा पर दिये व्याख्यान का उदाहरण उनकी राष्ट्रीयता और बौद्धिकता और भाषा के प्रति गहरे लगाव का समुचित प्रमाण है। इस सन्दर्भ में सत्यप्रकाश मिश्र ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध में कहा है—“भाषा में सोचने और भाषा के अनुसार सोचने को आधार मानकर हरिश्चन्द्र ने निजभाषा को ही उन्नति का मूल माना और इसे हर प्रकार से सम्पन्न बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। ज्ञान-विज्ञान के अभाव के कारण ही गुलामी है और निजभाषा की समृद्धि से हम निचले स्तर तक ज्ञान-विज्ञान और विद्या का प्रसार कर सकते हैं। ज्ञान के बिना भौतिक मुक्ति भी संभव नहीं यह हरिश्चन्द्र जानते थे। दूसरी भाषायें सत्ता और शासन को ही नहीं गुलाम बनाने की भाषायें हैं यह भी उन्हें पता था। इसीलिए अटपटे वाक्यों और शब्दों के बावजूद उन्होंने कहा कि संसार की समस्त विद्या, कला और ज्ञान का समस्त देशों से अपनी भाषा में लेकर अनुवाद करके उसका प्रचार करना चाहिए। यह कार्य हरिश्चन्द्र ने 'कविचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'बाला बोधिनी' के द्वारा तो किया ही संस्कृत और बंगला भाषाओं की पुस्तकों के अनुवाद के द्वारा भी किया।”¹⁶

भारतेन्दु की साहित्य साधना के विषय में गुप्त निबन्धावली का यह अंश महत्वपूर्ण है यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु ने हिन्दी को बौद्धिक विचार-विमर्श का वाहक ही नहीं बनाया इतिहास, पुरातत्त्व, जीवनी, संस्मरण उपन्यास, नाटक, आलोचना, टिप्पणी, आलेख, यात्रावृत्तान्त, विज्ञापन आदि

लिखकर, लिखवाकर और अनुवाद करके तथा करवाकर आधुनिक विमर्शों के अनुकूल बनाया। बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है कि – “हरिश्चन्द्र के समय में हिन्दी के भाग्य ने पलटा खाया। उन्होंने हिन्दी को उत्तम बनाने की चेष्टा की। कई एक अच्छी अच्छी पोथियाँ लिखकर उन्होंने सुन्दर हिन्दी का नमूना खड़ा किया। और लगातार कई एक पुस्तकें लिखकर उसकी पुष्टि की यद्यपि स्वर्गीय राजा लक्ष्मण सिंह महोदय ने सन् 1863 ई० में शाकुन्तला का हिन्दी अनुवाद करके फिर एक अच्छी हिन्दी का नमूना उपस्थित किया था। पर उसका उस समय अधिक प्रभाव नहीं हुआ। कहा जा सकता है कि हिन्दी नहीं थी, बाबू हरिश्चन्द्र ने उसे पैदा किया।”¹⁷

भारतेन्दु के निबन्धों में पाई जाने वाली विविध शैलियों के विषय में इतना कहा जा सकता है कि उनका किसी लेख में आद्योपांत निर्वाह नहीं हुआ है, एक ही निबन्ध में कई प्रकार के पद विन्यास देखने को मिल जाते हैं। एक जगह संस्कृत पदावली है तो दूसरी जगह उर्दू की छटा और तीसरी जगह मुहावरों के छीटें। उमंगों की तरंगों में बहते हुए भारतेन्दु ने अपने मनोकूल भाषा को संवारा और सजाया है। भारतेन्दु के निबन्धों के आधार पर यह भलीभाँति कहा जा सकता है कि वे शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती भले ही रहे हों, किन्तु वे क्लिष्ट हिन्दी जटिल हिन्दी, अस्पष्ट हिन्दी, निर्जीव हिन्दी और भाराक्रान्त हिन्दी के समर्थक कभी नहीं थे। वे कवि थे और गद्य के कलाकार थे। वे शब्दों की आत्मा को पहचानते थे।

भारतेन्दु के निबन्धों को ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व स्पष्ट है। निबन्धों के द्वारा ही परम्परा का प्रवर्तन हुआ, निबन्धों द्वारा ही जन जागृति फैली और निबन्धों के द्वारा ही व्यंजकता बढ़ी। इसका अधिकतर श्रेय भारतेन्दु को ही जाता है। इनके पुरातत्त्व, साहित्यिक, जीवनी चरित, सांस्कृतिक एवं विविध निबन्ध निम्न प्रकार के हैं।

पुरातत्त्व निबन्ध :

भारतेन्दु के निबन्ध संग्रह में पुरातत्त्व संबंधी बहुत से निबन्ध संगृहीत हैं। इनमें से रामायण का समय, अकबर और औरंगजेब, मणिकर्ण एवं काशी अधिक प्रसिद्ध है। “रामायण का समय” सांस्कृतिक महत्ता का लेख है। इसमें लेखक ने

तत्कालीन प्रचलित जीवन को बहुत सजीव ढंग से चित्रित किया है। इस निबन्ध में भारतेन्दु ने जिज्ञासा से परिपूर्ण कई स्थानों पर उनकी अनुसन्धात्मक दृष्टि से समीक्षा भी की है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु ने अन्य पुरातत्त्व सम्बन्धी निबन्धों की रचना की है— 'कन्नौज के राजा का दानपत्र, क्वींस कॉलेज की फाटकों के लेख, इंडियन म्यूजियम अशोक चारदिवारी तथा बोध गया के लेख, राजा जन्मजय का दानपत्र, मंगलीश्वर का दान पत्र, शिवपुरी का द्रौपदी कुंड, पंपापुर का दान पत्र, कन्नौज का दानपत्र, नाममंगला का दानपत्र, चित्रकूटस्थ रमाकुंड गोविन्द देव जी की प्रशस्ति, सारनाथ आदि के लेख, प्राचीन काल का संवत् निर्णय आदि।

'रामायण के समय' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं —“रामजी के बन जाने की राह, इस तरह बयान की गई है। अयोध्या से चलकर तमसा अर्थात् टोंस नदी के पार उतरे। फिर वेद, श्रुति, गोमती स्यान्दिका और गंगा पार होते हुये प्रयाग आये। और वहाँ से चित्रकूट (जो कि रामायण के अनुसार 10 कोस है) गये। यह बिल्कुल सफर उन्होंने पाँच दिन में किया। और सुमन्त उनको पहुँचा कर श्रंगदेर पुर अर्थात् सिंगरामऊ से दो दिन में अयोध्या पहुँचा। पहली बात से प्रकट हुआ कि पुराने जमाने के कोस बड़े होते थे। और दूसरी बात से विदित हुआ कि सड़क उस समय में भी बनाई जाती थीं, नहीं तो इतनी दूर की यात्रा का पाँच दिन में तै करना कठिन था।”¹⁸

भारतेन्दु के इन निबन्धों में यह भलीभाँति प्रतीत होती है कि वे विषय की गहराई में तल्लीनता के साथ जाते हैं। ऐसे ही एक अन्य स्थान पर उपर्युक्त निबन्ध में विषय की तल्लीनता का अनुभव सहज ही किया जा सकता है। “9वें सर्ग के 25 और 26 श्लोकों में वर्णन है कि लंका में जो गलीचे विछे थे उनमें घर, नदी, जंगल इत्यादि बने हुये थे। अब यदि विलायत का कोई गलीचा आता है, जिस में मकान उद्यान इत्यादि बने रहते हैं तो देखकर हम लोग कैसा आश्चर्य करते हैं। कैसे सोच की बात है कि हम लोग नहीं जानते कि हमारे हिन्दोस्तान में भी इस प्रकार की चीज़ें पहले बनती थीं। यहीं पर जब हनुमान जी ने रावण के मन्दिरों को जा कर देखा है तो उसमें भोजन के अनेक प्रकार के धातुओं के मणियों के और काँच के पात्रों को भी देखा है। चिमचा काँटा आदि भी उस समय

होता था। और बड़ी शोभा से खाना बना जाता था। और भी अंग्रेजी चाल के पात्र और गहने भुवनेश्वर के मन्दिर में भी बहुत प्राचीन काल के बने हैं।¹⁹

भारतेन्दु के एक अन्य पुरातत्त्व निबन्ध 'अकबर और औरंगजेब मे भी उनकी गवेषणात्मक शैली के दर्शन होते हैं। अच्छाई और बुराई को विषय बनाकर पुरातत्त्व सन्दर्भ मे उन्होंने इस निबन्ध की रचना की इसकी कुछ पक्तियाँ इस प्रकार है — "जो समुद्र से मेरु तक पृथ्वी को पालता है, जो मृत्यु से गडओं की रक्षा करता है, जिसमें तीर्थ और व्यापार के कर छुड़ा दिये, जिसने पुराण सुने, जो सूर्य का नाम जपता, जो योग धारण करता है और गंगाजल छोड़कर और पानी नहीं पीता उस जलालुद्दीन की जय। अंग वग कलिंग तिपुरा कामना कामरूप अंध कर्णाटक लाट द्रविड महाराष्ट्र द्वारका चोल पाडय भोट मारवाड उडीसा मलय खुरासान कंदहार जम्बू काशी ढाका बलख बदखशों और काबुल का जो शासन करता है।"²⁰

उपर्युक्त निबन्ध मे उन्होंने अकबर की महिमा का गुणगान किया है इसके विपरीत एक अन्य मुगल शासक औरंगजेब जो क्रूर प्रवृत्ति का था उसके विषय मे उसकी बुराई को इस लेख में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है— "हिन्दुओं पर जो आपने कर लगाना चहा है वह न्याय और परम विरुद्ध है। राज्य के प्रबंध को नाश करने वाला है और बल को शिथिल करने वाला है तथा हिन्दुस्तान की नीति रीति के अति विरुद्ध है। यदि आपको अपने मत का ऐसा अग्रह हो कि आप इस बात से बाज न आवें, तो पहले राम सिंह से, जो हिन्दुओं में मुख्य हैं, यह कर लीजिये और फिर अपने इस शुभ चिन्तक को बुलाइये, किन्तु यों प्रजापीडन वा रण भंग वीर धर्म और उदार चित्त के विरुद्ध है। बडे आश्चर्य की बात है कि आप के मंत्रियों ने आप को ऐसे हानिकार विषय में कोई उत्तम मन्त्र नहीं दिया।"²¹

सांस्कृतिक निबन्ध :

गद्य साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु ने सांस्कृतिक निबन्ध भी अनेक लिखे हैं। इनमें 'तदीय सर्वस्व', वैष्णवता और भारतवर्ष, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, ईशु खृष्ट और ईश कृष्ण आदि। इन सांस्कृतिक लेखों से तत्कालीन धार्मिक तथा राजनीतिक विचारधाराओं का भी आभास मिलता है और साथ ही भारतेन्दु की

निजी मनोदृष्टि के बारे में भी पता चलता है 'तदीय सर्वस्व' में भारतेन्दु की धार्मिक भावना की दृढ़ता का आभास होता है। इसकी भूमिका में उन्होंने धार्मिक मान्यताओं के कम होने पर दुख प्रकट किया है और इस क्षेत्र में उदारता बरतने का सुझाव दिया है।

इसी प्रकार 'वैष्णवता और भारतवर्ष' में उन्होंने धार्मिक स्तर में सुधार की बात स्पष्ट रूप से कही है। वे एक क्रान्तिकारी की भावना से ओत-प्रोत होते हुये तत्कालीन दुरावस्था, ब्रिटिश शासन, दरिद्रता, मानसिक संकीर्णता आदि की जिन शब्दों में कटु भर्त्सना करते हैं उससे उनकी निर्भीकता, उदारता और क्रान्तिकारिता का पूर्ण आभास होता है। उनके समस्त लेखों में यह निबन्ध अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं एक अन्य निबन्ध के विषय में केसरी नारायण शुक्ल ने अपनी पुस्तक में लिखा है—“भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है भारतेन्दु का व्याख्यान है जो उन्होंने बलिया में ददरी के मेले के समय आर्यदेशोपकारिणी सभा में दिया था। हरिश्चन्द्र देशहित के ध्यान में कितने रत थे इसका स्पष्ट संकेत इस भाषा से मिलता है। यह भाषण भी तत्कालीन दशा का अच्छा चित्र प्रस्तुत करता है।”²²

भारतेन्दु ने भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन 'ईशु खृष्ट और ईश कृष्ण' में बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। और पाश्चात्य संस्कृति पर भारतीय विचार धारा का जो प्रभाव पड़ा है उसे दिखाने का भरसक सफल प्रयास किया है। इससे पाठकों को भारतेन्दु के विस्तृत अध्ययन के बारे में पता चलता है। इसकी कुछ पंक्ति देखिये— “अब अपेल्लो को लीजिये। यह हिन्दुओं के श्रीकृष्ण का चित्र है। इसका सूर्य में निवास है। इस नाम के चार देवता थे और यहाँ भी श्री कृष्ण के चार व्यूह हैं। उसने पाइथन नामक सूर्य को मारा और यहाँ भी कालिमा का दमन हुआ। वहाँ वह शिल्प, औषध, गान, काव्य और रस का देवता है और यहाँ भी। उसका ध्यान सुन्दर युवा, लम्बे केश और हाथ में कभी धनुष कभी बंशी लिये है और यहाँ भी। वह पर्वत पर नव मित्रों के साथ विहार करता था यहाँ गिरिराज पर नव गोपियों के साथ विहार है।”²³

भारतेन्दु द्वारा बलिया में ददरी के मेले के समय देशोपकारिणी सभा में दिया गया भाषण 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' एक सांस्कृतिक निबन्ध है।

इसमें देशहित की चिन्ता की झलक मिलती है— “मर्दम शुमारी का रिपोर्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन दिन यहाँ बढ़ते जाते हैं और रुपया दिन दिन कमती होता जाता है। सो अब बिना ऐसा उपाय किये काम नहीं चलैगा कि रुपया भी बढ़े, और रुपया बिना बुद्धि बढ़े न बढ़ेगा। भाइयो, राजा महाराजाओं का मुँह मत देखो, मत यह आशा रखो कि पंडित जी कथा में ऐसा भी उपाय बतलायेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो आलस छोड़ो कब तक अपने जंगली इस मूर्ख बोदे डरपोकने पुकरवाआंगे। दौड़ो इस घुड़दौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है।”²⁴

साहित्यिक निबन्ध :

भारतेन्दु के साहित्यिक निबन्ध की श्रेणी में वे निबन्ध संकलित हैं। जिन्हें शुद्ध साहित्यिक कहा जा सकता है। भारतेन्दु को पर्यटन का बहुत चाव था। इन यात्रा संबंधी लेखों से जहाँ एक ओर उनकी सैलानी प्रकृति का परिचय मिलता है वहाँ उनके सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति का भी पता चलता है। भारतेन्दु की अनुभव वृद्धि में यात्रायें बड़ी सहायक रही हैं। इस सन्दर्भ में केसरीनारायण ने अपनी पुस्तक में कहा है— “भारतेन्दु के समान इन लेखों की भाषा भी स्वच्छन्द विचरण के लिये निकली है। उसका चलतापन और अभिव्यंजन—शक्ति दृष्टव्य है, इसके साथ ही प्रकृति का जो चित्रण हुआ है उससे इस बात का भी आभास मिलता है कि वे मुक्त प्रकृति के भी प्रेमी थे।”²⁵

भारतेन्दु के साहित्यिक निबन्धों में ‘सरयूपार की यात्रा’ ‘मेहदावल की यात्रा’, ‘लखनऊ की यात्रा’, ‘हरिद्वार की यात्रा’, ‘वैद्यनाथ की यात्रा’, ग्रीष्म ऋतु, हिन्दी भाषा, दिल्ली दरबार दर्पण आदि प्रमुख हैं। ‘ग्रीष्म ऋतु’ लेख में प्रकृति वर्णन के साथ भारतेन्दु को व्यापक सहानुभूति के दर्शन भी होते हैं। आधुनिक युग में इसको मानवतावाद के नाम से जाना जाता है। ग्रीष्म ऋतु निबन्ध का एक अंश दृष्टव्य है—“शान्ति केवल जल में होती है, स्त्रियों का यद्यपि सहज ही वस्त्राभूषण से प्रीति है परन्तु इस ऋतु में वे भी उन्हें उतार उतार कर फेंक देती है और वन की भालिनी की भाँति फूल पत्तों से ही अपने को सज बज कर प्रीतम की बड़ी प्यारी भुजा को भी धर्म के भय बारंबार कठ पर धरती और उतारती रहती है। काशी से

प्रस्तरमय नगर का तो कुछ पूछना ही अपनी शीतल किरणों से प्रातः काल की वायु से भी सहायता लेकर नहीं ठंडा कर सकता, यदि किसी छोटी खिड़की के पास मुँह ले जाओ तो अजगरों की श्वास और लोहारों की धौकनी के सामने बैठने का आनन्द मिलता है।²⁶

भारतेन्दु के 'हिन्दी भाषा' निबन्ध में समकालीन भाषा विवाद के बारे में पता चलता है। इस लेख में भारतेन्दु ने भाषा की समस्या पर जो अपना मतव्य प्रकट किया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही तत्कालीन प्रचलित शैलियों के जो रूप उन्होंने प्रस्तुत किये हैं उनसे उनकी भाषा पर अधिकार प्रकट हो जाता है। इस निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—“पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा ब्रजभाषा है यह निर्णीत हो चुकी है और प्राचीन काल में लोग इसी भाषा में कविता करते आते हैं परन्तु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व नहीं था क्योंकि मुहम्मद मलिक जायसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास जी ने भी ब्रजभाषा का नियम भंग कर दिया।”²⁷

ऐतिहासिक निबन्ध :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अन्य विषयों के साथ इतिहास में बड़ी रुचि थी। इस देश के शृंखलाबद्ध इतिहास के अभाव का बड़ा शोच था। वे इतिहास की सामग्री के संचयन में बड़े उत्सुक रहते थे। इन इतिहास ग्रंथों के समान ही उनकी भूमिका भी बड़े महत्त्व की है। इनसे भारतेन्दु की इतिहास सम्बन्धी भावना के बारे में ज्ञात होता है। भारतेन्दु ने इतिहास को राजनीतिक घटनाओं के इतिवृत्त और राजवंशों की परम्परा के अनुक्रम के रूप में ग्रहण किया है। समय के साथ वे किसी राजपुरुष के व्यक्तित्व और कार्य कलाप का सम्बन्ध तो नहीं प्रस्तुत कर पाये हैं फिर उनकी इतिहास दृष्टि सराहनीय है।

काशमीर कुसुम, बादशाह दर्पण, उदयपुरोदय आदि उनके प्रमुख ऐतिहासिक निबन्ध हैं। काशमीर कुसुम में कश्मीर का संक्षिप्त इतिहास संकलित है उनके 'बादशाह दर्पण' के सन्दर्भ में एक स्थान पर केसरी नारायण शुक्ल ने लिखा है — “बादशाह दर्पण की भूमिका जहाँ यह प्रकट करती है कि उनकी इतिहास सम्बन्धी भावना क्या थी वहाँ उनकी मुस्लिम शासन और ब्रिटिश शासन सम्बन्धी आलोचना

को भी स्पष्ट करती है। संभव है कि पाठकों को मुस्लिम शासन के प्रति किये उदगार उग्र प्रतीत हों और अंग्रेजी शासन सम्बन्धी कुछ नरम। किन्तु उन्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि मुस्लिम शासन समाप्त हो गया था और ब्रिटिश शासन अपने पूरे जोर पर था।²⁸

इसी प्रकार 'उदयपुरोदय' निबन्ध भारतेन्दु की इतिहास लेखन की शैली का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें ऐतिहासिक अन्वेषण, परम्परा पालन और लोक कथाओं का समिश्रण है। इस निबन्ध का कुछ अंश प्रस्तुत है— "यहाँ आकर इन्होंने किसी पवार वंश के राजा का अधिकार जीतकर सन् 144 में बीर नगर नामक नगर संस्थापन किया। और जहाँ अब सिहोर है तहाँ विदर्भ नगर बनाया और बल्लभीपुर नामक एक बड़ा नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया।... अब उदयपुर के राज्य के एक टूटे शिवालय में एक प्राचीन खोदा हुआ पत्थर मिला है।"²⁹

जीवन चरित निबन्ध :

भारतेन्दु युग जागरण का सचेष्ट युग था इस युग में लगभग सभी लेखकों ने जीवन चरित लिखे हैं किन्तु जीवन चरित्रों की ओर अभिरुचि के साथ सुन्दर प्रस्तुति भारतेन्दु ने अपने निबन्धों में की है। इस संग्रह में सूरदास, जयदेव, मुहम्मद, फातिमा, लार्डमेयो, राजाराम शास्त्री, एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती आदि प्रमुख निबन्ध हैं। इस संग्रह में उन सब महान् व्यक्तियों का जीवन परिचय है जिन्होंने धर्म साहित्य, राजनीति आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को अपनी प्रतिभा से आलोकित किया है। लेखक उनके जीवन से कहीं पर प्रफुल्ल हुआ है कहीं मुग्ध हुआ और कहीं चमत्कृत होता दिखाई देता है। भारतेन्दु के व्यक्तित्व पर पड़े इन्हीं भावों का प्रतिबिम्ब इन संक्षिप्त जीवनीयों में है। भावों के समान इनका परिधान भी अनेक रूपात्मक है। इन छोटे-छोटे निबन्धों में शैली की जो अनेकरूपता मिलती है वह भारतेन्दु की भाषा सम्बन्धी जानकारी के विषय में अच्छा परिचय देती है।

जीवन चरित निबन्ध एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती के सन्दर्भ में केसरीनारायण शुक्ल द्वारा सम्पादित पुस्तक भारतेन्दु के निबन्ध की भूमिका में

कहा है— “अंतिम निबन्ध ‘एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती’ कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह भारतेन्दु का आत्मचरित है, खेद है कि यह आत्मचरित पूरा न हो सका, नहीं तो हिन्दी में चलती भाषा की शैली में आत्मचरित लिखने की परम्परा की नींव पड़ जाती। इस निबन्ध की शैली कितनी वक्रतापूर्ण प्रांजल, भावानुसारी और अत्यन्त चलती हुई है।”³⁰

इसी निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं— “हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या किसी का रोना हो पड़े चलिये जी वहलाने से काम है। अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा ही पवित्र दिन है।.... इन सबों में से एक मनुष्य को आप लोग पहचान रखिये इससे बहुत काम पड़ेगा। यह नाटा खोटा, अच्छे हाथ पैर वाला सांवले रंग का आदमी है।”³¹

विविध निबन्ध :

भारतेन्दु एक विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उनकी पैनी दृष्टि और दूर दर्शिता तथा जिज्ञासा का आभास इस शीर्षक के अन्तर्गत आये हुये निबन्धों से भलीभाँति हो जाता है। भारतेन्दु का आचार्य रूप यदि देखना हो तो ‘सम्पादक के नाम पत्र’ का अध्ययन करना आवश्यक होगा। इस पत्र में वह भक्ति आनन्द आदि को स्वतंत्र रस के रूप में ग्रहण कर उसकी स्वतंत्र स्थापना में प्रवृत्त हुये हैं। उनके आचार्यत्व की स्पष्ट झलक इस लेख में मिलती है। विविध निबन्ध की श्रेणी में निम्नलिखित लेख, सम्पादक के नाम पत्र मदालसा उपाख्यान, संगीत सार, खुशी, जातीय संगीत आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु के कथाकार एवं गल्पकार होने का बीजरूप देखने के लिये ‘मदालसा उपाख्यान’ लेख एक समुचित रचना है। ये मार्कण्ड पुराण के आधार पर लिखा गया है। ये एक प्रकार से भावों का अनुवाद कहा जा सकता है। विषयगत और शैलीगत भेद के होते हुये भी भारतेन्दु के कहानीकार होने का आभास मिलता है। एक अन्य रचना ‘संगीत सार’ के द्वारा संगीतशास्त्र का परिचय दिया गया है। इस प्रकार के ज्ञानात्मक और शिक्षाप्रद लेखों का भारतेन्दु युग में बड़ा प्रचार था।

संस्कार सुधार या नेतृत्व के साथ साथ जनता का ज्ञान वर्धन भी भारतेन्दु युग के लेखकों का प्रधान लक्ष्य था।

नागरी लिपि में किन्तु उर्दू भाषा में भारतेन्दु ने 'खुशी' के नाम यह लेख लिखा। भारतेन्दु ने उर्दू में कविता और गद्य दोनों की रचना की है। यह विचारात्मक लेख उनके उर्दू निबन्ध-लेखन का अच्छा उदाहरण है। भारतेन्दु के उदार व्यक्तित्व का परिचायक है उनका अन्य लेख, जातीय संगीत, इस लेख के सन्दर्भ में केसरीनारायण शुक्ल द्वारा सम्पादित पुस्तक में लिखा है— "इसमें भारतेन्दु का ध्यान केवल शिक्षित समुदाय तक सीमित न रह कर सामान्य जनता तक समाप्त है, प्रचार और सुधार के लिए उन्होंने ग्रामगीतों की महत्ता और प्रभावात्मकता को स्वीकार किया है। ग्राम्य भाषा में ग्रामगीतों की रचना के लिये उन्होंने दूसरों को उत्साहित किया और स्वयं भी लिखने की इच्छा प्रकट की, उत्साहित किया और स्वयं भी लिखने की इच्छा प्रकट की, ग्रामगीतों के लिये उन्होंने जिन विषयों का प्रस्ताव किया है— बालविवाह, शिक्षा प्रसार, जन्मपत्री का मिलान, स्वदेश निर्मित वस्तुओं का प्रयोग आदि—उससे उनकी लोक व्यापी दृष्टि और कुशल नेतृत्व का पता चलता है। इस प्रकार भारतेन्दु ने सबसे पहले ग्रामगीतों का महत्त्व समझा और समझाया।"³²

भारतेन्दु के विविध निबन्धों के शीर्षक के अन्तर्गत 'संगीत सार' लेख का एक अंश द्रष्टव्य है— "गीत निबद्ध और अनिबद्ध दो प्रकार के होते हैं, अक्षरों के नियम और गमक के नियम बिना अनिबद्ध और ताल मान गमक अक्षर रसादि के नियम सहित निबद्ध । शुद्ध, शालग और संकीर्ण के भेद से यह गीत तीन प्रकार के हैं परन्तु यह भेद प्रबन्ध होके होते हैं। शुद्ध के एलादिक बीस भेद हैं। यथा एला, सोध्यभया, पाटकरण, यंत्र, तालेश्वर, कैरात, स्मर, चक्रपाल, विजया, गद्य, त्रभंगी टैंको, वर्णपुर, सर्गपुट, द्विपदिका, मुक्तावली, मातका, लंव, दंडक और वर्तनी इन गीतों के छः अंग हैं यथापद, तान, विरुद्ध, ताल, पाट और स्वर। ध्रुपक, मंडक, प्रतिमंडक, निःसारक, वासक, प्रतिलाभ, एकतालिका आदि और झूमरी ये शालग के भेद हैं।"³³ इस लेख से भारतेन्दु के अध्ययन और ज्ञान का पता चलता है।

निष्कर्ष :

भारतेन्दु के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन करने के बाद यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये हिन्दी साहित्य के प्रमुख उन्नायक हैं। उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में हिन्दी को वह रूप दिया जिसके कारण हिन्दी नयी चाल में ढली। भारतेन्दु के निबन्धों में एक संचित और सधी हुई भाषा दिखाई देती है। उनके निबन्ध अधिकतर सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं, जिनमें व्यंग्य विनोद की प्रधानता दिखाई देती है। हिन्दी भाषा के विकास में भारतेन्दु के विविध निबन्धों का बहुमूल्य योगदान सम्मिलित है। उनके निबन्धों में हास्य व्यंग्य के अतिरिक्त सामाजिक उन्नति की उत्कृष्ट इच्छा और मौलिक विचार सम्पन्नता भी थी जो कि निबन्ध कला के विशेष गुण हैं।

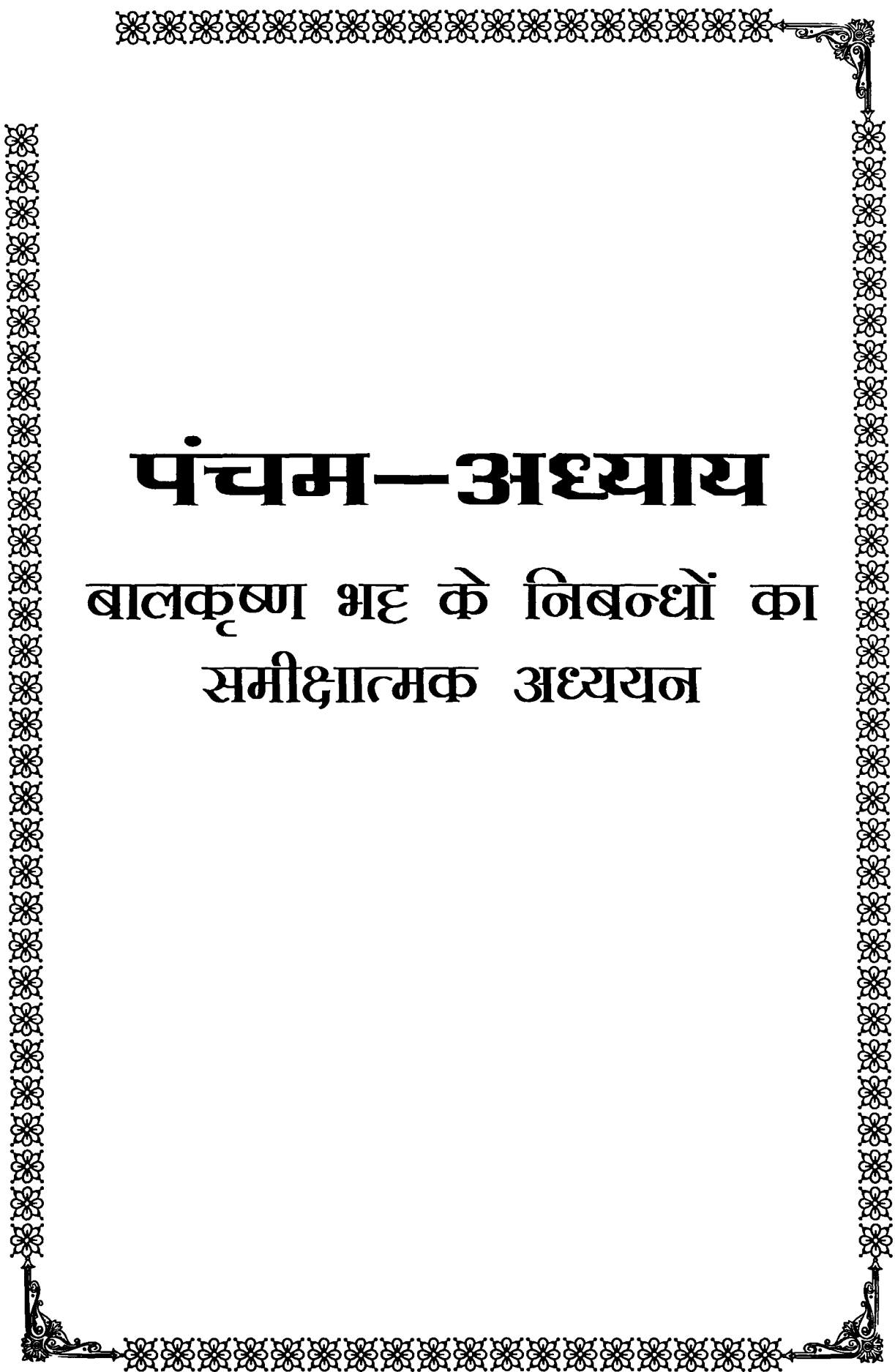
हिन्दी साहित्य में निबन्धों का आरम्भ भारतेन्दु युग में ही पूर्ण रूप से हमारे सामने आता है। निबन्ध कला के सारे मापदंड हमें भारतेन्दु रचित निबन्धों में दिखाई देते हैं। भारतेन्दु ने परम्परा और नवीनता का एक समन्वय स्थापित करके उपादेयता की दृष्टि से परिपूर्ण ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद और शुद्ध मनोरंजक निबन्धों की रचना की। इसके अतिरिक्त कुछ धर्म, समाज और राजनीति की आलोचना आदि से सम्बन्धित निबन्ध उन्होंने लिखे। वस्तु विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक, गवेषणात्मक, चारित्रिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, यात्रा-संबंधी, प्रकृति संबंधी, व्यंग्यात्मक तथा आत्मकथात्मक आदि कोटि के निबन्ध भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य को दिये हैं भारतेन्दु ने साहित्य की अनेक विधाओं के साथ निबन्ध विधा के विकास में पूर्ण योगदान दिया। पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से उस काल के अनुसार हिन्दी के विकास में भारतेन्दु के निबन्धों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विविध विषयों पर भारतेन्दु ने असाधारण विद्वतापूर्ण लेखन के द्वारा हिन्दी के विकास के मार्ग को आसान कर दिया।

सन्दर्भ :

01. प्रो० जयनाथ नलिन : हिन्दी निबन्धकार, पृ० 46
02. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 65

- 03 डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० 32
- 04 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध (भूमिका), पृ० 7
- 05 सत्यप्रकाश मिश्र भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध (भूमिका), पृ० 18
- 06 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध (भूमिका) प्रकाशन 1952, पृ० 22
- 07 वही, भारतेन्दु के निबन्ध, पृ० 23
- 08 वही, पृ० 24
- 09 वही, पृ० 25
- 10 सत्यप्रकाश मिश्र भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० 106
- 11 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध पृ० 26-27
- 12 भारतेन्दु 'हरिद्वार' कविवचन सुधा, 30 अप्रैल 1871, खण्ड-3 नवम्बर 1, पृ० 10
- 13 ब्रजरत्न दास भारतेन्दु ग्रथावली (भाग-3), पृ० 851
- 14 वही, पृ० 813
- 15 वही, पृ० 943
- 16 सत्यप्रकाश मिश्र भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध (भूमिका), पृ० 8
- 17 श्री झाबरमल्ल शर्मा गुप्त-निबन्धावली (प्रथम भाग) पृ० 314
- 18 ब्रजरत्न दास भारतेन्दु ग्रथावली (भाग-3), पृ० 381
- 19 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध, पृ० 9
- 20 ब्रजरत्न दास भारतेन्दु ग्रथावली (भाग-3), पृ० 119-120
- 21 वही, पृ० 124
- 22 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध पृ० 25
- 23 ब्रजरत्न दास भारतेन्दु ग्रथावली (भाग-3), पृ० 785
- 24 वही, पृ० 898
- 25 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध, पृ० 52
- 26 भारतेन्दु ग्रीष्म ऋतु (निबन्ध) हरिश्चन्द्र मैग्जीन 15 मई, 1874
- 27 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध, पृ० 62
- 28 वही, पृ० 163
- 29 ब्रजरत्न दास भारतेन्दु ग्रथावली (भाग-3), पृ० 215
- 30 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध, पृ० 123
- 31 निबन्ध एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती, कविवचन सुधा भाग-8, सख्या 22 स० 1933 में प्रकाशित (अपूर्ण)
- 32 केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबन्ध, पृ० 201
- 33 ब्रजरत्न दास भारतेन्दु ग्रथावली (भाग-3), पृ० 905-906



A decorative border with a repeating floral pattern surrounds the text. The top-left corner features a small floral motif, and the bottom-left corner has a larger, more ornate floral design.

पंचम—अध्याय

बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों का
समीक्षात्मक अध्ययन

पंचम अध्याय

बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन

पंडित बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के श्रेष्ठ निबन्धकार माने जाते हैं। भारतेन्दु के समकालीन उन गिने चुने साहित्यकारों में थे, जिन्होंने हिन्दी की सेवा में अपना सब कुछ समर्पित कर दिया था। भट्ट जी संस्कृत साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, कर्मकाण्ड आदि सभी विषयों के पूर्ण पंडित थे। उन्होंने साहित्यिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि अनेक विषयों पर सुन्दर निबन्ध लिखे।

बालकृष्ण भट्ट के विषय में भट्ट जी के पौत्र धनंजन भट्ट 'सरल' ने भट्ट-निबन्धावली की भूमिका में लिखा है— "भट्ट जी हिन्दी में बचपन से ही लिखने लगे थे। स्कूल में हिन्दी में वादविवाद और निबन्ध रचना में सदैव भाग लेते थे और प्रथम रहते थे। कदाचित् 1872 ई० के लगभग 'कलिराज की सभा' शीर्षक इनका पहला लेख भारतेन्दु जी की 'कविवचन सुधा' में छपा था। इसके उपरान्त 'रेल का विकट खेल', 'स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी' इत्यादि उनके कई लेख 'कविवचन सुधा' में निकले। उन सभी लेखों की प्रशंसा हुई। इसके बाद उनके लेख 'काशी पत्रिका' विहारबन्धु आदि में भी निकलने लगे।..... भारतेन्दु जी प्रायः कहा करते थे 'हमारे बाद हिन्दी में भट्ट जी की ही लेखनी चमकेगी' और इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतेन्दु जी के बाद हिन्दी के सुलेखकों में भट्ट जी का पद सर्वोच्च था।"¹

'हिन्दी प्रदीप' पत्र सितम्बर सन् 1877 ई० से निकलना प्रारम्भ हुआ और भट्ट जी उसके सम्पादक बने। भट्ट जी के लेख 'हिन्दी प्रदीप' में ही छपते थे। संस्कृत के प्राचीन कवियों और ग्रन्थकारों के जीवन चरित्र, श्रीमद्भागवत, वाराही संहिता गीता और सप्तशती की अलोचनाओं तथा षड्दर्शन संग्रह का भाषानुवाद आदि लिखकर उन्होंने हिन्दी की सेवा की। हिन्दी प्रदीप अपने समय का एक श्रेष्ठ उपयोगी मासिक पत्र था। जिसमें नाटक, उपन्यास, प्रहसन, लेख आदि की भरमार

रहती भी। भट्ट जी के निबन्धों में विचार धारा तरल और मिश्रित होती है उसका प्रवाह कभी साधारण उपदेशात्मकता की ओर उन्मुख रहता है कभी वैयक्तिक आत्माभिव्यंजना की ओर ।

भट्ट जी हिन्दी निबन्ध साहित्य में वैयक्तिक कोटि के निबन्धों के प्रवर्तक माने जाते हैं। आँख, नाक, कान, बातचीत जैसे साधारण और चलते विषयों पर उन्होंने सुन्दर निबन्ध प्रस्तुत किये हैं। आँसू, चन्द्रोदय, मुग्धमाधुरी आदि इनके प्रमुख भावात्मक निबन्ध हैं। 'हिन्दी प्रदीप' एक ऐसा पत्र था जो भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक एक ही सम्पादक के कुशल देखरेख में चलता रहा। इस पत्र में अधिकांश लेख भट्ट जी के लिखे होते थे। इनके सहयोगियों में पं० राधाचरण गोस्वामी, पं० श्रीधर पाठक, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, राधामोहन, बाबू सूर्यकुमार, मधुमंगल मिश्र, हरिमंगल मिश्र, द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, बाबू जगमोहन वर्मा, गणपति जानकी राज दुबे, पं० अनन्तराम, कविवर माधव शुक्ल आदि प्रमुख थे। भट्ट जी के लेखों के विषय में उनके पौत्र धनंजय भट्ट 'सरल' ने एक स्थान पर भट्ट जी के लेखों के सन्दर्भ में कहा है—“भट्ट जी के 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित लेखों की समालोचना भी अकसर अन्य पत्र-पत्रिकाओं में होती रहती थी। 'श्री वैकटेश्वर समाचार', 'हिन्दी बंगवासी', 'समालोचक' इत्यादि पत्रों में कभी-कभी इनके विषय में कटूक्तियाँ लिखी गयी। भट्ट जी ने भी उनका समुचित उत्तर दिया और उनकी खूब गहरी खरी चुटकियाँ लीं।”²

भट्ट जी ने अपने पत्र की भाषा के लिये उस काल के ग्रामीण और शहरी वर्गों के बीच की भाषा को अपनाया। उनके निबन्धों की भाषा यथार्थतः सार्वजनिक भाषा दिखाई देती है। यद्यपि भट्ट जी संस्कृत प्रधान शैली के प्रवर्तक माने जाते हैं किन्तु उनके निबन्धों में किसी भी प्रकार के शब्दों के लिये संकोच नहीं दिखाई देता है। इस सन्दर्भ में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक में लिखा है—“सामयिक प्रवृत्ति ही कुछ ऐसी थी, जिससे उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेजी शब्दों का प्रचलन उस समय निषिद्ध नहीं माना जाता था। भट्ट जी ने इस आवृत्ति को अपने निबन्धों में अस्वीकृत नहीं किया।”³

भट्ट जी का भाषा पर असाधारण अधिकार था। उनके लेखों की भाषा विषय के अनुसार होती थी। यदि वे हास्य या ठिठोली लिखते थे, तो भाषा वैसी ही हास्यमयी, रसीली और ठिठोल रहती थी। यदि किसी पर कटाक्ष करते थे, तो भाषा भी व्यंग्यपूर्ण थी। शृंगार रस लिखते थे, तो भाषा भी मोहक और सौन्दर्य से पूर्ण रहती थी। यदि विषय गम्भीर होता तो भाषा भी उत्कृष्ट और गम्भीर रहती थी। उनके लेखों की विशेषता यह रहती थी कि वो मनोरंजक होते थे। भारतेन्दु के बाद हिन्दी क्षेत्र में भट्ट जी के युग को याद किया जाता है। उस समय उनके सम्पर्क में बड़े साहित्यकार थे जिनमें पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० शिवनाथ मिश्र, पं० श्रीधर पाठक, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० मदन मोहन मालवीय, बाबू गंगा प्रसाद आदि प्रमुख थे।

बालकृष्ण भट्ट के निबन्ध एक विशिष्टता से परिपूर्ण पाठकों के मन को आकर्षित करने वाले होते थे। पाठकों की जिज्ञासा को बनाये रखने में भट्ट जी सफल हुये हैं। उनके एक निबन्ध 'दौड़-धूप' की कुछ पंक्ति जिससे कि निबन्ध का आरम्भ होता है, प्रस्तुत हैं—'दौड़-धूप का दर्जा कहाँ तक बढ़ा हुआ है। इसका अंत पाना सहज नहीं है। सच पूछो तो संसार में हमारा जीवन सब का सब या कुछ हिस्सा इसका केवल दौड़-धूप है और अब इस अंग्रेजी राज्य में तो इस दौड़-धूप का अन्त है।'⁴

मानवीय जीवन की सत्यता इस निबन्ध में दिखाई देती है जो कि भट्ट जी की कुशल लेखनी से बच नहीं पायी और उन्होंने निबन्ध में इस सत्यता को, जीवन की दौड़-धूप को बड़ी सजीवता से प्रस्तुत किया है। जीवन की सांसारिक गति भी यही है। इसी दौड़-धूप में संसार लिप्त है।

भारतेन्दु युग से द्विवेदी युग तक आने में हिन्दी निबन्ध का जो विकास हुआ है, उसका स्पष्टीकरण 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका से उचित रूप में मिल सकता है। इस संदर्भ में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा ने हिन्दी निबन्ध का विकास में कहा है—'हिन्दी प्रदीप' में..... तीन शैलियाँ काम में लाई गयी हैं, और वे तीनों प्रायः साथ साथ मिलती हैं। यों उनमें कोई नियम काम करता हुआ विदित नहीं होता। फिर भी वे साधारण टिप्पणियाँ लिखते हैं तो ग्राम्यत्व की ओर झुकाव रखते हुए

साधारण हिन्दी-संस्कृत, फारसी-उर्दू के शब्दों का प्रयोग करते चलते हैं। जब ये कोई विद्वता की बात कहते होते हैं तो उर्दू फारसी के शब्दों का पुट बढ़ जाता है। विशेष नियम यह मिलता है कि जब ये मौज में आकर निबन्ध लिखते हैं तो शब्द की रंगीनी पर अधिक दृष्टि रहती है और सभी ओर से विविध रंग के शब्दों मुहावरों, कहावतों और उद्धरणों को लेकर सजाते हैं। जब विचारात्मक निबन्ध लिखते हैं तो संस्कृत और अंग्रेजी का पल्ला पकड़ लेते हैं।⁵

“भारतेन्दु युग में तो राजनीतिक, सामाजिक तथा अन्यान्य विषयों पर बहुत से निबन्ध लिखे गये। सभी लेखकों ने कुछ न कुछ लिखा। साहित्यिक निबन्धों की रचना अन्य विषयों की अपेक्षा बहुत कम हुई। साहित्यिक निबन्धों की सर्वाधिक रचनायें बालकृष्ण भट्ट की ही हैं। भट्ट जी के साहित्यिक निबन्धों में ‘मंत्र कलाप’, ‘बधूस्तवा’ आदि प्रमुख हैं एवं भट्ट जी शास्त्रीय निबन्धों में ‘शब्द का आकर्षक शक्ति’ ‘रसाभाव’, ‘हिन्दी की वर्तमान दशा’ गुण आगरी नागरी आदि प्रमुख हैं। भट्ट जी ने अनेक बार ‘हिन्दी प्रदीप’ में भाषा सम्बन्धी संपादकीय विचार भी लिखे हैं। पश्चिमोत्तर और औध में हिन्दी की हीन दशा में भी उन्होंने इस बात का वर्णन किया है कि अधिकतर मुस्लिम भी हिन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं।”⁶

बालकृष्ण भट्ट ने अपने समकालीन सामाजिक समस्याओं और कुरीतियों को भी अपने निबन्धों का विषय बनाया है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने देश का वातावरण दूषित कर रखा था और देश पतन की ओर उन्मुख हो रहा था। इससे देश की आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक दशा प्रभावित हो रही थी। बाल विवाह निबन्ध इसका उदाहरण है इसके प्रारम्भ में ही वे कहते हैं – “सकल दोष की खानि वीर्य हरन दारिद करन। आलस की जड़ जानि त्यागहु बाल्य विवाह को।”⁷

सामाजिक कुरीतियों के सन्दर्भ में डॉ० मधुकर भट्ट का कथन है— “हिन्दी प्रदीप के सम्पादक डॉ० बालकृष्ण भट्ट अपने पत्र में बराबर सामाजिक कुरीतियों को अपनी लेखनी से आड़े हाथों लिया करते थे। नवम्बर 1904 में ‘प्रदीप’ में आप लिखते हैं कौन सी ऐसी स्वर्ग सदृश भूमि है कौन ऐसी सभ्यतिसभ्य जाति है, जहाँ परम्परा पिशाची की प्रतिष्ठा और गौरव नहीं है। बड़े-बड़े नामी, देश हितैषी,

संशोधक और रिफार्मर सिर धुना किये, इसके पीछे पड़ पर गये, खप गये पर उस परम्परा के हटाने में कुछ असर न पहुँचा सके।”⁸

भट्ट निबन्धमाला में दूसरे भाग के सम्पादक धनंजय भट्ट ‘सरल’ ने भूमिका में भट्ट जी के विषय में कहा है — “ भट्ट जी की तुलना एडीसन, स्टील, चार्ल्स लैंब जैसे अंगरेजी के सर्वश्रेष्ठ लेखकों के साथ की जाती है। हिन्दी में भाषात्मक, विचारात्मक, उभयात्मक, वर्णनात्मक आदि सभी प्रकार के निबन्धों का प्रणयन भट्ट जी ने किया है।”⁹

भट्ट जी द्वारा रचित निबन्धों में उस युग का चित्र स्वतः ही दृष्टिगत होता है। तभी तो सत्यप्रकाश मिश्र ने भट्ट जी के बारे में यह कहा है— “ भट्ट जी के इन निबन्धों से उस युग की धड़कन का ही पता नहीं चलता बल्कि आगे के युगों की पदचाप भी स्पष्ट सुनाई पड़ती है।”¹⁰

हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास में ‘हिन्दी प्रदीप’ एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ‘हिन्दी प्रदीप’ के अतिरिक्त वे कविवचन सुधा, नागरी नीरद, सार सुधानिधि, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हरिश्चन्द्र कौमुदी, सुदर्शन समाचार आदि में भी लेख लिखा करते थे। भट्ट जी के विषय में पं० मधुमंगल मिश्र लिखते हैं— “ भट्ट जी ने हिन्दी को भलीभाँति अपनाया। ‘हिन्दी प्रदीप’ में स्वतंत्र लेखक के ही स्वरूप में नहीं वरन् व्याख्यान दे के, नागरी-प्रवर्द्धिनी सभा की स्थापना में सहायक हो के नये लेखकों को उत्साहित करके साहित्य सम्मेलन प्रयाग वाले अधिवेशन में स्वागत कारिणी सभा के अध्यक्ष हो के कचहरियों में हिन्दी की पहुँच की घोषणा से प्रसन्न हो के और अन्याय प्रकारों से हिन्दी की उन्नति में जीवन बिताया।”¹¹

पं० बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों में एक वैचारिकता पायी जाती है, जो कि उनके स्वभाव में ही थी। यही कारण है कि उन्होंने सामाजिक विषयों पर जो मर्मस्पर्शी लेख लिखे हैं, उनके गम्भीर चिन्तन के परिचायक हैं। इसी संदर्भ में पुरुषोत्तम दास टंडन ने एक स्थान पर लिखा है—“भट्ट जी के चरित्र की एक और विशेषता थी कि वह स्वतंत्र विचारक थे। किसी की बात पर विश्वास नहीं करते थे। पहले स्वयं किसी बात पर खूब विचार करते थे और जब निष्कर्ष पर पहुँच

जाते तब अपना मत बनाते और उसी पर बराबर अटल रहते। भट्ट जी स्वतंत्र विचार के व्यक्ति थे।¹²

भारत और यूरोप के साहित्यों की तुलना पहले पहल उन्होंने ही अपने लेख में की है। वेदों की कणाद और कपिल के शास्त्रों तथा कालिदास और भवभूति के काव्यों की तुलना करते हुये उन्होंने जो कुछ लिखा है वह उनकी विद्वता, विचार स्वाधीनता शब्द कृपया शैली का बड़ा अच्छा उदाहरण है।¹³

विषय के अनुसार भट्ट जी के निबन्धों को पाँच भागों में विभाजित करना चाहिये।¹⁴

1. विचारात्मक जैसे—‘चारुचरित्र’, ‘साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है, ‘चरित्र—पालन’, ‘प्रतिभा’, ‘आत्मनिर्भरता’ आदि।
2. आलोचनात्मक निबन्ध भट्ट जी के कम हैं, आलोचनात्मक के अन्तर्गत संपादकीय टिप्पणियाँ ही अधिक मिलेगी। लाला श्रीनिवासदास के ‘संयोगिता स्वयंवर’ की सच्ची आलोचना की।
3. भावात्मक निबन्धों की रचना तथा संख्या की दृष्टि से भट्ट जी की सेवा अमूल्य है। भावात्मक निबन्धों के अन्तर्गत ‘आँसू’, ‘मुग्धमाधुरी’, ‘प्रेम के बाग का सैलानी’, ‘हमारे मन की मधु प्रवृत्ति’, ‘कल्पना’, ‘माधुर्य’, ‘चलन’, ‘आशा’, ‘माता का स्नेह’ आदि।
4. वर्णनात्मक निबन्धों में ‘चन्द्रोदय’ आदि आते हैं। इनके वर्णनात्मक निबन्ध संख्या में बहुत कम हैं।
5. विवरणात्मक निबन्धों में स्वप्न कथा, आत्मकथा तथा जीवनी आती हैं। ‘शंकराचार्य’, ‘नानक’, आदि निबन्ध जीवनी के अन्तर्गत आते हैं।..... इनके पच्चीस निबन्धों का संग्रह ‘साहित्य सुमन’ चुने हुये बत्तीस भावात्मक निबन्धों का संग्रह ‘भट्ट निबन्धावली’ (प्रथम भाग) में प्रकाशित हुये हैं।

इनके निबन्धों के शीर्षक उर्दू भाषा के भी मिलते हैं जैसे— ‘हाकिम और उनकी हिकमत’ ‘नाज़ नखरा ज़ाहिर करने का मौका नहीं’ आदि। उन्होंने

अधिकांशतः निबन्ध 'हिन्दी प्रदीप' में किसी न किसी विशेष घटना को लक्ष्य करके ही लिखे हैं। इस युग के प्रायः सभी निबन्धों में सामयिक छाप विद्यमान है।

साहित्यिक रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में यह बात सर्वविदित है कि भट्ट जी निबन्धकार पहले थे बाद में कुछ और। 'हिन्दी प्रदीप' के 33 वर्षों के कार्य काल में सैकड़ों की संख्या में निबन्ध रचना हुई।

भट्ट जी के निबन्धों के 3 संग्रह प्रमुख हैं :

1. "साहित्य सुमन" ले० बालकृष्ण भट्ट प्रकाशक लक्ष्मीकान्त भट्ट, 94 काटन स्ट्रीट कलकत्ता।
2. 'भट्ट निबन्धावली' भाग-1, भाग-2, सम्पादक धनंजय भट्ट 'सरल', प्रकाशक-हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
3. 'भट्ट निबन्धमाला' भाग-1, 2 सम्पादक धनंजय भट्ट 'सरल', प्रकाशक नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

'साहित्य सुमन' भट्ट जी के निबन्धों का प्रथम संग्रह है जिसे उनके पुत्र पं. लक्ष्मीकान्त भट्ट ने निकाला था। इसमें भट्ट जी के 25 अच्छे निबन्ध प्रकाशित हैं जो कि अधिकतर साहित्यिक एवं शास्त्रीय हैं। 'संसार महा नाट्य शाला' चन्द्रोदय, 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है', 'पुरातन तथा आधुनिक सभ्यता', 'जवानी की उमंगें पौगण्ड या कैशोर', 'शब्द की आकर्षण शक्ति', 'माता का स्नेह', 'मुग्धमाधुरी', 'चरित्र पालन', 'चारुचरित्र', 'आत्म निर्भरता', 'भालपट्ट', 'कल्पना शक्ति', 'प्रतिभा माधुर्य', 'आशा', 'आँसू', 'लक्ष्मी', 'श्री शंकराचार्य और गुरुनानक देव आदि 'साहित्य सुमन' में संगृहीत प्रमुख निबन्ध हैं।

'भट्ट-निबन्धावली' भट्ट जी का दूसरा संग्रह है जो सं० 1998 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के सुलभ साहित्य माला द्वारा प्रकाशित किया गया, जिसका सम्पादन इनके पौत्र धनंजय भट्ट 'सरल' ने किया है। यह निबन्धावली दो भागों में प्रकाशित हुई है, भाग एक एवं भाग दो। इसमें कुल 67 निबन्ध हैं बत्तीस भाग एक में और पैंतीस निबन्ध भाग दो में संगृहीत हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'भट्ट निबन्धमाला' भट्ट जी का तीसरा निबन्ध संग्रह है जो सं० 2004 में प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन भी

धनंजय भट्ट 'सरल' ने किया है। इसके दोनों भागों में कुल 64 निबन्ध संगृहीत हैं। इस प्रकार पुस्तककार के रूप में यदि इन संग्रहों को देखा जाये तो कुल 156 निबन्ध प्रमुख रूप से प्रकाशित हैं। कुछ निबन्ध 'हिन्दी प्रदीप' की फाइलों में तो हैं किन्तु प्रकाशित नहीं हैं। कुछ निबन्ध अन्य समकालीन पत्र पत्रिकाओं में बिखरे हुए हैं।

पं० बालकृष्ण भट्ट हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने की दिशा में प्रयासरत रहे। उन्होंने इस आशय के 'हिन्दी प्रदीप' में कई लेख भी लिखे। हिन्दी की दशा पत्रकारिता और लेखों के माध्यम से सामने आती है। भट्ट जी ने 'हिन्दी प्रदीप' में 1886 में ललकारते हुये लिखा— "यदि देश का कुछ भी अभिमान हमको है तो ऐसा उपाय हमें शीघ्र करना चाहिये जिससे हमारी एक जातीय भाषा हो जाये। यहाँ पर इतना हमें अवश्य कहना चाहिये था। यद्यपि जातीय भाषा हम लोगों की कोई नहीं परन्तु जातीय अक्षर हैं और जो कोई हमारी जातीय भाषा कभी होवेगी इसके अक्षर भी वे ही होने चाहिये जिनमें कि उस समय जातीयता है— वे अक्षर देवनागरी हैं—और भारतवर्ष की वर्तमान भाषाओं में एक भाषा भी ऐसी है जो इन उक्त अक्षरों में लिखी जाती है और वह भाषा ईश्वर की कृपा से हिन्दी है और फिर यह भी है कि यही हिन्दी थोड़ी बहुत भारतवर्ष के सब भागों में समझी जाती है और अधिक भागों में बोली जाती है। इससे हमारी समझ में यह आता है कि यदि भारतवर्ष की कभी कोई जातीय भाषा तो यह हमारी प्यारी सर्वगुण आगरी नागरी ही होगी और यथार्थ में इसी को ऐसा बनने का अधिकार है।"¹⁵

भट्ट जी 19वीं शताब्दी में हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों के शिक्षा और न्यायालय में प्रयोग को लेकर आन्दोलनरत रहे। विचारात्मक लेखों के परिप्रेक्ष्य में साहित्य, सभ्यता, कविता, चित्रकला, मन और बुद्धि आलोचना आदि विषयों पर इतने सुन्दर लेख जो कि अन्य किसी के द्वारा नहीं लिखे गये। साहित्य और सभ्यता के सम्बन्धों पर वे लिखते हैं—“साहित्य सभ्यता का प्रधान अंग है। यह कभी संभव नहीं कि कोई देश सभ्यता में बढ़ जाय और साहित्य उस देश की भाषा से हटा रहे जब तक हमारी भाषा के साहित्य की उन्नति न होगी तब तक इस सभ्यता को भी बिजली की चमक के समान क्षणिक मानना चाहिए, चाहे हमारे

नव शिक्षित नाक फुलाय सभ्यता-सभ्यता पुकार कितना ही गाल बजाया करें पर पूर्ण सभ्यता बिना देश भाषा की उन्नति के सर्वथा असंभव है।”¹⁶

भट्ट जी ने ऐसे भी निबन्ध लिखे हैं जिनमें उन्होंने विषय की उपेक्षा करके अपने को व्यक्त किया है। इस संदर्भ में डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित ‘हिन्दी साहित्य के इतिहास’ में भी एक उल्लेख मिलता है—“बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के सर्वाधिक समर्थ निबन्धकार हैं। उन्होंने सामाजिक समस्याओं पर जमकर लिखा है। ‘बाल विवाह’, ‘स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा’, ‘राजा और प्रजा’, ‘कृषकों की दुरवस्था’, ‘अंग्रेजी शिक्षा और प्रकाश’, ‘हमारे नये सुशिक्षितों में परिवर्तन’, ‘देश सेवा महत्त्व’, ‘महिला स्वातन्त्र्य’, आदि निबन्ध इसी प्रकार के हैं। इनके अतिरिक्त मनोभावों तथा भाषा और साहित्य सम्बन्धी विषयों पर भी भट्ट जी ने विचार किया है। उनके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निबन्ध वे हैं जिनमें विषय की उपेक्षा करके उन्होंने अपने को व्यक्त किया है। ‘ईश्वर भी क्या ठठोल है’, ‘चली तो चली’, ‘देवताओं से हमारी बातचीत’, ‘नये तरह का जुनून’, ‘खटका’ आदि निबन्ध आत्मव्यंजना की प्रधानता के कारण अधिक आकर्षक बन पड़े हैं।”¹⁷

पं० बालकृष्ण भट्ट ने भाषा के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अपने समय की परिष्कृत और विकसित शैली के स्थान पर जनता के निकट की भाषा शैली को अपनाया है। उन्होंने कहावतों तथा मुहावरों के व्यापक प्रयोग से अपनी शैली की वक्रता और व्यंग्य को निखारा है। भट्ट जी के निबन्धों से उस युग की धडकन का ही पता नहीं चलता वरन् आगे के युगों की पदचाप भी स्पष्ट सुनाई पड़ती है।

भट्ट जी के निबन्धों के विषयगत वर्गीकरण में हमें सामाजिक, राष्ट्रीय सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा मनोवैज्ञानिक इत्यादि निबन्धों के दर्शन होते हैं। भट्ट जी ने देश की परिस्थितियों पर निबन्ध लिखे हैं। भट्ट जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। विषय प्रधान निबन्धों की बहुलता पर अध्ययन करने पर शैली की दृष्टि से ये वर्णनात्मक निबन्ध कहे जा सकते हैं। उनके द्वारा रचित निबन्धों में विषय प्रधान निबन्ध, अन्य निबन्धों की तुलना में अधिक हैं।

सामाजिक निबन्ध :

पंडित बालकृष्ण भट्ट का परिवार एक संयुक्त परिवार था। यहीं से उनके सामाजिक निबन्धों की पृष्ठभूमि दिखाई देती है। भट्ट जी ने अपने व्यक्तिगत जीवन में कई उतार चढ़ाव देखे और उनके कटु अनुभवों को सहन किया। वे सरस्वती की उपासना जीवन भर करते रहे और आज हिन्दी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान पर आसन्न है।

भट्ट जी ने बहुत से सामाजिक निबन्धों की रचना की है। जिसमें उन्होंने समाज में व्याप्त बुराई और कुरीतियों पर अपनी निर्भीक शैली में व्यंग्य किया है। भट्ट जी के सामाजिक निबन्धों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे संयुक्त परिवार के विरोधी, छुआछूत, पर्दा प्रथा, बालविवाह, बाह्य आडम्बरों और रूढ़िवादिता, वृद्धावस्था में विवाह कुसंस्कारों इत्यादि के प्रबल विरोधी थे।

संयुक्त परिवार के अवगुणों को उन्होंने अपने एक निबन्ध में कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हैं— “दिन व दिन परिवार बढ़ता जाता है। उनके भरणपोषण और विवाह इत्यादि के खर्च का बोझ मनमाना लदता जा रहा है। होते-होते वह घराना या तो नष्टप्राय हो जाता है या रहा भी हो तो किसी गिनती में नहीं। हजारों लाखों घराने इस एकान्त प्रथा के कारण अस्तः प्राय हो गये। यदि एकान्त की प्रथा न हो और पिता अपने पुत्रों को सब भौति समर्थ कर अलग कर दिया करे तो हमारी हिन्दु जाति की कर्दयता के कारण जो दुर्गति हो रही है कभी न हो।”¹⁸

सामाजिक निबन्धों के अन्तर्गत ‘बाल विवाह एक ऐसा निबन्ध है जिसे भट्ट जी ने इस कुप्रथा की रोकथाम के उद्देश्य से लिखा था। भट्ट जी का स्वयं कम आयु में ही विवाह हो गया था। इनके सामाजिक निबन्धों में बाल विवाह पर ही अधिकतर निबन्ध दिखाई देते हैं — “अठारह या बीस बरस का एक संडा अत्यन्त अज्ञात यौवना अल्पवयस्क अज्ञात रजसा ग्यारह या बारह वर्ष की बालिका जो अभी निपट अबोध है और इन बातों को कुछ भी नहीं जानती। केवल अपने सुख और आमोद के लिये सतावे यह कहों की सुरीति है। इसमें क्या बुनियाद है कि अमुक शिष्ट मनुष्य ने इसे प्रचलित किया है। बहुत से लोग कहते हैं यह धर्म

नहीं तो यह सामाजिक विषय है इसका संशोधन हम अपने आप करेंगे। गवर्मेन्ट क्यों हाथ डालती है। इसके उत्तर में हम कहते हैं, महा कन्जरवेटिव हम हिन्दुओं की सत्यानाशी कौम ऐसी नहीं है कि अपने आप कभी कुछ करें। गो इस सरकार ने जिस तरह सती की कुरीति उठाई उसी तरह इसे भी कानून के जरिये हम लोगों के बीच उठा दें।”¹⁹

पंडित जी स्त्री जाति की उन्नति को समाज की उन्नति का अंग मानते थे। पर्दा प्रथा को वे समाज के विकास में अवरोध की दृष्टि से देखते थे। ‘हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा’ में वह लिखते हैं—“बाबू साहब हृदान तोड़ विलाइत की राह के लिये कदम उठाये हैं। बबुआइन घर गोबर ही पाथती रहीं। बाबू साहब लाला साहब मिस्टर सो एंड सो कहे जाने की उमंग में फूले नहीं समाते, ललायन कौआ हकनी ही रही। इन सब का एक मात्र कारण पिशाचिनी पर्दा प्रथा है।”²⁰

स्त्री जाति की उन्नति में शिक्षा के योगदान को सर्वोपरि समझते थे। वे स्त्रियों द्वारा फैशन किये जाने को भी बुरा समझते थे। स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए भट्ट जी ने तन मन धन से प्रयत्न किया। प्रयाग में आपने स्त्री शिक्षा के लिए एक प्रारम्भिक पाठशाला ‘गौरी पाठशाला’ की स्थापना की जो कि आप इन्टर कॉलेज के रूप में विद्यमान है। भट्ट जी के युग में स्त्रियों को घर बाहर निकलने की स्वतंत्रता नहीं थी ऐसे में उनकी शिक्षा दीक्षा के लिए बाहर निकलना एक कठिन कार्य था। स्त्री शिक्षा पर भट्ट जी ने कई लेखों निबन्धों में लिखा है। एक स्थान पर वह लिखते हैं—“.....स्त्रियाँ जिनका हमारे पूज्यपाद महाराजों को बड़ा अभियान है कि बला से बाबू साहब के ख्याल बदल गये तो क्या परवाह है उनके घर अपढ़ स्त्रियाँ तो हमारे चंगुल में हैं सो उधर भी सब सामान इनकी उस्तादी खुलने का हो रहा है। यह स्त्री शिक्षा और स्त्रियों के दशा की परिवर्तन की चेष्टा इत्यादि आन्दोलन के क्या माने ? इससे यही तात्पर्य कि शिक्षा आदि के द्वारा इनके नेत्र खोल दिये जायें जिससे ये भी हमारे समान गुरु जी की चालाकी समझने लगे। निश्चय मानिये जिस दिन हमारी सीधी सादी ललना समाज में शिक्षा का असर पैदा हो गया जैसा बंगाल में हो चला है उस दिन फिर ये मन्दिर और

देवस्थान हिन्दुस्थान की एक पुरानी बात मात्र रह जायेगी उनकी ओर जैसा मजहबी जोश इस समय देखा जाता है वह बिल्कुल गायब हो जायेगा।”²¹

बालकृष्ण भट्ट ने अपने सामाजिक निबन्धों में समाज में फैले हुये बाह्य आडम्बरों एवं दिखावटीपन का प्रखर विरोध किया है। आडम्बर और रूढ़िवादिता को वे अपने निबन्धों में से इस प्रकार अन्त करते हैं कि उनके परिणामों का चित्र पाठकों तक समुचित रूप से पहुँच सके बाह्य आडम्बर पर उनके विचार इस प्रकार हैं— “बाह्य आडम्बर के फेर में पढ़कर..... हम लोग धर्म और समाज के सम्बन्ध में खर्च करते हैं उनका चौथाई भी और देश वाले नहीं करते। पर यहाँ का ये खर्च बहुत कुछ ऊटपटांग होने से किसी तरह का उपकार या देश की भलाई में उसे नहीं गिना सकते।”²²

भारत में छुआ छूत और वर्ण व्यवस्था जैसी कुरीतियों के व्याप्त होने से भट्ट जी दुखी थे। उनके द्वारा रचित सामाजिक निबन्धों में इसे समुचित रूप से वर्णित किया गया है। वे मानते थे कि इस प्रथा से देश के निवासियों में एकता का अभाव रहता है और इसी का लाभ उठा कर अंग्रेजों का यहाँ शासन करना और आसान हो गया। भट्ट जी ने इस व्यवस्था के विरुद्ध बड़ी निर्भीकता के साथ अपनी रचनाओं को विषय बना कर सामाजिक पीड़ा को प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में उनके ‘जात-पात’ निबन्ध का यह अंश विचारणीय है— “हमारे देश में जाति का इतना जोर है कि अब तक इतनी हलचल हुई। प्रायः बहुत सी पुरानी बातें लुप्त हो गई बहुत से मत मतान्तर ऐसे फैले जिससे इसे जड़ पेड़ से उखाड़ना चाहा..... पर यह जाति पिशाची अभी तक जैसी थी वैसी बनी हुई है। जैसा बेहूदा तरीका बिरादरी का इस समय प्रचलित है उससे कभी आशा नहीं की जा सकती कि जाति पाति के सत्यानाश के बिना हुए उन्नति की हजार-हजार चेष्टा करने पर भी हमारी या हमारे देश की कभी तरक्की होगी। स्वाधीनता की नाक काटने वाली इस जाति पाति कुरीति देख यही मन में आता है कि परमेश्वर हमने कौन सा पाप किया था जिसका फल भोगने को ऐसे कुलच्छनी समाज में तूने हमें पैदा कर दिया।”²³

भट्ट जी समाज में मानवता के पक्षधर थे। वे केवल एक ईश्वर को ही सारे जगत् पिता बताते हैं। उनकी दृष्टि में क्षेत्रवाद, नस्लवाल, रंगभेद आदि सब बेकार सिद्ध हो जाते हैं। जब सारे मनुष्यों को वे एक ही कौम के रूप में देखने की कामना करते हैं। वे मानते हैं कि देश का पतन या विकास उसकी कौम पर ही निर्भर करता है, ये बात हमें भट्ट जी के निबन्ध 'कौम' से स्पष्ट हो जाती है – "मनुष्य मात्र सब भाई हैं और ईश्वर उन सबों का पिता है। उनको इससे कुछ वास्ता नहीं जो पूछने बैठे कि आप-किस ऋषि के वंश में हैं ? किस पैगम्बर को पूजते हैं ? आप काले रंग के तो नहीं हैं ? आप उसी खित्ते में बसते हैं जहाँ हम हैं तब बस आप हमारी कौम के बड़े भारी दायरे में लाचारी कि आ गये। जिस देश का उत्थान या पतन होता है वहाँ उस देश की लोगों में पहले ही से कौमी तरक्की या कौमी तनज्जुली के आसार नज़र पड़ने लगते हैं। आभीसत्व, उदारभाव, उत्साह, साहस, वीरता आदि कौमी तरक्की के आसार हैं।"²⁴

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने सामाजिक निबन्धों के माध्यम से पाठकों को जागरूकता का पाठ पढ़ाया है। विशेष रूप से उनके समकालीन 'समाज' में यह आवश्यक भी था कि समाज में एक चेतना फैलायी जाये। विधवा विवाह का भी उन्होंने अपने लेखों में वर्णन किया है। वे मानते थे कि विधवा विवाह में स्त्रियों के उत्पीड़न की संभावनायें अधिक रहती हैं। भट्ट जी ने विधवा विवाह को तभी सही बताया है जब कि वो परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक हो। इस प्रकार यह भलीभाँति ज्ञात होता है कि भट्ट जी समाज की दशा से अत्यधिक प्रभावित थे और देश में एक आदर्श समाज की कामना में रत दिखाई देते हैं। वे सामाजिक कुरीतियों को जड़ से उखाड़ने का आह्वान करते हैं। इस संदर्भ में डॉ० मधुकर भट्ट अपनी पुस्तक में एक स्थान पर कहती हैं—“वे सरस्वती की उपासना जीवन भर करते रहे और आप हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ गये। कहने का तात्पर्य यह है कि भट्ट जी का जीवन संघर्षमय जीवन था, यही कारण था कि सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों के ये पक्के विरोधी थे। समाज में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे।”²⁵

बालकृष्ण भट्ट के सामाजिक निबन्धों की श्रेणी में निम्नलिखित निबन्ध प्रमुख कहे जा सकते हैं :

जातीयता (हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1881), सर्वनाश समुत्पन्न : अर्ध : त्यज्यति पंडित (अगस्त 1881), शोभा और सामर्थि (फरवरी 1882), ढोल गंवार शुद्ध पशुनारी, ये सब ताड़न के अधिकारी (सितम्बर 1884), पति पत्नी (नवम्बर 1882), स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा (फरवरी 1885), स्त्रियों की मानसिक शक्ति (अगस्त 1885), बाल विवाह (मार्च 1886), समाज की भिन्न अवस्था (1888), जातपात (अप्रैल 1886), हमारी भारत की ललनायें (जुलाई 1891), परिवार की एकान्त भोजन की कुप्रथायें (जुलाई 1891), महिला स्वातंत्र्य (जुलाई-अगस्त 1891), सूदखोरी (दिसम्बर 1905), हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण (अक्टूबर, दिसम्बर 1904), सुग्रहणी (जुलाई-अगस्त 1895), कृषि की कर्वित दशा (जनवरी-मार्च 1897), ग्राम्य जीवन (अगस्त-सितम्बर 1901) इत्यादि।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक :

पंडित बालकृष्ण भट्ट एक कुशल लेखक होने के नाते जीवन के प्रत्येक आयाम को भलीभाँति अनुभव करते थे। वे देश की समस्याओं पर गम्भीर चिंतन करते थे और राष्ट्रीय विषयों पर निबन्ध भी लिखते थे। पं० मदनमोहन मालवीय के सम्पर्क में रहकर राष्ट्रीयता को और भी द्रुत रूप में स्थापित करते दिखाई देते हैं। उनका 'हिन्दी प्रदीप' अंग्रेज शासकों के प्रति आग उगलता था और उन्होंने राष्ट्रीयता से कोई समझौता न करके सरकारी नौकरी पर लात मार दी थी। वे भलीभाँति जानते थे कि ब्रिटिश शोषण से देश का पीछा तब तक नहीं छूटेगा जब तक जनता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना नहीं होगी, और वो उस भावना, चेतना को जगाने के लिये अपनी रचनाओं को माध्यम बनाकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते रहे। समकालीन पत्रकारों को इस दिशा में सम्बोधित करते हुये एक स्थान पर वो कहते हैं—“जिस ढर्रे पर गवर्मेन्ट का राज्य चल रहा है उनमें बड़े-बड़े हाकिमों और बड़े-बड़े ओहदेदारों को अपनी मनमानी कर गुजरने में यदि कोई बात रोक सकती है तो पब्लिक ओपिनियन, सर्वसाधारण का एकमत्य है। अतएव अखबार के एडीटरों का यह मुख्य काम या कर्ण है कि जब किसी हाकिम या

राजकर्मचारी को किसी बात में बेजा भूल करते देखें सर्वसाधारण पब्लिक की ओर से उनको चैतन्य कर दें।”²⁶

बालकृष्ण भट्ट अंग्रेजी शासन के विरुद्ध हिन्दी प्रदीप में लेख लिखा करते थे। अंग्रेजी राज में पुलिस की तानाशाही से जनता व्याकुल थी। स्वयं भट्ट जी के घर के आसपास गुप्त रूप से पुलिस मंडराया करती थी। अपने लेखों के माध्यम से वे सरकारी नीतियों पर व्यंग्य कसा करते थे। एक स्थान पर वे लिखते हैं— “हमारी गवर्नमेंट जो बुद्धिमानी और रातनीतिक कुशलता की कलगी खोंसे हुये हैं एक ऐसे काम में सिर खपा रही है जिसे हम अनुचित काम या बेकाम का काम कह सकते हैं—“लार्डडफरिन की क्षिप्रकारिता और लोभी प्रकृति का परिणाम गवर्नमेंट के लिये साँप छछूंदर वाली मसल का नमूना है साँप छछूंदर यो ग्रस्यों कि उगलता लीलत पीर।”²⁷

राष्ट्रीयता की भावना भट्ट जी के विचारों में बहुतायत में पायी जाती है। इनका 71 वर्ष परतन्त्रता में ही बीता था इस लिये इस पीड़ा से भलीभाँति परिचित थे। भट्ट जी की राष्ट्रीय विचारधारा के निबन्धों में अधिकतर निबन्ध ऐसे ही हैं जो उन्होंने सरकार की आलोचना के सम्बन्ध में लिखा। वे उन भारतीयों से चिढ़ते थे जो भारतीय होते हुये भी सरकार के पिट्टू थे।

भट्ट जी की राष्ट्र भक्ति के संदर्भ में लिखते हैं — ‘इस क्रान्तिदर्शी मनीषि के लेख से तत्कालीन शासक भयाक्रान्त रहते थे और भट्ट जी पर उनकी वक्र दृष्टि रहती थी। 33 वर्ष तक देशवासियों को अपने प्रकाश में मार्ग दर्शन करने के पश्चात् ‘प्रदीप’ अन्त में तत्कालीन शासकों के दमन का ग्रास बन गया तत्कालीन देशभक्त लेखकों में पं० बालकृष्ण भट्ट का स्थान सबसे ऊँचा है। इस महान् पुरुष ने अपने देश की स्वतंत्रता के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।’²⁸

राष्ट्रीयता से परिपूर्ण निबन्धों की रचना करके भट्ट जी ने राष्ट्रभक्ति को सिद्ध किया है। हिन्दी और संस्कृत के बाद भट्ट जी ने राजनीतिक विषयों पर भी निबन्ध एवं लेख लिखे हैं। इस प्रकार के निबन्धों में निम्नलिखित लेख प्रमुख हैं—व्यवस्था का कानून (हिन्दी प्रदीप, सितम्बर—अक्टूबर, 1893), भारत का भावी परिणाम क्या होगा (फरवरी, 1878), प्रयाग की वर्तमान अवस्था (फरवरी, 1878),

इंग्लैंडेश्वरी और भारत जननी (मार्च, 1878), प्रेस एक्ट (मई, 1878), हिन्दुस्तानी राज्य (जून, 1878), पुलिस (जुलाई, 1878), ढोल के भीतर पोल (नवम्बर, 1885), दुष्काल पीड़ित निवासियों पर दया प्रकाश (दिसम्बर, 1878), छोटी सरकार और बड़ी सरकार (दिसम्बर, 1878) काबुल युद्ध का विचार (जून, 1880), मुल्क की तरक्की क्या चीज है (जुलाई, 1880), बेदखली और हजाफा लगान (अगस्त, 1881)।

सांस्कृतिक निबन्धों में भट्ट जी ने भारत की सांस्कृतिक व्यवस्था को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। भारत में विभिन्न संस्कृतियों ने मानवीय जीवन को सुचारु रूप से एक गति प्रदान की है। यहाँ विभिन्न सम्प्रदायों के लोग भारतीय होने के गर्व को अनुभव करते हैं। यह पूर्ण सिद्ध है कि भारत एक ऐसा देश है, जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग विभिन्न स्थानों पर फैले हुए हैं। भट्ट जी हिन्दू और मुसलमानों को भारतमाता के ही पुत्र मानते थे। हिन्दू मुस्लिम एकता के संदर्भ में उनके विचार इस प्रकार थे —“जो अपना भाई रूठ गया हो उसे कैसे मनावें..... थोड़े से लोगों के बहकावे में आप हमारे मुसलमान भाई हम से रूठ गये हैं। उनमें से सज्जन शराफत की खुशबू से भरे भलमनसाहत के नगीने बने हैं, कुलीन जन हैं, उनसे हमारा सविनय निवेदन है कि उन पर लक्ष्य कर न हमने कभी कुछ लिखा है न ऐसे सुपात्रों को कभी अपनी ओर से बिगाड़ा चाहे।”²⁹

भट्ट जी सभी धर्मों को सम्मान देते थे। जहाँ भी जिस धर्म में कुछ बुराई देखते उसकी आलोचना करते और जहाँ भी कोई अच्छाई देखते प्रशंसा करते हैं। उनके धर्म की एक कसौटी यह थी कि यदि धर्म किसी जाति, समाज एवं देश के उत्थान में बाधक है, जो मनुष्य को मानवता से हटाता है, वह धर्म सच्चा धर्म नहीं हो सकता एक लेख में उन्होंने सनातन धर्म की आलोचना में एक स्थान पर कहा—“जिसमें सात ही वर्ष की कन्या व्याही जाय, जिसमें आठ कनौजिये नौ चूल्हे हों, जिसमें लड़कपन से क्षीर कण्ड बालक का ब्याह करके स्वच्छन्द जीवन का पाँव तोड़ दिया जाय वह जैन धर्म की शाखा है। वह स्वार्थी धर्म शास्त्र वहिर्मुख यजमान सर्वस्व ब्राह्मणों के रुपये कमाने के इन्स्ट्रुमेण्ट हैं, वह हिन्दुस्तान की

अधःपतन करने के लिये व्यग्र है।..... हमारा सनातन धर्म वह है जिसका प्रतिपादन व्यास, वसिष्ठ, गौतम, जैमिनी, तपोनिधि बनवासी करते थे।”³⁰

राष्ट्रीय सांस्कृतिक निबन्धों में बँधकर जीवन के प्रत्येक क्रिया कलापों को पूर्ण करता है भट्ट जी के विचारों से अलग नहीं है। भारतवर्ष में धार्मिक रिवाजों से मनुष्य इतना बँधा हुआ है कि इसके बिना तो किसी भी धर्म में जीवन संभव नहीं है। भट्ट जी के सांस्कृतिक निबन्ध की कुछ पंक्ति प्रस्तुत हैं—“सपूत लड़के की तीन पहचान ग्रंथकारों ने लिखा है। जीते जी पिता की आज्ञा के बाहर न होना सयाह के दिन लोगों को खिलाना पिलाना और गया में जाय पिण्डदान करना।... शास्त्र की आज्ञा है कि बहुत से पुत्र उत्पन्न करें कदाचित् उनमें कोई एक ऐसा श्रद्धालु निकले कि गया यात्रा से पितरों का उद्धार करने वाला हो।”³¹

भट्ट जी के सांस्कृतिक निबन्ध वर्णनात्मक शैली में पूर्ण स्वच्छन्द विचार धारा से परिपूर्ण हैं। उन्होंने बहुत से सांस्कृतिक निबन्धों की रचना की है जिसमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

गया यात्रा (हिन्दी प्रदीप, नवम्बर—जनवरी, 1893), वायु का वर्णन (जुलाई, 1898), इंग्लेण्डेश्वरी और भारत जननी (मार्च 1878), हिन्दुस्तानी राजा (जून, 1878), बाल्य विवाह (दिसम्बर, 1880), पति पत्नी (सितम्बर, 1884), दिवाली (नवम्बर, 1884), होली (मार्च, जून, 1882), मेला ठेला (जून, 1899), विशाल वाटिका (नवम्बर, 1905), बधुस्तब (दिसम्बर 1905), कार्तिक स्नान (सितम्बर, 1891), बातचीत (अगस्त, 1891), स्वतंत्र वाणिज्य (जुलाई, 1907) इत्यादि।

साहित्यिक निबन्ध :

भारतेन्दु युग में सर्वप्रथम गद्य की नींव पड़ी। उस समय साहित्य को भी जनता के सम्पर्क में लाया गया। भट्ट जी का कहना था कि साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है। उनके द्वारा लिखे गये निबन्ध ‘रसाभाव’ से हमें उनकी साहित्यिक अभिरुचि के दर्शन होते हैं। रसाभाव अनेक प्रकार से होता है जैसे शृंगार के वर्णन में वीभत्स या करुणा की कोई बात कह देना। इसी प्रकार शान्त रस में रौद्र या शृंगार रस का वर्णन भी रसाभाव है। भट्ट जी के साहित्य ज्ञान के संदर्भ में गोपाल पुरोहित ने अपनी पुस्तक में लिखा है — “बड़ी तार्किक और

ऐतिहासिक रीति से उन्होंने अपने विषय की पुष्टि की है। इससे उनके अथाह प्राचीन वैदिक साहित्य के ज्ञान का पता चलता है।³² भट्ट जी ने साहित्य के विभिन्न अंगों पर निबन्धों की रचना की। उन्होंने साहित्य उपन्यास काव्य, नाटक, निबन्ध आदि सभी पर विचार किया है। भट्ट जी द्वारा लिखित साहित्य जन पर विचार किया है। भट्ट जी द्वारा लिखित साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है शीर्षक निबन्ध में लिखते हैं – “प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है। वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं..... इसलिये यदि साहित्य जन समूह के चित्र का चित्रपट कहा जाय तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय के आभ्यन्तरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।”³³

भट्ट जी को प्राचीन साहित्य का विशेष ज्ञान था यह बात हमें उनके द्वारा रचित निबन्ध ‘वेद क्या है’ से भलीभाँति ज्ञात हो जाता है। वेद क्या है निबन्ध की कुछ पंक्ति प्रस्तुत हैं— “धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में चारो पदार्थ जिससे जाने या जिसमें पाये जाय, वह वेद है। प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और आगम इन चार प्रमाणों में अलग वेद ही हैं। अनिष्ट निवारण पूर्वक इष्ट प्राप्ति के अलौकिक उपाय को जो जाने, वह वेद है। प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों जहाँ गिर जाते हैं और उनसे काम नहीं चलता, वहाँ उस वस्तु को हम वेद ही से जान सकते हैं।”³⁴

बालकृष्ण भट्ट हिन्दी के विद्वान पुरुष थे और हिन्दी के विकास में रत रहते थे। इस विषय में लक्ष्मी कान्त भट्ट ने लिखा है—“भट्ट जी के साहित्यिक निबन्ध का जो विकसित और विद्वता पूर्ण रूप दिखाई पड़ता है, वह भट्ट जी का अपूर्व ज्ञान है।..... हिन्दी की उन्नति उनके जीवन का उद्देश्य था।”³⁵

भट्ट जी के साहित्यिक निबन्धों में उनके हिन्दी लेखन शैली का निखरा हुआ रूप दिखाई देता है। ‘साहित्य सुमन’ भट्ट जी के साहित्यिक निबन्धों का एक अच्छा संग्रह है। इसके प्रकाशक लक्ष्मीकान्त भट्ट हैं। ‘चन्द्रोदय’ इनका एक कल्पना प्रधान काव्यात्मक निबन्ध है। भाषा शैली तथा साहित्यिक रुचि का एक उदाहरण

इनके 'चन्द्रोदय' निबन्ध में इस प्रकार देखा जा सकता है—“अंधेरा पाख बीता उजेला पाख आया। पश्चिम की ओर सूर्य डूबा और वक्राकार हंसिया की तरह चन्द्रमा उसी दिशा में दिखलाई पड़ा मनो कर्कशा के समान पश्चिम दिशा सूर्य के प्रचण्ड ताप से दुखी हो क्रोध में आ इसी हंसिया को लेकर दौड़ रही है और सूर्य पाताल में छिपने के लिये जा रहा है।”³⁶ एक अन्य साहित्यिक निबन्ध 'उपमा' में भट्ट जी लिखते हैं— “उपमा एक ऐसा अलंकार है, जिसकी उपयोगिता न केवल पढ़े लिखे लोगों को होती है, करन हमारी नित्य की साधारण बातचीत में भी बिना उपमा के काम नहीं चलता।.... किसी के वर्णन में जहाँ वर्णनीय उत्कर्ष और वर्णन में चमत्कार पैदा करने वाला किसी प्रकार का सादृश्य दिखाया जाय वह उपमा है।”³⁷

इसी प्रकार 'माधुर्य' शीर्षक निबन्ध में भट्ट जी ने कविता के तीनों गुणों— माधुर्य, प्रसाद, ओज में एक गुण माधुर्य का विवेचन इस प्रकार किया है—“प्रसाद, ओज, माधुर्य, कविता के इन तीन गुणों में माधुर्य भी एक है। कोकिल, कण्ठ, जयदेव की कविता गीत गोविन्द, आदि से अन्त एक माधुर्य का गुण दण्डी ने 'काव्यादर्श' में इस तरह किया है.....।”³⁸

बालकृष्ण भट्ट ने कवियों तथा महापुरुषों की जीवनी भी लिखी हैं। इन रचनाओं की गणना भी साहित्यिक निबन्धों में होती है। इनमें पंडितराज जगन्नाथ, महर्षि विद्यासागर और अलीगढ़ के नये नवी सरसैयद श्रीमदभागवत्, महाकवि हर्ष, महाकवि विल्हण, गोवर्धनाचार्य, महाकवि क्षेमेन्द्र, नृपति चरितावली, कालीदास और भवभूति गीतासार समुच्च, महाकवि बाणभट्ट श्री शंकराचार्य और गुरुनानक देव इत्यादि। अन्य साहित्यिक निबन्ध इस प्रकार हैं — धर्म क्या है, प्रीति, समय का विचार, ब्रिटिश इंडिया, अंग्रेजी राज्य की विलक्षणता, हमारे देश के नवशिक्षितों की वर्तमान अवस्था, रिडक्शन की अंध धुंध, ऋग्वेदादि, भाष्य भूमिका पर प्रश्न, हम भारतीय क्यों हुये , भारत की ललनाओं की अवस्था आदि प्रमुख हैं।

मनोवैज्ञानिक निबन्ध :

भट्ट जी ने देश की तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक सभी प्रकार की परिस्थितियों पर निबन्ध लिखे हैं। इस प्रकार के निबन्धों को पढ़ने में

पाठकों को पूर्ण आनन्द एवं ज्ञान की प्राप्ति होती है। अभिप्रेय की सफल अभिव्यक्ति ही भट्ट जी के निबन्धों की उत्कृष्टता का द्योतक है। भट्ट जी के निबन्धों के विषय मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं। उनके अथाह ज्ञान के कारण ही वे विभिन्न विषयों पर मनोवैज्ञानिक निबन्धों की रचना में सफल हुये हैं।

एक स्थान पर भट्ट जी स्वयं इस बात को लिखते हैं – “पता नहीं लोग कैसे लम्बे निबन्ध लिखते हैं। मेरी समझ में तो निबन्धों का स्वरूप छोटा और विषय भी छोटे-छोटे साधारण जैसे— आँख, कान, नाक आदि होने चाहिये।”³⁹ मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क में उठने वाली वो सब भावनायें जो केवल उसके आन्तरिक हृदय तक ही सीमित रहती हैं, और कभी-कभी अधिकता के कारण चेहरे पर व्यक्त हो जाती है। ये परिस्थितियाँ मनोवैज्ञानिक होती हैं।

‘आत्मनिर्भरता’ नामक निबन्ध में भट्ट जी कहते हैं – “आत्मनिर्भरता एक ऐसा श्रेष्ठ गुण है जिसके न होने से पुरुष में पौरुषैयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता जिनको अपने भरोसे का बल है। जहाँ होंगे जल में तूँबी के समान सबके ऊपर रहेंगे।..... निरी किस्मत और भाग्य पर वे ही लोग रहते हैं जो आलसी हैं। किसी ने अच्छा कहा है दैव दैव आलसी प्रकाश।”⁴⁰

मनोवैज्ञानिक निबन्धों के विषय में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा कहते हैं— “भट्ट जी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में शैली की एकरसता नहीं है। शैलियों की विविधता ही भट्ट जी की सबसे बड़ी विशेषता है इसलिए मनोवैज्ञानिक निबन्धों में भट्ट जी की प्रायः सभी शैलियाँ मिल जायेगी। फिर भी मनोवैज्ञानिक निबन्धों की अपनी अलग विशेषतायें भी हैं।”⁴¹

भट्ट जी ‘मन और नेत्र’ नामक निबन्ध में लिखते हैं— “हमारे यहाँ दार्शनिक मन को सब इन्द्रियों का प्रभु मानते हैं। उनका सिद्धान्त है हाथ-पाँव इन्द्रियों का किया कुछ नहीं होता यदि मन उस पर रूप न हो।”⁴² उपर्युक्त निबन्ध में भट्ट जी ने ‘मन’ का विश्लेषण बहुत अच्छे और प्रभावी ढंग से किया है। मन और उसके सहयोगी नेत्र का संबंध स्थापित करते हुये भट्ट जी ने जो उदाहरण और प्रसंग

प्रस्तुत किये हैं वो बड़े मनोमुगधकारी और आकर्षक हैं। कहीं कहीं तो भट्ट जी का मनोवैज्ञानिक विशलेषण बिल्कुल आधुनिक स्तर का प्रतीत होता है।

बालकृष्ण भट्ट मनोवैज्ञानिक निबन्धों में किसी भी विषय पर उसकी परिभाषा अवश्य देते हैं। 'ज्ञान और भक्ति' शीर्षक निबन्ध से इस बात को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है—“ज्ञान और भक्ति दोनों परस्पर प्रतिकूल अर्थ के घोटक मालूम होते हैं। ज्ञान के अर्थ हैं जानना या जानकारी और ज्ञ धातु से बना है। भक्ति भज धातु से बनी है जिसका अर्थ है सेवा करना या लगाना (टू सर्व आर टू डिवोट)।”⁴³

भट्ट जी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति पायी जाती है। जिसका विषय मनुष्य के सूक्ष्म आन्तरिक भाव होते हैं। भट्ट जी के 'कौतुक' शीर्षक निबन्ध में उनके भावों की अभिव्यक्ति के दर्शन इस प्रकार होते हैं— “जिस बात को देख या सुनचित चमत्कृत हो सब ओर से खिंच सहसा उस देखी या सुनी बात की ओर झुक पड़े, वह कौतुक है।.... ऐसा ही और कितने बड़े-बड़े विद्वान विज्ञान-विद लोगों ने साधारण सी कौतुक की बातों पर कौतुकी ही बड़े-बड़े काम लिये हैं।”⁴⁴

अपनी बात को समझाते हुये वो 'सहानुभूति' शीर्षक निबन्ध में कहते हैं— “दूसरे के दुःख से दुखी, सुख से सुखी होने का नाम सहानुभूति है।”⁴⁵

बालकृष्ण भट्ट जी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में वर्गीकरण भलीभाँति होता है। 'भक्ति' शीर्षक निबन्ध में वह भक्ति का वर्गीकरण इस प्रकार करते हैं— “हरिभक्ति, देव, गुरु भक्ति, पितृ भक्ति, राज भक्ति, देश भक्ति आदि भक्तियों में अनेक भेद हैं।.... इस भक्ति के प्रकरण में एक नये तर्ज की भक्ति और भी है उसका नाम है भार्या भक्ति। 'शोभा और सामर्थ्य निबन्ध में वे कहते हैं—“मनुष्य के हृदय की वृत्ति दो प्रकार की होती है, एक तो वह जिसमें स्त्रियों के से सब गुण होते हैं जैसा नमृता, कोमलता, लज्जा, प्रीति इत्यादि दूसरी वृत्ति में पुरुष के सब गुण होते हैं जैसा पराक्रम, अध्यवसाय, अभिमान, आत्मनिर्भरता आदि।”⁴⁶

भट्ट जी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में आत्म गौरव (हिन्दी प्रदीप, सितम्बर 1890), रिवाज बख्त (सितम्बर, 1880), विश्वास (जनवरी, 1904), दर्पण (अगस्त

1890), ज्ञान और भक्ति (मार्च-अप्रैल, 1903), बोध (जुलाई, 1896) भक्ति (जून, 1899), धैर्य (जून, 1887), महत्त्व (अगस्त, 1899), आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष :

बालकृष्ण भट्ट के बारे में ये कहा जा सकता है कि ये भारतेन्दु युग के प्रतिभाशाली लेखक, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान तथा युग के श्रेष्ठ निबन्धकार माने जा सकते हैं। अनेक शैलियों के साथ उन्होंने साहित्यिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विषयों पर सुन्दर निबन्धों की रचना की है। भारतेन्दु युग का 'हिन्दी प्रदीप' अकेला ऐसा पत्र था जो भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक आरम्भ से अंत तक एक ही सम्पादक की रीति-नीति तथा नियंत्रण में चला। इस पत्र में भट्ट जी ने भाषा सम्बन्धी संपादकीय विचार दिये।

बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों को हम निम्न प्रकार से भी विभाजित कर सकते हैं— (1) विचारात्मक निबन्ध जैसे— 'चारुचरित्र', 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है', 'चरित्र पालन', 'प्रतिभा', 'आत्मनिर्भरता' आदि।

(2) आलोचनात्मक निबन्ध— उसमें इनके निबन्ध कम मात्रा में प्राप्त हुये हैं तथा आलोचनात्मक टिप्पणियाँ अधिक हैं। (3) भावात्मक निबन्धों के माध्यम से भट्ट जी ने साहित्य की अमूल्य सेवा की है। इसमें आँसू, 'मुग्धमाधुरी', 'प्रेम के बाग का सैलानी', 'हमारे मन की मधुप्रवृत्ति', 'कल्पना', 'माधुर्य', 'चलन', 'आशा', 'माता का स्नेह', आदि प्रमुख हैं। (4) विवरणात्मक निबन्धों में 'स्वप्न कथा', 'आत्मकथा', तथा 'जीवनी' प्रमुख हैं। (5) वर्णनात्मक निबन्धों में 'चंद्रोदय' आदि निबन्ध हैं।

भट्ट जी के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन करने के बाद यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनके निबन्धों में भारतेन्दु की अपेक्षा निबन्ध के लक्षण अधिक हैं। उनके निबन्धों में उपहास और व्यंग्य बहुत अधिक नहीं पाया जाता है। उनके चुने हुये बत्तीस भावात्मक निबन्धों का संग्रह 'भट्ट-निबन्धावली (भाग-1) और उच्च कोटि के पैंतीस विचारात्मक निबन्धों का संग्रह भट्ट निबन्धावली (भाग-2) में प्रकाशित हुये हैं। उनके कुछ निबन्धों के शीर्षक उर्दू भाषा के शब्दों में भी लिखे हुये हैं। भट्ट जी को भारतेन्दु युग का प्रमुख निबन्धकार के रूप में माना जा सकता है।

सन्दर्भ :

01. धनंजय भट्ट 'सरल' : भट्ट-निबन्धावली (भाग-1), पृ० 9
02. वही, पृ० 10
03. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 120
04. सत्यप्रकाश मिश्र : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, दौड-धूप, पृ० 187
05. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 121
06. डॉ० मधुकर भट्ट : निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 30
07. वही, पृ० 39
08. डॉ० मधुकर भट्ट : निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 38
09. धनंजय भट्ट 'सरल' : भट्ट-निबन्ध माला (भाग-2), भूमिका, पृ० 3
10. सत्यप्रकाश मिश्र : (सं०) बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध (भूमिका), पृ० 18
11. पं० बालकृष्ण भट्ट : मधुमंगल मिश्र हितकारिणी, सितम्बर 1914, पृ० 268
12. श्रद्धांजलि पुरुषोत्तम दास टंडन, अभ्युदय, 25 जुलाई 1914
13. डॉ० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० 117-118
14. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 122
15. सत्यप्रकाश मिश्र : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध (भूमिका), पृ० 14
16. वही, पृ० 15
17. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 476
18. डॉ० मधुकर भट्ट : निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 116
19. हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर-दिसम्बर 1890, पृ० 29-30
20. हिन्दी प्रदीप, जून 1894, पृ० 17
21. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल-जून, 1891, पृ० 28
22. हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर-दिसम्बर-1890, पृ० 29-30
23. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1889, पृ० 17
24. सत्यप्रकाश मिश्र : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, कौम, पृ० 23
25. डॉ० मधुकर भट्ट : निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 116
26. 'हिन्दी प्रदीप' मई 1883, पृ० 18
27. वही, सितम्बर 1886, जिल्द 10, पृ० 7
28. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता पं० बालकृष्ण भट्ट, पृ० 216
29. 'हिन्दी प्रदीप' फरवरी 1883, पृ० 23
30. 'हिन्दी प्रदीप' सितम्बर 1880, पृ० 10-11
31. गया यात्रा 'हिन्दी प्रदीप' नवम्बर-जनवरी 1893, पृ० 9-10
32. गोपाल पुरोहित : निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, पृ० 154
33. 'हिन्दी प्रदीप' 1880, पृ० 5
34. सत्यप्रकाश मिश्र : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, वेद क्या है, पृ० 206
35. लक्ष्मीकान्त भट्ट : पं० बालकृष्ण भट्ट की जीवनी, पृ० 59
36. चन्द्रोदय, 'हिन्दी प्रदीप', जुलाई-अगस्त 1889, पृ० 13-19
37. धनंजय भट्ट 'सरल' : भट्ट-निबन्धावली (भाग-1), उपमा, पृ० 43

38. सत्यप्रकाश मिश्र : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, माधुर्य, पृ० 124—125
39. बालकृष्ण भट्ट : हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1892, पृ० 7
40. वही, पृ० 7
41. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता बालकृष्ण भट्ट, पृ० 295
42. सत्यप्रकाश मिश्र : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, मन और नेत्र, पृ० 24
43. बालकृष्ण भट्ट : 'हिन्दी प्रदीप', मार्च—अप्रैल, 1903, पृ० 2
44. वही, अक्टूबर, 1889, पृ० 3
45. 'हिन्दी प्रदीप' अक्टूबर 1891, पृ० 16
46. वही, 1882, पृ० 2



षष्ठ—अध्याय

**प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों
का समीक्षात्मक अध्ययन**

षष्ठ अध्याय

प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन

हिन्दी निबन्ध साहित्य में पंडित प्रतापनारायण मिश्र का प्रसिद्ध स्थान है। मिश्र जी का सम्पूर्ण साहित्य लोक भावना से ओत-प्रोत है। उनके जीवन का उद्देश्य ही देश सेवा, समाज सेवा और हिन्दी सेवा था। अन्य विधाओं की अपेक्षा निबन्ध साहित्य में उनका उद्देश्य अधिक स्पष्ट और प्रबल था। भारतेन्दु युग के निबन्ध साहित्य के विषय में डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय लिखते हैं—“निबन्ध साहित्य के प्रथम उन्नयन में जिन तीन निबन्धकारों की बार-बार चर्चा हुई है, वे हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र। इन तीनों में भी बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र को ही वास्तविक निबन्ध रचयिता माना जाता है।”¹ “प्रतापनारायण मिश्र के लिए विषय की कोई सीमा नहीं थी। धोखा, ‘खुशामद’, ‘आप’ ‘बात’, ‘दाँत’, ‘भौं’, ‘नारी’, ‘मुच्छ’, ‘परीक्षा’, ‘ह’, ‘द’, समझदार की मौत है; ‘मनोयोग’ आदि अनेक विषयों को लेकर उन्होंने अपनी मौज में सार्थक बातें कही हैं। भारतेन्दु की भाँति उनका उद्देश्य भी जनता को जाग्रत करना था, फलतः उन्होंने देश की दुर्दशा का चित्र खींचकर सभी क्षेत्रों में सुधार और नवनिर्माण की प्रेरणा दी।”²

पंडित प्रतापनारायण मिश्र के निबन्ध व्यक्तित्व प्रधान हैं और यदि व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा को निबन्ध का आवश्यक गुण माना जाय तो निश्चित रूप से निबन्धकारों की शृंखला में मिश्र जी वास्तविक निबन्धकार का स्थान रखते हैं—“जिस प्रकार पाश्चात्य निबन्ध-साहित्य के जन्मदाता मौंतेन हैं उसी प्रकार हिन्दी निबन्ध-साहित्य के प्रतापनारायण मिश्र हैं। वैसे विचारात्मक-निबन्ध का जहाँ तक प्रश्न है उसमें तो बालकृष्ण भट्ट सर्वोपरि हैं पर मिश्र जी में मौलिकता उनसे अधिक है साथ ही मिश्र जी अपने रचनात्मक-निबन्ध क्षेत्र के जनक और सम्राट दोनों ही हैं। जबकि भट्ट जी अपने क्षेत्र के केवल जनक ही हैं।”³

“प्रतापनारायण मिश्र के हृदय में स्वदेशी और स्वदेश के प्रति जो प्रेम रहा है उसे हम उनके निबन्धों में देख चुके हैं वही प्रेम उनकी कविता में भी प्रकट है जैसे उनके गद्य की भाषा अवधी की भूमि पर स्थिर है, वैसे ही उनकी कविता की भाषा अवधी ही है या उस पर अवधी की गहरी छाप है जो हास्यरस उनके निबन्धों में है, वही उनकी पद्य-कृतियों में भी।”⁴

मिश्र जी के समय सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन में उथल पुथल और क्रान्तियाँ हो रही थीं। सामाजिक जीवन में पाखण्ड, आडम्बर, चोरी और भ्रष्टाचार फैला हुआ था, और बौद्धिक चेतना से सम्पन्न तथा देशभक्ति से पूर्ण व्यक्ति इस अनाचार का खण्डन करते थे, और सदाचार की प्रतिष्ठा के लिये प्रयत्नशील हो रहे थे। जनता भी समाज के इन तथाकथित प्रतिष्ठित व्यक्तियों के अनाचारों के भण्डाफोड़ पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती थी। यह स्वाभाविक था कि प्राचीन संस्कृति के अन्य उपासक मिश्र जी अपने निबन्धों में इन सामाजिक अनाचारों के भण्डाफोड़ पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती थी। यह स्वाभाविक था कि प्राचीन संस्कृति के अनन्य उपासक मिश्र जी अपने निबन्धों में इन सामाजिक अनाचारों का भण्डाफोड़ करते। वे जनता के व्यक्ति थे, जनभाषा में मिलकर जन साहित्य को समृद्ध करना चाहते थे। यद्यपि अपने निजी जीवन में वे फक्कड़ साधनहीन और स्वाभिमानी थे, पर देश हित, समाज सेवा, साहित्य निर्माण और हिन्दी प्रचार की धुन में उन्होंने कभी अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों को आगे नहीं आने दिया।

प्रतापनारायण मिश्र के सम्बन्ध में डॉ० शान्तिप्रकाश वर्मा ने अपनी पुस्तक प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन में लिखा है—“सामाजिक बुराइयों पर कुठाराघात करते हुये वे नवीन सभ्यता और आधुनिक शिष्टाचार की परवाह नहीं करते थे। उनमें निर्भयता तो थी ही, जहाँ। वे समाज के दोषों को दूर करना चाहते थे वहाँ पाश्चात्य समाज के अन्धानुकरण को वे दोष मानते थे। वैसे उन्होंने नवीन विचारों, भावाओं और व्यवस्थाओं का स्वागत किया।”⁵

मिश्र जी ने विभिन्न सामाजिक विषयों जैसे रिश्तत, ठगी, ब्राह्मणों की हीन दशा, बालविवाह, त्योहारों में अनैतिकता, युवावस्था, नारी, जवानी, बलि, जुआ, खुशामद, दान,

स्वार्थ, भलमनसाहत, अपव्यय आदि दोषों पर अपनी लेखनी से बार किये हैं प्रेमभावना को वह सर्वोपरि स्थान देते हैं इस विषय पर वे स्वयं कहते हैं—“इससे जिसे जितनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करके अपना या अपने लोगों का जीवन सफल करना हो उसे चाहिये कि उतनी ही अधिक प्रेमदेव की आराधना करें क्यों कि चींटी से लेकर ब्रह्म तक उन्हीं के बनाये प्रतिष्ठित बनते हैं नहीं तो किसी में कुछ भी तत्त्व नहीं हैं, किसी का कुछ भी सत्त्व नहीं। तंत की बात यही है कि प्रतिष्ठा केवल प्रेमदेव की है।”⁶

देश के प्रति ममता और प्राचीन गौरव के प्रति गर्व तथा अन्याय के प्रति प्रतिरोध उनके राजनीतिक निबन्धों के त्रिविध अंग हैं मिश्र जी के राजनीतिक विषयों पर लिखे गये निम्न निबन्ध—‘कांग्रेस की जै’, कांग्रेस कर्तव्य’, ‘स्वतन्त्रता’ धरती माता आदि महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं इन निबन्धों में स्वतन्त्रता के लिये एक छटपटाहट देखने को मिलती है हिन्दी निबन्ध साहित्य में प्रतापनारायण मिश्र को रंजनात्मक निबन्धों के जनक के रूप में जाना जाता है उनके निबन्ध व्यंग्यविनोद से युक्त हैं। उनकी भाषा बड़ी सरल कहावतों और मुहावरों से परिपूर्ण है। प्रो० जयनाथ नलिन का इस विषय में कहना है—“मिश्र जी भारतेन्दु युग के अत्यन्त प्रिय लेखक हैं इनके अनेक निबन्ध हिन्दी के अच्छे निबन्धों में गिने जा सकते हैं। आत्मीयता, आकार—संकोच, भाषा का चटपटापन, उछलता उमंग भरा व्यक्तित्व जवानी का फक्कड़पन और तेज, उक्ति चमत्कार और व्यंग्य की बौछार आदि विशेषतायें मिश्र जी को शक्तिशाली निबन्धकार प्रमाणित करती हैं अपने क्षेत्र में वह एक मात्र लेखक स्वयं हैं।”⁷

मिश्र जी अपने संस्कारों के कारण धार्मिक दृष्टि से वे कट्टर सनातनी हिन्दू थे, वे आस्तिक थे और ईश्वर तथा उत्तम प्राचीन परम्पराओं पर विश्वास रखते थे। यही कारण है कि धर्म के विषय पर उनका दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है उनके समकालीन हिन्दू धर्म जर्जर हो रहा था, ईसाई मिशनरियाँ धर्म परिवर्तन में रत थीं हिन्दूओं का मुसलमानों और ईसाइयों से संघर्ष चल रहा था। मिश्र जी अपने धार्मिक विचारों में इतने सुद्रुण और चट्टान की तरह अडिग थे कि वे ईसाइयों, मुसलमानों पर ही नहीं नास्तिकों और आर्य समाजियों पर जब तक और बागवाणों से प्रहार करते थे तो उनमें एक अद्भुत निर्ममता दिखाई पड़ती थी। ‘मुक्ति के भागी’, मुनीनां व मतिभ्रम, ‘पादरी

साहब का व्यर्थ यत्न,' 'नास्तिक,' 'धर्म और मत,' "पौराणिक गूढ़ार्थ," देव मन्दिरों के प्रति हमारा कर्तव्य, ईश्वर की मूर्ति, गोरक्षा आदि उनके निबन्धों से उनकी धार्मिक दृष्टि का पता चलता है।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने ब्राह्मण पत्र 15 मार्च 1883 ई० को होली के दिन कानपुर से आरम्भ किया। यह पत्र मासिक था और इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया था। यह पत्र मिश्र जी की साहित्य साधना का एक माध्यम मात्र था। रुचिकर और लोकप्रिय बनाने के लिये वे जहाँ सामयिक घटनाओं और समस्याओं पर प्रकाश डालते रहते थे, वहाँ उसमें अपनी विशुद्ध साहित्यिक कृतियों को भी प्रकाशित करते रहते थे। मिश्र जी की मृत्यु के बाद कुछ लेखकों ने इनके लेखों को ब्राह्मण एवं विभिन्न पत्रों से संगृहीत कर प्रकाशित करवाया। इस विषय पर डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल अपनी पुस्तक में लिखते हैं—“सर्वप्रथम सन् 1919 ई० में अभ्युदय प्रेस, प्रयाग से निबन्ध—नवनीत, पहिला भाग प्रकाशित हुआ इसमें मिश्र जी के 41 लेख और निबन्ध संकलित हैं निबन्ध नवनीत में मिश्र जी के प्रमुख निबन्ध ही संकलित किये गये हैं इसके बाद 1933 ई० में पं० रमाकान्त त्रिपाठी ने प्रताप पीयूष का सम्पादन किया। इसमें मिश्र जी के 25 निबन्ध संगृहीत हैं सन् 1939 ई० में प्रेमनारायण टण्डन द्वारा 'प्रताप समीक्षा' का सम्पादन किया गया इसमें केवल 15 निबन्ध दिये गये हैं। तदुपरान्त 1947 में नारायण प्रसाद अरोरा और लक्ष्मीकांत त्रिपाठी के सम्पादकत्व में 'प्रतापनारायण मिश्र का प्रकाशन हुआ। इसमें मिश्र जी के 15 लेख तथा निबन्ध और कुछ 'ब्राह्मण' की टिप्पणियाँ तथा समालोचनायें संगृहीत हैं इसके बाद सम्वत् 2014 वि० में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से 'प्रतापनारायण—ग्रंथावली' प्रथम खण्ड निकला। इसमें 'ब्राह्मण' की कुछ टिप्पणियों के साथ मिश्र जी के 189 लेख तथा निबन्ध संकलित हैं मिश्र जी का प्राप्त लेख, निबन्ध और समालोचना साहित्य केवल दस वर्षों का है। इस साहित्य का प्रकाशन ब्राह्मण में मार्च 1883 ई० से जुलाई 1893 ई० तक हुआ।”⁸

निबन्ध साहित्य मिश्र जी का अपना निरालापन लिये हुए है छोटे से छोटे विषय को भी मिश्र जी ने अपनी प्रतिभा से विशिष्ट बना दिया है उनके निबन्धों में

विषय प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान विषय भी उनकी भाषा और शैली से सरल बन गये हैं मिश्र जी के निबन्धों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है।

मिश्र जी स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण भाषा लिखने वालों में से हैं इनके निबन्ध प्रमुख रूप से वर्णनात्मक हैं मिश्र जी के निबन्धों में रंजनात्मकता के विषय में डॉ० रामविलास शर्मा भारतेन्दु युग नामक पुस्तक में लिखते हैं—“निबन्ध लिखना हिन्दी में नई चीज़ थी। बंगला में उपन्यास, कविता, नाटक आदि के लिये आदर्श मिल सकते थे, परन्तु प्रतापनारायण मिश्र आदि के से निबन्ध हिन्दी की अपनी उपज थे।”⁹

यह माना जाता है कि हिन्दी में रंजनात्मक निबन्धों का प्रणयन मिश्र जी से ही प्रारम्भ होता है इनके निबन्धों की मौलिकता, स्वाभाविकता और सरसता को देखकर डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एक पुस्तक में लिखते हैं—“भाषा प्रयोग आदि की दृष्टि से मिश्र जी में चाहे जो दोष आ गये हों, किन्तु निबन्धकार के वास्तविक रूप के दर्शन भट्टजी की अपेक्षा हमें उन्हीं में अधिक प्रतीत होते हैं उनके निबन्धों में दोष केवल इसलिये दिखाई देते हैं कि वे जन समुदाय को छोड़ना नहीं चाहते थे। इस प्रधान उद्देश्य के सामने उन्होंने अन्य बातों पर अधिक ध्यान न दिया। विद्वान होकर भी वे अपनी विद्वता प्रकट करना नहीं चाहते थे। विदग्ध साहित्य की रचना वे भले ही न कर पाये हों किन्तु उनकी रचनाओं में साधारण समाज की रुचि प्रतिबिम्बित है उनकी लेखनी और स्वभाव ने एक नवीन पाठक समुदाय ही उत्पन्न कर दिया।”¹⁰

प्रतापनारायण मिश्र का सम्पूर्ण साहित्य लोक भावना से ओतप्रोत है। उन्होंने देश सेवा, समाज सेवा, और हिन्दी सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। निबन्ध साहित्य में वे अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक सक्रिय रहे। वे कहते हैं—“अपना घर, अपना मनोमंदिर, अपने बंधु बाँधव इष्ट मित्र, परोसी और स्वदेशी भाइयों के घरों को देखो और निज का घर समझ के उनके अभावों को दूर करो। सब गृही भाइयों के लिए सुख का उपाय करो, पर आज ही से, इसी क्षण से, सन्नद्ध हो जावें क्योंकि ढिल्लरपन से निर्वाह न होगा। मृत्यु पुकार रही है, ‘संभल, शीघ्र संभल, तेरी आँखें मूढ़ने में विलम्ब नहीं है। एक पल भर में सब मनोर्थ बिलीयमान हो जायँगे। अपना भला चाहता है तो केवल चाहने से कुछ न होगा, जो करना है करने में जुट जा, दिन

थोड़ा है'। भारत माता रो रो कह रही है कि मेरी गति क्या से क्या हो रही है, मेरे हितार्थ, यदि तुम मेरे सच्चे सपूत हो तो, तुम्हें दूर जाना है क्या तुम्हारा मन इन बातों को सोच के नहीं कहने लगता कि अब मेरा यहाँ अर्थात् आलस्य के साथ रहने में निर्वाह नहीं है।'¹¹

मिश्र जी के निबन्धों में लोभावना की प्रमुखता के साथ उपदेशात्मकता के भी पर्याप्त दर्शन होते हैं यहाँ तक कि विचारात्मक निबन्धों में भी कहीं-कहीं उपदेशात्मकता के पुट विद्यमान हैं। तत्कालीन परिस्थिति के प्रति जागरूकता मिश्र जी के प्रत्येक निबन्ध में मिलती है उनका देश और समाज की दयनीय स्थिति का क्षुब्ध हृदय प्रत्येक निबन्ध में झांकता दिखाई देता है उनके निबन्धों में धर्मान्धता नहीं है, वे शुद्ध वैज्ञानिक पीठिका पर लिखे गये हैं मिश्र जी ने छोटे से छोटे विषय को कड़ा सरस और रमणीय बना दिया है इन निबन्धों में उनका व्यक्तित्व प्रधान है उन्होंने विषय की अपेक्षा पाठकों की अभिरुचि को अधिक महत्त्व दिया है वह बड़ी आत्मीयता के साथ हास्य और व्यंग्य को साथ लेकर चलते हैं वे पाठकों से एक तारतम्य स्थापित कर लेते हैं ऐसा लगता है जैसे बिल्कुल समीप बैठकर बात कर रहे हैं—'ले भला बतलाइए तो आप क्या हैं? आप कहते होंगे, वाह आप तो आप ही हैं यह कहाँ की आपदा आई? यह भी कोई पूछने का ढंग है? पूछा होता कि आप कौन हैं बतला देते कि हम आप के पत्र के पाठक हैं और आप 'ब्राह्मण' संपादक हैं अथवा आप पंडितजी हैं।, आप राजाजी हैं, आप सेठजी हैं, आप लाला जी हैं, आप बाबू साहब हैं, आप मियाँ साहब, आप निरे साहब हैं। आप क्या हैं? यह तो प्रश्न की कोई रीति ही नहीं है।'¹² पं० प्रतापनारायण मिश्र ने स्वाभाव के अनुसार ही विषय का निर्वाचन किया है उनके निबन्धों के विषय और शैली दोनों में सरलता है किन्तु वे विषय प्रधान न होकर व्यक्तित्व प्रधान हैं।

उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि निबन्ध किसी भी विषय पर लिखा जा सकता है, और साधारण विषय को भी रोचक बनाया जा सकता है लेखक के लिखने का ढंग भी ऐसा है मानों वह हमारे सामने बैठा सब कुछ कह रहा हो। एक एक शब्द से हम उसकी भंगिमाओं का चित्र अपने सामने चित्रित कर सकते हैं। विषय निरूपण करते

समय मिश्र जी नीरस, शुष्क और विस्तृत बातें नहीं करते। वे विषय का कोई एक पक्ष लेकर सब प्रकार से उसमें साहित्यिक सौन्दर्य उत्पन्न कर उसके साथ पाठकों का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। विषय प्रतिपादन शैली और भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा वे अवर्णनीय रसात्मकता की सृष्टि किये बिना नहीं रहते। साधारणतयः ये बात अन्य निबन्ध लेखकों में कम पायी जाती है।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों में हास्य व्यंग्य की प्रमुखता ही उनकी विशिष्ट मौलिकता है इसी में उनके व्यक्तित्व की विलक्षण छाप दिखाई देती है उनके निबन्ध व्यक्तित्व प्रधान होते हुये भी पूर्ण वैयक्तिक नहीं हैं उनमें उपदेशात्मकता और पाठकों से समीपता अधिक है इस सम्बन्ध में डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल का कथन है—“वैयक्तिक निबन्धों में उपदेश, शिक्षा, ज्ञान प्रदर्शन, किसी के मत का खण्डन—मण्डन और तर्क वितर्क नहीं होता, उसमें लेखक केवल विषय के सहारे अपने भावों की अभिव्यक्ति कर देता है इन निबन्धों में लेखक की शिक्षा दीक्षा का महत्त्व न होकर उसकी वैयक्तिक प्रतिभा का महत्त्व होता है। मिश्र जी में प्रतिभा तो प्रचुर मात्रा में थी और उसकी अभिव्यक्ति भी निबन्धों में पूरी तरह हुई है उनके प्रत्येक निबन्ध में उनका व्यक्तित्व ही लहरा रहा है हास्य और व्यंग्य की सफल योजना भी उनके निबन्धों में है और वे सरस तथा प्रभावोत्पादक भी हैं पर उपदेश और उद्धरण शैली के कारण हम उन्हें शुद्ध वैयक्तिक निबन्ध नहीं कह सकते। उनके निबन्ध विषय प्रधान होकर व्यक्तित्व प्रधान ही हैं और उस युग के निबन्धकारों में सबसे अधिक वैयक्तिकता मिश्र जी के ही निबन्धों में है।”¹³

मिश्र जी के निबन्धों की भाषा अवधी, ब्रज, उर्दू और खड़ी बोली है। ब्रजभाषा और शुद्ध अवधी में एक प्रमुख भाषा है। इसमें परिमार्जित खड़ी बोली में कहावतों, मुहावरों की उछलकूद और व्यंग्यात्मकता नहीं है इस भाषा का प्रयोग गम्भीर विषयों के विवेचन में किया गया है उन्होंने विचारात्मक निबन्ध इसी भाषा में लिखे हैं उस भाषा की झलक उनके ‘संलग्नता’ निबन्ध में देखी जा सकती है—“विद्या और सत्संग के द्वारा बुद्धि प्रकाशित होने पर बहुत से कर्तव्याकर्तव्य आप से आप सूझते लगते हैं। जिसमें से यदि दो एक का भी भलीभाँति संग्रह त्याग निर्वाहित हो जाय तो जीवन के

साफल्य में बड़ी भारी सुविधा होती है, किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे वृहत्कार्य सहज में नहीं होते।¹⁴

पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने सरल खड़ी बोली को स्वाभाविक रूप से अपने निबन्धों में प्रयोग किया है उनके व्यक्तित्व की सम्यक अभिव्यक्ति इसी भाषा में दिखाई पड़ती है जैसे—“यदि आप निरे सच्चे, निरे सीधे, निरे न्यायी, निरे सज्जन हैं तो रिषियों की भौंति..... सिद्धान्त भी नहीं छोड़ना चाहते, काइयाँपन भी नहीं सीखा चाहते और निर्वाह भी चाहते हैं, तो जन्म को रोड़ये। आशा छोड़िये कि कभी आपके शेखचिल्ली जैसे मनोर्थ पूरे होंगे।”¹⁵

मिश्र जी के अरबी, फारसी के जो शब्द हिन्दी में घुलमिल गये हैं उन्हीं को अपनी भाषा में स्थान दिया और अरबी, फारसी के अनुचित प्रभाव से सदैव भाषा को बचाने का प्रयत्न किया इसके अतिरिक्त अंग्रेजी के शब्द भी उन्होंने अपने निबन्धों में प्रयोग किये हैं जैसे—“*Lover, Policy, Mount, Half civilized, Indirect, Lady, Progress* आदि। कही कहीं अपनी भाषा में मिश्र जी ने अंग्रेजी की कहावतों — *All is not gold that glitters, Eat drink and be merry, might is right, necessity is the mother of invention* आदि का भी प्रयोग अपनी भाषा में किया है जिससे कि निबन्धों में पाठकों को परिपूर्णता का अनुभव कराया जा सके। और भाषा को सरल स्वाभाविक तथा जन सामान्य के अनुकूल बनाया जा सके।

मिश्र जी के निबन्धों में बुद्धि और भाव का समुचित संयोग दिखाई पड़ता है उन्होंने अपने विचारों को सरलता और रोचकता के बीच ऐसी आत्मीयता से संजोया है कि पाठक उन्हें अपनी वस्तु समझ कर बड़ी अभिरुचि के साथ ग्रहण करते हैं डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने अपनी पुस्तक में इस विषय पर कहा है — “उनके लेखों में सर्वत्र व्यक्तित्व की छाप लगी मिलती है जैसा उनका स्वभाव था वैसा ही उनका विषय निर्वाचन भी था। इसके अतिरिक्त उनकी रचना में आत्मीयता का भाव अधिक मात्रा में रहता था। साधारण विषयों को सरल रूप में रखकर वे सुनने वाले का विश्वास अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे।”¹⁶ मिश्र जी परिमार्जित भाषा को भी पूर्ण अधिकार के साथ लिखते थे, जिसका प्रमाण हमें उनके विचारात्मक निबन्धों में सहज ही मिल जाता है

ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपनी भाषा में लोकहित और हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से किया है। मिश्र जी की यह भाषा बड़ी भावानुरूपिणी है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' मिश्र जी की इस भाषा के विषय में लिखते हैं—“अहा! भाषा हो तो ऐसी हो, क्या प्रवाह है! क्या लोच! कैसी फड़कती और चलती भाषा है। दुःख है, यह भाषा पं० जी के साथ ही चली गयी, फिर ऐसी भाषा लिखने वाला कोई उत्पन्न नहीं हुआ। मुहावरेदार भाषा लिखने में जैसा भाव विकास होता है, वैसा अन्य भाषा में लिखने में नहीं। यदि होता भी है तो उतना प्रभावजनक नहीं होता। पं० जी की भाषा में अनेक शब्द शुद्ध रूप में नहीं लिखे गये हैं, कारण इसका यह है कि उनको उस रूप में उन्होंने लिखा है, जैसा वो बोलचाल में है।”¹⁷

मिश्र जी के निबन्ध व्यक्तित्व या शैली प्रधान हैं इनके विवेचन के लिए रूप या शैली के आधार पर चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, वर्णनात्मक निबन्ध, कहीं-कहीं उनके एक निबन्ध में ही चारों रूपों के दर्शन हो जाते हैं उनके वर्णनात्मक निबन्धों में इतिवृत्तात्मकता की प्रमुखता है। विचार की अपेक्षा परिचय अधिक है। मिश्र जी ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि अनेक विषयों पर वर्णनात्मक निबन्ध लिखे हैं इन निबन्ध में 'गंगा जी', 'बेगार, रिश्त' दयापात्र, जीव, कचहरी में शालिग्राम जी, भेड़ियाधसान, देशोन्नति, जातीय भण्डार, गंगा जी की स्थिति, रसिक समाज, बेकाम न बैठ कुछ किया कर, उन्नति की धूम, विस्फोटक, हिम्मत राखों एक दिन नागरी का प्रयार ही होगा, सवै सहायक सबल के कोउना निबल सहाय, पवन जगावत अग्नि को दीपहिं देत बुझाय, भौं, नारी, पादरी साहब का व्यर्थ यत्न, बलि पर विश्वास, पतिव्रता, दबी हुई आग, कानपुर और नाटक कन्नौज में तीन दिन, हम राज भक्त हैं। प्रताप चरित्र, कांग्रेस की जय, धरती माता, धरती माता की पूजा, सोशल कान्फरेंस, वृद्ध द, ग्रामों के साथ हमारा कर्तव्य नामक निबन्ध प्रमुख हैं। मिश्र जी के वर्णन बड़े प्रभावोत्पादक हैं वे अपने निबन्धों में भूमिका न बांधकर सीधे विषय पर आ जाते हैं पर वर्णन का ढंग ऐसा सजीव है कि अस्वाभाविकता नहीं आने पाती। 'पक्ष' निबन्ध में इस कुशलता को इस प्रकार से देखा जा सकता है— “यह दो अक्षर और तीन अर्थ का शब्द भी ऐसा उपयोगी है कि इसके बिना कोई काम ही नहीं चल

सकता। यदि पक्षी के पक्ष जाते रहें तो उसका जीना भारी हो जाय। यदि महीने में कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष न हो तो ज्योतिषियों को गणित में गड़बड़ी करनी पड़े। यदि किसी का पक्ष करने वाला कोई न हो तो वह एक पक्ष क्या एक क्षण भी सुख से नहीं बिता सकता।¹⁸

मिश्र जी के निबन्ध का अन्त भी विषय का निष्कर्ष देकर करते हैं या उपदेश देते हुए उसे समाप्त कर देते हैं और ये दोनों ही ढंग मर्मस्पर्शी होते हैं। जैसे—“मौके-मौके से उन्हें अनुमति और शिक्षा भी देते रहना, और कभी कभी उनकी सलाह भी लेते रहना। बस इन उपायों से सम्भव है कि भारत कन्याएँ पुनः पतिव्रत की ओर झुकने लगेंगी। और पतिव्रताओं के प्रभाव से फिर हमारी सौभाग्यलक्ष्मी की वृद्धि होगी।”¹⁹ प्रतापनारायण मिश्र ने वर्णननात्मक निबन्धों में कहीं-कहीं पर हास्य और व्यंग्य का भी समावेश किया है इन वर्णनात्मक निबन्धों में मिश्र जी ने प्रमुख रूप से व्यास, उद्धरण, उपदेशात्मक, चित्रात्मक और काव्यात्मक शैलियों का प्रयोग किया है।

विचारात्मक, निबन्धों की भाषा कुछ विलष्ट होती है, और इनमें खण्डन-मण्डन तर्क-वितर्क आदि का विशेष सहारा लिया जाता है। इनमें अध्ययन मनन और चिन्तन की मात्रा बहुत कम थी वे स्वच्छन्द प्रकृति के होने के कारण अधिक विचारात्मक निबन्ध नहीं लिख सके। उनके द्वारा लिखित विचारात्मक निबन्धों के विषय प्रायः साहित्यिक, और धार्मिक हैं इन निबन्धों में सोने डंडा और पौड़ा, नास्तिक, ईश्वर की मूर्ति, मतवालों की समझ, शिवमूर्ति, मदवादी अवश्य नर्क में जायेंगे, ईश्वर का वचन, धर्म और मत, काल, पौराणिक गूढार्थ, भ्रम है, हरि जैसे को तैसा है, दशावतार पुराण समझने को समझ चाहिये, झगड़ालू पथ, प्रतिष्ठा केवल प्रेमदेन की है, प्रेम एवं परोधर्म, मुनीनां चमतिभ्रमः, खड़ी बोली का पद्य, आल्हा आहवाद, अपभ्रंश, एक सलाह आदि प्रमुख निबन्ध हैं।

प्रतापनारायण मिश्र को शब्दों की व्युत्पत्ति का अच्छा ज्ञान था और वे इन पर बड़े तर्कपूर्ण ढंग से विचार करते थे। हास्य और व्यंग्य के अवतार होते हुये भी मिश्र जी अपने विचारात्मक निबन्धों में काफी संचत और गम्भीर हैं। डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल का इस संदर्भ में कथन है—“मिश्र जी के विचारात्मक निबन्धों के तर्क आकट्य हैं।

उनमें उद्धरण आदि यथास्थान होने से संदेह के लिये कहीं स्थान नहीं रह जाता। वे अपने विचारों के प्रमाण अनायास ही ढूंढ लेते हैं। मिश्र जी को उद्धरण आदि के लिये कहीं भटकना नहीं पड़ता था। वे एक बार जो चीज पढ़ लेते थे वह उनके मस्तिष्क में पत्थर की लकीर सी बन जाती थी। इसलिये वे गहन अध्ययन न करके भी उकृष्ट निबन्ध लिख जाते थे।²⁰

मिश्र जी के भावात्मक निबन्ध अधिक संख्या में नहीं हैं। शुद्ध भावात्मक निबन्ध में कहीं कहीं वैयक्तिक निबन्धों का भी आभास होने लगता है उन्हें तत्कालीन देशभक्तों, समाजसुधारकों और सच्चे पत्रकारों से बड़ी सहानुभूति थी। वे उनकी कठिनाइयों को जनता तक पहुँचाते और उन पर बड़ी सहृदयता से विचार करते थे। इनके भावात्मक निबन्धों में काल्पनिकता अधिक नहीं है, वे भावात्मक तथ्यों की भूमिका पर लिखे गये हैं भावात्मक निबन्ध उनकी सहृदयता और उनके निश्छल हृदय की अभिव्यक्ति है। उनका कोमल और उदार हृदय उनमें पूरी तरह समन्वित है। भारतेन्दु की मृत्यु पर लिखे गये शोक निबन्ध की एक झलक प्रस्तुत है—“हाय! हृदय विदीर्ण हुवा जाता है। आँसू रुकते ही नहीं है। हाय—हाय सुनने से पहिले ही हमारा निरलज्ज शरीर क्यों न छूट गया। हाय पापी प्राण तुम क्यों न निकल गये। हाय इस अधम जीवन का अन्त क्यों नहीं हो गया। बस अब क्या है अभागा भारत डूब जा। अरे अब तेरा कौन है।”²¹

पंडित जी ने हास्य और व्यंग्य परक निबन्ध सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र की संकीर्णताओं को आधार बनाकर लिखे हैं। उनमें भारतीयों के अन्ध विश्वास और अकर्मण्यता पर खूब छीटा कसी की गई है। बनावटी देशभक्तों, प्रचारकों और देशद्रोहियों के कार्यों का भी खूब भंडाफोड़ किया गया है। मिश्र जी सच्चे देश भक्त थे, इसलिए उनकी दृष्टि सभी पर समान रूप से पड़ी है उन्होंने सच्ची तथा देशहित की बात डंके की चोट पर कही है वे स्पष्ट रूप से कहते हैं—“यार बुरा मानों चाहे भला पर कहेंगे वही जो तुम्हारे और सबके हित की हो। जब तक आचारण न सुधरेंगे तब तक यह सब भगतई और भलमंसी किसी काम की नहीं है।”²²

मिश्र जी के सभी निबन्ध लोकभावना से परिपूर्ण हैं और उन्हें सुधारात्मक दृष्टि कोण से लिखा गया है। हिन्दुओं के धर्म के प्रति अन्धविश्वास पूर्ण कट्टरता के विषय में वे लिखते हैं—“कोई हिये कपारे का अन्धा, इन्द्रियों का बन्दा, मौलवी तथा पादरियों के मायाजाल में फंस के उसे चोटी कटा ले, फिर वह चाहे जैसा अपने किये पर रोवे, उसका हिन्दु होना असम्भव।..... यदि प्रायश्चित की प्रथा निकल जाती तो विधर्मियों के कुछ दांत खट्टे हो जाते।”²³

पंडित प्रतापनारायण मिश्र के हास्य और व्यंग्य बड़े हृदय स्पर्शी हैं। उन्होंने सामान्य से सामान्य विषय में हास्य और व्यंग्य को निकाला है। उनकी स्वच्छन्दता और बेतकल्लुफी उनके निबन्धों में अपूर्व सरसता का संचार करती है। ‘खुशामद’ शब्द को उन्होंने बड़े अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है—“खुशामद वह चीज है कि पत्थर को मोम बनाती है बैल को दुह के दूध निकालती है। विशेषतः दुनियादार स्वार्थपरायण, उदरम्भर लोगों के लिये इससे बढ़के कोई रसायन ही नहीं है। जिसे यह चतुराक्षरी मंत्र न आया उसकी चतुरता पर छार है, विद्या पर धिक्कार है और गुणों पर फटकार है। कोई कैसा ही सज्जन, सुशील, सहृदय, निर्दोष, न्यायशील, नम्रस्वभाव, उदार, सद्गुणागार, साक्षात् सत्ययुग का औतार क्यों न हो पर खुशामद न जानता हो तो इस जमाने में उसकी मिट्टी ख़ार है, मरने के पीछे चाहे भले ही ध्रुवजी के मुकुट का मणि बनाया जाय। और जो खुशामद से रीझता न हो उसे भी हम मनुष्य नहीं कह सकते।”²⁴

मिश्र जी के निबन्धों में कहावतों और मुहावरों का प्रयोग तो बहुतायत में देखा जा सकता है। उनके हास्य और व्यंग्य के ये उपकरण हैं। ग्रामीण शब्दों के प्रयोग भी उन्होंने अनूठे रूप में प्रस्तुत किये हैं, छै!छै!छै!!! की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—“खैर तो कान फटफटा के सुनो! बगले की तरह ध्यान लगा के सुनो समझो। कचटियावलिन जो है सो राम आसरे ते जा समय के बिखै रामलीला का आरम्भ होता है गोविंदाय नमोनमः वा समय के बिखै जो है सो गाँवन गाँवन नगरन नगरन के बिखै आनंद करि करि कै जै औ छै का आगमन होत है जो है सो गोविंदाय नमो नमः! कहौ कैसे? तो जा समै के बिखै रामचन्द्र कैसवारी निकरति हैं, गोविंदाय नमो नमः, वा समय के बिखै,

जहाँ कौन्यों रामादल कै वीर अथवा कौन्यौ तमासगीर के मुख से जो है सो यतरा निकरि गा गोविंदाय नमोनमः कि बोलौ राजा रामचन्द्र की जै।”²⁵

पंडित जी की शैली बड़ी स्वाभाविक, सुबोध, सरस और प्रभावोत्पादक है ये हास्य व्यंग्य और कहावतों तथा मुहावरों से युक्त एक नवीन अकृत्रिम शैली के जन्मदाता हैं। उनके हास्य व्यंग्य के निबन्धों के विषय में डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल का कहना है—“मिश्र जी को हास्य और व्यंग्यात्मक निबन्धों में अभूतपूर्व सफलता मिली है। मिश्र जी के से हास्य और व्यंग्यात्मक निबन्ध अभी तक कोई निबन्धकार नहीं लिख सका। मिश्र जी को निबन्धों के क्षेत्र में इतनी अधिक प्रसिद्धि इन्हीं निबन्धों के कारण मिली है वे अपने क्षेत्र के अकेले सम्राट हैं।”²⁶

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं—“आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषताएं हों।”²⁷

भारतेन्दु युग में आत्मव्यंजक निबन्ध लिखने वाले तीन लेखक हैं—भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट। परन्तु इस क्षेत्र में प्रतापनारायण मिश्र जी का अधिक महत्त्व है क्योंकि वे आत्मव्यंजक निबन्धों के वास्तविक प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार के निबन्धों के दो रूप हैं एक वो जिनमें चुलबुलापन दिखाई देता है तथा दूसरी श्रेणी वो कि जिनमें गाम्भीर्य अधिक है। चुलबुलेपन वाली श्रेणी में ‘आप’, ‘बात’, ‘भौ’, ‘नारी’, सोना आदि हैं तथा गाम्भीर्य वाले आत्मव्यंजक निबन्धों में धोखा, वृद्ध, खुशामद, दाँत, बालक, परीक्षा आदि हैं मिश्र जी ने केवल आत्मव्यंजक निबन्ध ही नहीं लिखे हैं, अपितु उन्होंने पाठकों से पूर्ण आत्मीयता भी दिखाई है ऐसा लगता है वे पाठकों से वार्तालाप कर रहे हैं जिसमें आत्मीयता, प्रेम, क्रोध, और आशा—निराशा की अभिव्यक्ति सहज भाव से देखी जा सकती है मिश्र जी के आत्मविस्तार की इसी प्रवृत्ति ने पाठकों के साथ, जन सामान्य के साथ एक सहज आत्मीयता उत्पन्न कर दी थी। यही आत्मीयता उनके निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता है।

मिश्र जी की लेखन शैली से प्रभावित होकर ही डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने अपनी पुस्तक हिन्दी की गद्य शैली का विकास में कहा है—“मिश्र जी की रचना प्रणाली

में एक विशेष चमत्कार मिलता है संभव है जिसे लोग विदग्ध-साहित्य कहते हैं उसका निर्माण उन्होंने न किया हो, परन्तु उनकी लेखनी के साथ साधारण समाज की रुचि थी। उनके लेखों में सर्वत्र व्यक्तित्व की छाप लगी मिलती है जैसा उनका स्वाभाव था वैसा ही उनका विषय-निर्वाचन भी था। इसके अतिरिक्त उनकी रचना में आत्मीयता का भाव अधिक मात्रा में रहता था। साधारण विषय को सरल रूप में रखकर वे सुनने वालों का विश्वास अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे।..... देहाती भाषा एवं मुहावरों को भी इन्होंने अपनी रचना में स्वच्छन्दता के साथ स्थान दिया है। इन प्रयोगों के कारण कहीं कहीं पर अशिष्टता और ग्रामीणता भी आ गई है पर मिश्री जी अपने उद्देश्य की पूर्ति के सामने इस पर कभी ध्यान ही नहीं देते थे।”²⁸

प्रतापनारायण के निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है व्यक्तित्व का निर्माण प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास से तो होता ही है, उसका सामाजिक परिवेश भी व्यक्तित्व निर्माण में प्रबल योग देता है वंश परम्परागत संस्कार भी भूलने की वस्तु नहीं है, इन सबसे बना हुआ मिश्र जी का व्यक्तित्व बड़ा ही विलक्षण है उनकी प्रतिभा द्विविध विषयों पर समान रूप से अधिकार व्यक्त करती है। दस वर्ष की अनवरत साधना जो उनके ‘ब्राह्मण’ के सम्पादन काल में सम्पन्न हुई थी और जिसमें निरंतर उनकी लेखनी चलती रही थी उनके अभ्यास की परिचायक है सामाजिक चेतना वंश परम्परा, ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं से परिचित होना आदि की पूर्ण अभिव्यक्ति उनके निबन्धों में दिखाई देती है। इस संदर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक भारतेन्दु युग में लिखते हैं—“भारतेन्दु युग का निबन्ध ‘इम्पर्सनल’ या तटस्थ रचना नहीं है। लेखक के व्यक्तित्व का उसमें महत्त्वपूर्ण स्थान है, फिर भी लेखक का ध्येय अपने बारे में बात करना नहीं है। उसका मन सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने में लगा हुआ है, इसलिये निबन्धों का विषय व्यक्तिगत न होकर समाजिक है।”²⁹

सांस्कृतिक निबन्ध :

पंडित प्रतापनारायण मिश्र के समय तक हिन्दू धर्म बहुत संकीर्ण हो चुका था। रुढ़िप्रियता, अन्धविश्वास आदि उत्कर्ष पर थे। अपने-अपने देवों की श्रेष्ठता सिद्ध करना ही उस समय के उपासकों का उद्देश्य बन गया था। आपसी विद्वेष के कारण

आध्यात्मिक विकास अवरुद्ध हो रहा था। ईसाई धर्म प्रचारक, हिन्दू धर्म की आडम्बर प्रियता, संकीर्णता फूट आदि की आलोचना कर भारतीय नव-युवकों को अपनी ओर मिलाने लगे थे और भारतीय नवयुवक भी उनके सम्पर्क से हिन्दू धर्म की बुराई करने में कविवद्ध थे। जाति पाति, छुआ छूत खान पान में परहेज आदि से नवयुवकों में विद्रोह की अग्नि भड़कने लगी थी। सूफियों के एकेश्वरवाद को भारतीय अद्वैत से जोड़ने लगे थे और उनके विरक्त एवं साधक पीरों के प्रति उन्हें श्रद्धा हो गई थी, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भारत में तेजी से हो रहा था और धार्मिक बन्धन ढीले होने लगे थे।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र 'हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान' के मात्रिक थे, इसीलिये उन्होंने ईसाई बनने वाले हिन्दुओं को फटकारने, विदेशी भाषा एवं संस्कृति से प्रेम करने वालों को मार्ग दिखाने और वादविवादियों को प्रेम का सुमार्ग सुझाने के प्रयास में कुछ सांस्कृतिक निबन्धों की रचना करके हिन्दी के निबन्ध साहित्य को सुदृढ़ किया। हिन्दू होकर भी वे हिन्दू धर्म की बुराइयों को स्वीकार करते हैं 'ब्राह्मणों के पाखण्डों और धूर्तताओं की पोल खोलते हैं और समाज द्रोही पुजारियों और धार्मिक नेताओं को लताड़ते हैं उनके विषय में डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल अपनी पुस्तक प्रतापनारायण मिश्र, जीवन और साहित्य में लिखते हैं—'धर्मिक निबन्धों में मतमतान्तरों, गोवध, पशुवध आदि का निषेध किया गया है तथा पाखण्डियों, बनावटी साधुसन्तों, आडम्बरपूर्ण व अन्धविश्वासी पुरोहितों, मुर्तिद्वेषियों, विभिन्न देवपासकों आदि की आलोचना की गयी है। इनमें एक प्रेमोपासना का उपदेश दिया गया है, और सभी मतों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है तत्कालीन धार्मिक संस्थाओं के प्रति भी मिश्र जी की बड़ी सहानुभूति थी पर उनके सभी कार्य उन्हें पसन्द नहीं थे। इन संस्थाओं के एकता विरोधी तत्त्वों की मिश्र जी भर्त्सना करते थे। मिश्र जी धार्मिक क्षेत्र में भी एकता और शान्ति स्थापित करने के पक्षपाती थे।'³⁰

मिश्र जी के सांस्कृतिक निबन्धों में कचहरी में शालिग्राम जी मतबालों की समझ, प्रेम एवं परोधर्म: गंगा जी, पादरी साहब का व्यर्थ यत्न, बलि पर विश्वास, कलि मुहँ केवल नाम प्रभाऊ, नास्तिक, मतवारी अवश्य नर्क जायँगे, धर्म और मत, मूर्ति

पूजकों को महौषध, देव मन्दिरों के प्रति हमारा कर्त्तव्य, हरि जैसे को तैसा है, दशावतार, प्रतिभापूजन के देशी हितैषी क्यों बनते हैं, पुराण समझने को समझ चाहिये, प्रतिष्ठा केवल प्रेमदेव की है, गोरक्षा, नवपन्थी और सनातनधारी, मुक्ति के भागी, धर्मोत्सव, रामलीला और मुहर्रम आदि प्रमुख सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित निबन्ध हैं प्रेम एवं परोधर्म निबन्ध में मिश्र जी समस्त प्राणियों को प्रेम और धर्म को इस प्रकार समझा रहे हैं—“अब जब हम अपने हृदय से पूछते हैं कि हमारा परम धर्म क्या है तब चाहे करोड़ों शंका क्यों न रोके, पर सबको ताल मार के हृदयस्थ कोई देवता यही कहेगा कि प्रेम ! प्रेम!! प्रेम!!!..... हमारा परमधर्म प्रेम ही स्वाभाविक धर्म प्रेम ही है।”³¹ पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अनेक निबन्ध लिखे हैं। भारत में विभिन्न मतों के लोग निवास करते हैं और उनके पर्व-त्योहार बड़े उल्लासपूर्वक मनाये जाते हैं — “श्री रामनौमी के भक्तों की बन आती है। व्रत केवल दुपहर तक का है, सो यों भी सब लोग दुपहर के इधर उधर खाते हैं इससे कष्ट कुछ नहीं और आनन्द का कहना ही है।”³²

भारतीय संस्कृति में भूमि को धरतीमाता के सम्बोधन से पुकारा जाता है मिश्र जी ने धरतीमाता की महत्ता को समझाते हुये कहा है—“गूलर के फल निर्वलों के लिये बड़ी भारी दवा है भला उनसे सूर्यनारायण कितनी सहायता पाते हैं, तथा उनके काटने से कितना धरतीमाता को दुख होता है इसको हम थोड़े से पत्र में कहाँ तक लिख सकते हैं? हमारे रिखियों ने जेठ में बट पूजन एवं अन्यान्य मांसों में दूसरे वृक्षों का पूजन कहा है।”³³

मिश्र जी का ज्ञान सांस्कृतिक विषयों के निबन्धों के माध्यम से हमारे सम्मुख आता है भारत और धरती माता के प्रति श्रद्धा और आदर के परिप्रेक्ष्य में जब उनकी लेखनी चलती है तो बड़ी सूक्ष्मता के साथ वह अपनी संस्कृति के प्रत्येक रूपों को अपने निबन्धों में प्रस्तुत करते हैं। एक निबन्ध में वो कहते हैं—“बंगाली ब्राह्मण अपने को कान्य कुब्जों का वंश बताते हैं इससे स्वयं सिद्ध है कि जो लोग आज भी कान्यकुब्ज देश ही के इधर उधर रहते हैं, और कान्यकुब्ज ही कहलाते हैं, वे अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि देश, भेष भाषा, आचार व्यवहार सभी कुछ बना है।..... पर हमारे

ठाकुर साहब के नामों में, चेहरे मोहरे में एक प्रकार की वीरता आज भी झलकती है। इससे हमें क्या एक विदेशी भी कह देगा कि यह बहादुर कौम है।³⁴

साहित्यिक निबन्ध :

पंडित प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी साहित्य में एक प्रतिष्ठित साहित्यकार की भूमिका में दिखाई देते हैं साथ ही वे धर्म और समाज सुधारक के रूप में भी जाने जाते हैं। उनके 'साहित्यिक' ने उन्हें सम्पादक बनाया और 'सम्पादक' ने धर्म और समाज सुधारक। उनके सम्बन्ध में डॉ० शान्तिप्रकाश वर्मा ने अपनी पुस्तक प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन में लिखा है—“धर्म और राजनीति, समाज और व्यक्ति की समस्याओं के मध्य उन्होंने साहित्य की अपेक्षा नहीं की, वरन् साहित्य साधना करते हुये उनको भी समेटा काव्य, नाटक तथा अनुवादों के साथ साथ उनके साहित्यिक लेखों का भी सृजन होता रहा था। भारतेन्दु काल से नागरी भाषा और लिपि के प्रचार का जो आन्दोलन चल रहा था, मिश्र जी ने उसे आगे बढ़ाया था, और उन दोनों के विकास के लिये ये लेख लिखे थे हिम्मत राखें एक दिन नागरी का प्रचार ही होगा, तत्त्व के तत्त्व में अंगेजीवाजों की भूल है, नागरी महिमा एक चीज आदि।”³⁵

हिन्दी के साहित्यिक स्वरूप को दृढ़ करने के लिये उन्होंने कुछ शास्त्रीय लेख भी लिखे हैं जैसे उरदू बीबी की पूँजी, खड़ी बोली का पद्य, आल्हा आह्वाद, एक सलाह, अपभ्रंश आदि। इसके अतिरिक्त कुछ लेख सामान्य विषयों पर भी लिखे हैं यथा तिल, काल, वृद्ध पौराणिक, गूढ़ार्थ, दो, धन्यवाद, अष्टकपारी दारिद्री जहाँ जाय तहाँ सिद्धि, पंचमरमेश्वर, पंचायत इत्यादि। मिश्र जी के लेखन की एक विशेषता है कि निबन्ध चाहे किसी भी श्रेणी का हो उसमें उनका विनोदी स्वभाव सभी प्रकार के लेखों में चाहे वे गम्भीर ही क्यों न हों, हास्य विनोद का समावेश रहता है। उनके सभी निबन्धों में वैयक्तिकता की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। दाँत, स्वार्थ, धर्म, सत्य, बात, छल, सिद्धान्तवाक्यावली, चिन्ता, आप, धोखा इत्यादि निबन्ध शुद्ध साहित्यिक निबन्धों की श्रेणी में आते हैं।

देवनागरी की साहित्यिक प्रगति के लिये मिश्र जी ने सदैव यथा सम्भव प्रयास किया और वास्तविक रूप में उन्होंने कष्टों के झेलते हुये भी अपनी लेखनी का जादू बिखेरते रहे। एक निबन्ध हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार ही होगा में वे कहते हैं—“जिस नागरी के लिये सहस्त्रों रिषि वंशज छटपटा रहे हैं। उसका उद्धार न हो, कहीं ऐसा भी हो सकता है? जब कि अल्प सामर्थी मनुष्य को अपने नाम की लाज होती है तो क्या उस सर्वशक्तिमान को अपनी दीन बंधुता का पक्ष ना होगा ? क्यों नहीं। हमारे देश भक्तों को श्रम, साहस और विश्वास चाहिए, हम निश्चयपूर्वक कहते हैं यदि हमारे आर्य भाई अधीर न होंगे तो एक दिन अवश्य होगा कि भारतवर्ष भर में नागरी देवी अखंड राज्य करेंगी और उर्दू देवी अपने सगों के घर में बैठी कोदों दरैंगी!..... विशेषतः वे सज्जन जिनको विश्वास है कि हमारा धर्म कर्म, संसार परमार्थ, मान प्रतिष्ठा, जीविका, सब कुछ हिन्दी ही के साथ है।”³⁶

मिश्र जी के ऊपर तत्कालीन साहित्यिक स्थिति का गहरा प्रभाव पड़ा है। हिन्दी की गिरी हुई स्थिति से मिश्र जी बहुत चिन्तित थे। उन्होंने हिन्दी प्रचार में तन, मन, धन की बाज़ी लगा दी उनका कहना था — “हिन्दी का पूर्ण प्रचार हुये बिना हिन्दुओं का उद्धार असम्भव है। हिन्दुओं के भलीभाँति सुधरे बिना हिन्दुस्तान का सुधार असम्भव है।”³⁷

देश की उन्नति के लिये वह हिन्दी की उन्नति आवश्यक समझते थे जनता को हिन्दी का महत्त्व समझाते हुये वे कहते हैं—

“देव नागरिहि गरे लगाओ, पैहो मोद महान।

रहो निशंक प्रेम मद माते श्री परताप समान।।”³⁸

मिश्र जी के सभी साहित्यिक निबन्ध व्यक्ति परक हैं। उनमें उनकी अपनी शैली है रोचकता की दृष्टि से मिश्र जी के सभी निबन्ध अद्वितीय हैं। उनके निबन्धों में विचारों की गहनता न होकर व्यक्तित्व की प्रबलता है साहित्यिक निबन्धों में देश प्रेम की झलक भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है उनके ‘सत्य’ निबन्ध का एक अंश उनके साहित्यिक स्वरूप की झलक प्रस्तुत करता है—“सतयुग में महाराज हरिश्चन्द्र ने सत्य का बड़ा पालन किया था, उन्होंने क्या भुना लिया था? राज्य गया, घर छूटा, स्त्री

बिकी, पुत्र बिछड़ा, आप सारी सलतनत छोड़ के शमशान में वरसों चौकीदारी करते रहे। इसके बदले में मिला क्या? कीर्ति! जो न खाने के काम की, न पहिनने के काम की। और इसके विरुद्ध झूठों के सौभाग्योदय का एक नहीं सहस्र उदाहरण बतला क्या कहिए दिखला दें। पर हमें सत्यानाशी सत्य का हठ करके नाहक के झंझट में पड़ना मंजूर नहीं है..... कैसा कुछ धन कैसी कुछ प्रतिष्ठा, कैसे—2 सामर्थ्यवानों की दया दृष्टि लाभ की है तब आँखें खुल जायँगी कि असत्य में क्या मजा है और सत्य में क्या फल है।³⁹

शब्दों और विषयों पर मिश्रजी की पकड़ का अनुमान उनके इस निबन्ध से भलीभाँति लगाया जा सकता है—“जो व्यक्ति जैसा होता है उसके काम भी वैसे ही होते हैं कोई पुस्तक ले बैठिये, उसके आशय देख के बनाने वाले के स्वभाव का बहुत कुछ परिचय हो जायेगा।..... दो दिन खाने को न मिले तो अच्छे अच्छों को जीना कठिन हो जाय।”⁴⁰

मिश्र जी उपदेशात्मक शैली में अपने निबन्धों की सार्थकता सिद्ध कर देते हैं समाज में व्याप्त साधारण से विषय को भी साहित्यिक रूप से सुद्रण कर लेते हैं। उनके इस निबन्ध में यह बात भलीभाँति देखी जा सकती है—“कौन नहीं जानता कि अष्ट कारी उस मनुष्य को कहते हैं। जो बेकाम बैठना कभी न पसंद करता हो और कैसा ही उल्टा सीधा, छोटा मोटा, सहज कठिन हो, समझे बिन समझे, निर्भय निस्संकोच निर्लज भाव से मुड़ियाय लेता हो। अपनी बुद्धि तथा बल से न हो सके तो चाहें जिस श्रेणी के मनुष्य से सहायता मिलती हो उससे मित्र बन के, चेला बन के, सेवा करके प्राप्त करने में न चूकता हो।..... क्योंकि दरिद्र की पराकाष्ठा में समझ बढ़ती है – Necessity is the mother of invention प्रसिद्ध है”⁴¹

पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने साहित्यिक रूप से अपनी परम्पराओं को सुद्रण करने का प्रयत्न किया है, उर्दू अथवा अंग्रेजी हस्तक्षेप को आवश्यक अतिक्रमण की दृष्टि से देखते हैं। पौराणिक गूढ़ार्थ में इसे भलीभाँति समझा जा सकता है—“अंग्रेजी ढंग की शिक्षा पाने वालों में न जाने यह दोष क्यों हो जाता है कि जो बातें सहज में नहीं समझ पड़ती उन्हें मिथ्या समझ बैठते हैं। पुराण यदि सचमुच दूषित हों तो भी

हमारे आदरणीय पूर्वजों के बनाये हुये हैं अतः माननीय हैं कुछ न हो तो भी उनके द्वारा संस्कृत के अनेकानेक मुहाविरे मालूम होते हैं..... पुराणों की कोई बात मिथ्या नहीं है वरंच जहाँ-2 मिथ्या की भ्रान्ति होती है वहाँ गूढ़ार्थ भरा हुआ है, जिसे अंगीकार किये बिना भारत का कल्याण नहीं हो सकता।”⁴²

1883 ई0 से मिश्र जी निरन्तर अपने पत्र ‘ब्राह्मण’ के माध्यम से विभिन्न विषयों पर निबन्ध एवं लेख लिखकर हिन्दी साहित्य को एक सुद्रण आधार देने में प्रयत्नशील रहे।

ऐतिहासिक निबन्ध :

भारतेन्दु युग के यशस्वी, परिहास शील निश्छल, निश्चिन्त निबन्धकार, हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान के समर्थक पं० प्रतापनारायण मिश्र ने ऐतिहासिकता की दृष्टि से भी निबन्धों की रचना को एक स्वरूप प्रदान किया है। भारतेन्दु से उन्हें साहित्यिक प्रेरणा मिली और उनके प्रति इनकी अपार श्रद्धा अजन्म सुस्थिर रही। मिश्रजी के निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है उनकी दृष्टि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विचार मनन करती दिखाई देती है भारतवर्ष में गंगाजी का बहुत ऐतिहासिक महत्त्व है और उस पर अपनी लेखनी का उपयोग करते हुये मिश्रजी अपने एक निबन्ध में लिखते हैं—“इन तीन अक्षरों से हमारे भारत को कितना संबंध है, यह सोचने बैठते हैं तो हमारा मन हिमालय से भी लंबा चौड़ा और विचारशक्ति तो गंगा नहीं बरंच महासागर को लज्जित करने वाली हो जाती है।.... ऐसा भी कोई काम है जिसमें गंगाजी का कुछ न कुछ प्रत्यच्छ या प्रच्छन्न लगाव न हो ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं जहाँ गंगा न मानी जाती हो। ग्रंथ के ग्रंथ गंगा जी की महिमा से भरे पड़े क्यों न कहिये गंगा हमारी एक महत्तम प्रेमाधार हैं। धन्य गंगे! सर्वदेवमयी गंगा जिन्होंने कहा है निहायत ठीक कहा है श्री हरिपद, नख चन्द्रकांत—मनि—द्रवित सुधारस।”⁴³

मिश्र जी अंग्रेजी के कुचक्रों से भलीभाँति परिचित थे और किसी भी विदेशी शक्ति के भारत में घुसपैठ को वे भारतवासियों के हित में अच्छा नहीं मानते थे। समकालीन परिदृश्य में वो रूस को लक्ष्य बनाकर हास्य व्यंग्य मिश्रित एक निबन्ध ‘रूस और मूस’ में कहते हैं—“पहिले साहब सैकड़ों कोस की दूरी से आने की धमकी मात्र

दिखला रहे हैं पर दूसरे हज़रत घर का भेदिया लंकादाह' के उदाहरण बन रहे हैं वह आर्यों की दृष्टि में म्लेक्ष, मुसलमानों की समझ में काफिर और अँगरेजों की जान में ज़ालिम विख्यात हो रहे हैं।..... फौज रूसियों की भुज्ज जिनकी हाथ 2 भर की मुच्छ..... वह सामने होके लड़ेंगे तो कदाचित् हम भी मारेंगे और मरेंगे। यह तो कहने को होगा—'यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।..... पर इनके सुलच्छन देख 2 के नींद भूख उड़ी जाती है, कि रहें हमारे घर में, खायें हमारे यहाँ और हमारा ही सर्वस्व तहस नहस करने वांटियर बाबू हमको बचा लेंगे पर इसे परमेश्वर के सिवा कोई बचाने वाला नहीं।'''⁴⁴

पंडित जी ने प्रह्लाद के पौणिक महत्त्व को सामने रख कर तत्कालीन भारत में अंग्रेजों के प्रभाव को समाप्त करने हेतु 'प्रह्लाद' (पुराण समझने के लिये समझ चाहिये) निबन्ध की रचना की। अंग्रेजियत के विचारों को भारत की संस्कृति पर कुठाराघात के रूप में देखते हैं। उक्त निबन्ध में वे कहते हैं—“सुसभ्य यूरोपीय डॉक्टर राजों ने बड़े परिश्रम और अनुभव के उपरान्त इस बात को आज जाना है किन्तु हम हाफ सिविलाइज़्ड इंडियन पोपों के बनवासी फोरफादर्स अर्थात् पुराणाचार्य सहस्रों वर्ष पहले से जानते थे।..... 1857 वाले उपद्रव के इधर उधर गोरे लोगों का भय और प्रीति बहुतों के हृदय में विशेष रूप से खचित हो रही थी। इस अवसर में जिस माता के चित्त में दशा वाले इंग्लिस्तानी का रूप कुछ काल के लिये बस गया था वैसे ही रूप की संतति उत्पन्न हो गयी।”⁴⁵

मिश्र जी ने ऐतिहासिक दृष्टि कोण से परतन्त्र भारत के दुख दर्द को भलीभाँति समझा है और यथा सम्भव प्रयत्न किया है कि अंग्रेजों के कुचक्रों से प्रत्येक भारतीय को बचना चाहिये। अंग्रेजों ने भारत वासियों को लालच और प्रलोभनों के आधार पर अपनी संस्कृति के निकट लाने और भारतीय संस्कृति से विरत करने के कुचक्र रचे थे भारतवासियों के विलायत प्रेम को आधार बनाकर उन्होंने विलायत यात्रा नामक निबन्ध में लिखा है—“न जाने क्या दुर्दशा आई है कि लोगों को सब विलायती पदार्थ ही अच्छे, लगते हैं कदाचित् इसका कारण पश्चिमीय शिक्षा हो। लोग बाल्यावस्था में ही उन स्कूलों में भेज दिये जाते हैं जहाँ वहीं अंग्रेजी गिटपिट से काम पड़े।..... मुसलमानों के

अत्याचार से तो मंदिर भग्न हुये, अब तुम्हारे विलायत आदि जाने के व्यय में अकेले तीर्थ ही क्या तुम्हारे सब ग्रहादि प्राण रहित देह के समान हो जायेंगे। जिस दिन तुम विलायत में जाकर अपने आचार व्यवहार फैलाओगे, और जैसे अन्य देशियों की रीति नीति तुम सीखते हो वैसे दूसरों को भी अपनी नीति सिखाओगे, उस दिन तुम्हें, कोई बुरा न कहेगा और कोई जाति भ्रष्ट न कहेगा।”⁴⁶

मिश्र जी सामाजिक अव्यवस्थाओं से चिन्तित दिखाई पड़ते हैं अंग्रेजी राज के अत्याचार भारत के विकास में बाधा उत्पन्न कर रहे थे। उनके एक निबन्ध ‘वाजिद अलीशाह’ को भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जा सकता है जिसमें वे लिखते हैं कि अंग्रेजों के राज की अपेक्षा नबाबों के राज को भारतीयों के हित में सही मानते हैं। वे इस निबन्ध में लिखते हैं—“हाय! आज हमी नहीं रो रहे हैं, हमारी लेखनी का भी हृदय विदीर्ण हो रहा है! हंसी मत समझो मारे दुख के उन्माद हो रहा है, इससे रक्त काला पड़ गया है और आँसुओं के साथ नेत्र द्वारा वहा जाता है।..... हाय शाह वाजिद अली! हा सुलताने आलम! हा अखतर! हाय सूबे अवध के कन्हैया! तुम हमारा शासन न करते थे, तुम हमारी जाति के थे तो भी हमारा बादशाह कलकत्ते में बैठा है, स्मरण हमारे लिये संतोष जनक था। तुम्हारा अंतःकरण हमसे ममता रखता था, इसमें कोई संदेह नहीं।”⁴⁷ मिश्र जी सदैव संस्कृति और ऐतिहासिक विषयों के अति निकट रहे हैं नाटकों के ऐतिहासिक विकास से सम्बन्धित उनके ‘कानपुर और नाटक’ नामक निबन्ध से उनके ऐतिहासिक दृष्टिकोण का पता चलता है—“अनुमान 12 वर्ष हुये कि यहाँ के हिन्दुस्तानी भाई यह भी न जानते थे कि नाटक किस चिड़िया का नाम है। पहिले पहल श्रीयुत पंडितवर राम नारायण त्रिपाठी (प्रभाकर महोदय) ने हमारे प्रेमाचार्य का बनाया हुवा ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ और ‘वैदिकी हिंसा’ खेला था! यह बात कानपुर के इतिहास में स्मरणीय रहेगी कि नाटक के अभिनय के मूलारोपक यही प्रभाकर जी हैं, और श्रीयुत बिहारीलाल जी परोपकारी उनके बड़े भारी सहायक हैं!..... हां 85 के सन् में ‘भारत दुर्दशा’ खेली गई और भारत एनटरटेनमेन्ट क्लब स्थापित हुवा जिसके उद्योग से दो बेर ‘अंजामें बदी’ नाटक (फारसी वालो के ढंग का नाटकभास) खेला गया! कुछ आशा की गई थी कि कुछ चल निकलेंगे, पर थोड़े ही दिन में मेम्बरों के परस्पर फूट जाने से दो क्लब हो गये।”⁴⁸

विविध निबन्ध :

पंडित प्रतापनारायण मिश्र अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू के साथ-साथ संस्कृत बंगला और फारसी के भी विद्वान थे। अपने उग्र और विनोद प्रिय स्वभाव के कारण ये किसी को खरी खोटी सुनाने में नहीं चुकते थे। अपने निराडम्बर और सरल स्वभाव के कारण ही ये अपने वैयक्तिक निबन्धों द्वारा पाठकों से पूर्ण आत्मीयता ग्रहण कर लेते हैं। मिश्र जी समाज के प्रत्येक स्वरूप को बड़ी सुक्ष्मता से अनुभव करते हैं और यही कारण है कि उनकी लेखनी से कोई विषय ओझल नहीं हो पाया है और अधिकाधिक विषयों पर उनकी रचनायें पाठकों को एक सन्देश देती रही हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक हिन्दी निबन्ध का विकास में लिखा है—“इनकी आडम्बर रहित शैली में विचित्र विलक्षणता पाई जाती है, जो उस युग के निबन्धकारों में ही नहीं, वरन् हिन्दी के निबन्ध में अन्यत्र देखने में नहीं आयी।..... इनके निबन्धों में निष्कपट विचार पाठकों के हृदय पर सीधा प्रहार करते हैं हिन्दी में और भी निबन्धकार हुये हैं, पर ऐसे स्पष्ट चित्ताकर्षक विनोद प्रधान, उत्कृष्ट लघु निबन्ध और कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुये।”⁴⁹

मिश्र जी ने छोटे छोटे विषयों पर अनेक निबन्ध लिखे हैं। जैसे —बात, वृद्ध, धोखा, दाँत, आप, भौं, होली, बेगार, रिश्वत, गुप्त ठक, मुच्छ, मानस रहस्य, जवानी की सैर, हमारा कर्त्तव्य, शिव मूर्ति, दशहरा, मनोयोग आदि। मनोरंजक, व्यवहारिक तथा उपयोगी निबन्धों के अतिरिक्त उन्होंने ओजस्वी निबन्ध भी लिखे हैं यथा देशी कपड़ा, कांग्रेस की जय, विस्फोटक, बस बस होश में आइये, दया पात्र जीव, समझने की बात धरतीमाता, पंचपरमेश्वर, स्वतंत्रता, रसिक समाज इत्यादि। देश प्रेम के साथ-साथ समाज सेवा भी उनका ध्येय था। एक सच्चे कलाकार की भाँति ये निर्भीक तथा राजनीतिक निबन्धों के माध्यम से उनका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। मिश्रजी के निबन्ध लेखन में भाषा की शक्ति और भावों की मार्मिकता पाई जाती है। यही कारण है कि सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक विषयों के अतिरिक्त प्रचुरमात्रा में हास्य व्यंग्यात्मक, उपदेशात्मक तथा अन्य विविध विषयों पर निबन्ध रचना की है उनके निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप तथा अलमस्ती दिखाई पड़ती है। ‘धोखा’ नामक निबन्ध

के इस उद्धरण से उनकी विषय विविधता का अनुभव होता है—“इन दो अक्षरों में भी न जाने कितनी शक्ति है कि इनकी लपेट से बचना यदि असम्भव न हो तो भी महाकठिन अवश्य है जबकि भगवान रामचन्द्र ने मारीच राक्षस को स्वर्ण-मृग समझ लिया था तो हमारी आपकी क्या सामर्थ्य है जो धोखा न खाय।... ईश्वर भी धोखे से अलग नहीं है तो अयुक्त न होगा क्योंकि ऐसी दशा यदि वह धोखा खाता नहीं तो धोखे से काम अवश्य लेता है।”⁵⁰

प्रतापनारायण मिश्र का ध्येय जन साधारण के बीच सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जागृति उत्पन्न करना ही था। इसीलिये मानवीय जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष को उन्होंने निबन्धों में उकेरने का प्रयत्न किया है। उपदेशात्मक ढंग से लिखा गया धोखा निबन्ध में वे आगे लिखते हैं—“घी बड़ा पुष्टिकारक होता है, पर दो सेर पी लीजिए तो उठने बैठने की शक्ति न रहेगी। और संखिया, सींगिया आदि प्रत्यक्ष विष हैं, किन्तु उचित रीति से शोध कर सेवन कीजिए तो बहुत से रोग दोख दूर हो जायेंगे।”⁵¹

पंडित जी अपने ज्ञान के आधार पर शब्दों के मिश्रण और उसके सदुपयोग से गूढ़ से गूढ़ शब्द के भी विभिन्न रूप निकाल लेते थे, यह उनके स्वतंत्रता नामक निबन्ध से प्रतीत होता है—“कोई किसी के बानने से स्वतन्त्र नहीं बन सकता जब तक वह स्वयं उसके योग्य न बने। मनुष्य अपने निर्वाहार्थ काम करने में भले ही स्वतन्त्र हो पर जबकि कामों का फल भोगने में स्वतंत्र नहीं है, उसकी इच्छा के विरुद्ध ईश्वरीय नियमानुसार रोग वियोगादि उसे आ ही दबाते हैं तो फिर स्वतंत्रता कहाँ रही। सिद्धान्त यह कि जिसके ऊपर किसी प्रबलतर व्यक्ति का प्रभाव पड़ सकता है वह स्वतन्त्र कदापि नहीं कहा जा सकता और ईश्वर या सृष्टि का नियम सब के ऊपर प्राबल्य जमाये हुये है अतः सचमुच की स्वतंत्रता किसी को नहीं है।”⁵²

मिश्र जी सामाजिक उन्नति के परिप्रेक्ष्य में अपने पत्र ‘ब्राह्मण’ के माध्यम से हर सम्भव प्रयास में रत रहे। एक निबन्ध ‘देखिये तो’ में वे पाठकों से कहते हैं—“जिन्होंने वरसों स्कूल में पढ़कर बड़े-2 पद प्राप्त किये हैं वे भी बहुधा नहीं जानते कि हमारे देश में कब, किस समय कौन-2 उत्साही, वीर पतिप्राणा स्त्रीरत्न एवं रससिद्ध

ककीवर हुये हैं अथवा हैं और इस प्रकार का ज्ञान न होने से देश में मनुष्य जीवन को सुशोभित करने वाले सद्गुणों का पूर्णरूप से प्रचार होना दुर्घट है। इस अभाव के दूर करने की मनसा से देश भक्तों और विद्यारसिकों की सेवा में हमारा सविनय निवेदन है कि जो सज्जन भूतकाल के तथा वर्तमान समय के वीर पुरुषों पतिव्रता स्त्रियों अथवा कवियों का वृत्तांत जानते हों वह कृपा करके हमारे पास लिख भेजें तो भारतवर्ष का बड़ा उपकार होना संभावित है।⁵³

सामाजिक चेतना के लिये चिन्तित मिश्र जी अपने एक अन्य निबन्ध में इस प्रकार पाठकों को चेताने का कार्य कर रहे हैं—“संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है जो मनुष्य न कर सके। लोग कहते हैं पत्थर पर कोई वस्तु नहीं जम सकती। पर हमारी समझ में निसन्देह जम सकती है यदि कोई निरंतर बीज और जल छोड़ता रहे तो कुछ दिन में जल के योग से वह बीज सड़के मिट्टी हो जायगा। बहुतेरे आलसियों का मत कि है कि हवै है सोड़ जो रामरचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै शाखा ।। हम कहते हैं। कि इस बचन का वे अर्थ ही नहीं समझते। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर ने जिस पदार्थ में जैसी शक्ति रक्खी है उसके विपरीत न होगा। इससे प्रत्येक वस्तु का स्वाभाविक गुण जानने का यत्न करना चाहिए।”⁵⁴

निष्कर्ष :

पंडित प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि ये भारतेन्दु युग के यशस्वी, परिहासशील, निश्छल, हिन्दी समर्थक और निश्चिन्त निबन्धकार थे। उन्होंने ‘ब्राह्मण’ मासिक पत्र का कुशलता पूर्वक सम्पादन किया और उसके माध्यम से हिन्दी साहित्य की सेवा की। ये हिन्दी, उर्दू के साथ साथ संस्कृत, बंगला और फारसी के भी विद्वान थे। बड़ी से बड़ी बात को भी वह हास्य व्यंग्य में ढालकर अपनी बात पूरी कर लेते थे। उनकी आडम्बर रहित शैली में विचित्र विलक्षणता पायी जाती है उनके निबन्धों में निष्कपट विचार पाठकों के हृदय पर सीधा प्रभाव डालते हैं। मिश्र जी ने विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक निबन्ध लिखे। उनके निबन्धों में प्रान्तीय भाषा के भी दर्शन होते हैं। उनके निबन्धों के चार संग्रह उपलब्ध हैं। ‘निबन्ध नवनीत’, ‘प्रताप पीयूष’, ‘प्रताप समीक्षा’,

और प्रतापनारायण ग्रंथावली। मिश्र जी के निबन्धों के विषय हर प्रकार के होते थे जैसे — 'बात', 'वृद्ध', 'धोखा', 'दांत', 'आप', 'भौं' होली, बेगार, रिश्वत, गुप्त ठग, पुच्छ, धर्मगंगा जी, मानस रहस्य, जवानी की सैर, हमारा कत्तव्य, शिवमूर्ति, दशहरा, मनोयोग आदि। ये देश प्रेम के साथ-साथ समाज सेवा भी बड़े मन से करते थे। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने लोक भाषा अपनायी किन्तु उनकी भाषा में पंडिताऊपन और पूर्वीपन के जो दोष प्रकट हुये हैं उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। व्याकरण सम्बन्धी भूल तो प्रायः भारतेन्दु युग के सभी लेखकों में रही है। उनकी शैली में सामयिक भाषा के गुण-अवगुण होते हुये भी आत्मीयता और रोचकता का आकर्षण भुलाया नहीं जा सकता है। उनका ध्येय जन साधारण के बीच सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जागृति उत्पन्न करना ही था। मिश्र जी ने सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, तथा विविध विषयों पर अनेक निबन्धों की रचना की।

सन्दर्भ :

1. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय: आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 113
2. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 476
3. डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल : प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ० 312
4. डॉ० रामविलास शर्मा: भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ० 104
5. डॉ० शान्ति प्रकाश वर्मा : प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन, पृ० 116
6. विजयशंकर मल्ल: प्रतापनारायण-ग्रंथावली, प्रतिष्ठा केवल प्रेमदेव की है, पृ० 397
7. प्रो० जयनाथ नलिन : हिन्दी निबन्धकार (1954), पृ० 93
8. डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल: प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, पृ० 183
9. डॉ० रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग (1956), पृ० 89
10. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 139
11. विजयशंकर मल्ल: प्रतापनारायण ग्रंथावली, दिन थोड़ा है दूर जाना है यहाँ ठहरूँ तो मेरा निवाह नहीं, पृ० 106-7
12. वही, आप, पृ० 116
13. डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल: प्रतापनारायण मिश्र: जीवन और साहित्य, पृ० 324
14. विजयशंकर मल्ल: प्रतापनारायण-ग्रंथावली, संलग्नता, पृ० 498
15. वही, दुनियाँ अपने मतलब की है, पृ० 89
16. डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा: हिन्दी गद्य शैली का विकास, पृ० 62

17. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' . हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, (1997 वि०), पृ० 662-63
18. विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, 'पक्ष', पृ० 137
19. वही, 'पतिव्रता' पृ० 134
20. डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र, जीवन और साहित्य, पृ० 328
21. विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, रक्ताश्रु, पृ० 58
22. वही, गुप्त ठग, पृ० 13
23. वही, फूटी सहै आजी न सहै, पृ० 30
24. वही, , खुशामद, पृ० 159
25. वही, छै। छै। छै।।।, पृ० 324
26. डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, पृ० 324
27. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 505
28. डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा . हिन्दी की गद्य शैली का विकास, पृ० 62-63
29. डॉ० रामविलास शर्मा . भारतेन्दु युग (1956 ई०), पृ० 108-109
30. डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, पृ० 186-187
31. विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, प्रेम एव परोधर्म, पृ० 74
32. वही, किस पर्व मे किस पर आफत आती है, पृ० 174
33. वही, .. धरतीमाता की पूजा, पृ० 186
34. वही, .. ऊँच निवास नीच करतूती, पृ० 110
35. डॉ० शान्ति प्रकाश वर्मा प्रतापनारायण मिश्र को हिन्दी गद्य की देन, पृ० 69
36. विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, हिम्मत राखो एक दिन नागरी का प्रचार हो होगा, पृ० 39
37. वही, असम्भव है, पृ० 304
38. नारायण प्रसाद ओझा प्रतापलहरी (1949 ई०), पृ० 140
39. विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, 'सत्य', पृ० 260
40. वही, ससार की अद्भुत गति है, पृ० 177
41. विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, अष्ट कपारी दारिद्री जहा जाय तहं सिद्धि, पृ० 248-249
42. वही, पौणिक गूढार्थ, पृ० 234-235
43. वही, गंगाजी, पृ० 78-79
44. वही, रूस और मूस, पृ० 67-68
45. वही, प्रह्लाद, पृ० 388
46. वही, विलायत मात्रा, पृ० 423-424
47. वही, वाजिद अलीशाह, पृ० 432-433
48. वही, कानपुर और नाटक, पृ० 142-143



49. ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 123
50. विजयशंकर मल्लः प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, धोखा, पृ० 418
51. वही, धोखा, पृ० 421
52. वही, स्वतंत्रता, पृ० 314
53. वही, देखिये तो, पृ० 305
54. वही, ,, बेकाम न बैठ कुछ किया कर, पृ० 32



सप्तम—अध्याय

**बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
के निबन्धों का समीक्षात्मक
अध्ययन**

सप्तम अध्याय

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' प्रसिद्ध सामाजिक निबन्धकार और भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्य सेवी थे। वे भारतेन्दु से अत्यन्त प्रभावित थे और उनके अनुसरण पर उन्होंने भी साहित्य की आजन्म सेवा की है। ये अलंकार शैली के प्रकांड पंडित थे, तथा शब्द चयन पर उनकी विशेष दृष्टि रहती थी। उन्होंने गद्य में कोमल पद रचना का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। उनके निबन्धों में उर्दू के शब्द भी हैं और क्लिष्ट संस्कृत के शब्द भी हैं। भारतेन्दु की सामाजिक प्रवृत्तियों की छाप उनके निबन्धों पर भी दिखाई देती है। प्रेमघन के सम्बन्ध में किशोरीलाल गुप्त ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि में लिखा है—“भारतेन्दु जी के सम्पर्क में प्रेमघन जी सं० 1929 में आये। यह सम्पर्क घनिष्टता में बदल गया और साहित्य की सरिता में निरंतर अवगाहन होने लगा। जिस तरह भारतेन्दु ने तदीय समाज आदि संस्थाएँ स्थापित की थी, उसी प्रकार प्रेमघन जी ने भी सं० 1930 में मिरजापुर में एक 'सद्धर्म सभा' स्थापित की थी, फिर 1931 में रसिक समाज की स्थापना की थी जिसमें साहित्य चर्चा हुआ करती थी। जिस प्रकार भारतेन्दु ने सं० 1925 में कविवचन सुधा, 1930 में हरिश्चन्द्र मैगजीन और 1931 में बालाबोधिनी पत्रिकाये निकाली थी, उसी प्रकार साहित्य सेवा को ध्यान में रखकर प्रेमघन जी ने भी सं० 1938 में आनन्दकांदबिन नामक मासिक पत्रिका निकाली थी। और इसी नाम का प्रेस चलाया था। पत्रिका आठ नौ वर्ष चलकर बंद हो गई, तदनंतर 1949 'नागरी नीरद' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला।¹

प्रेमघन जी के निबन्धों में काव्यात्मकता का सन्निवेश रहता है। उन्होंने अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा के मोह में पड़कर भाव और भाषा को क्लिष्ट और अस्पष्ट सा कर दिया है। यह भारतेन्दु युग में विचारात्मक निबन्धों के जनक कहे जा

सकते हैं। उनके निबन्धों में तत्कालीन राजनीतिक प्रमुख घटनाओं तथा आंदोलनों की चर्चा स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। धर्म, स्वदेश भावना, अंग्रेजी और आधुनिक सभ्यता के उस युग के विषयों पर भी उनके निबन्ध देखे जा सकते हैं। उनके विषय में डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने अपनी पुस्तक हिन्दी गद्य शैली का विकास में लिखा है—“प्रेमघन’ ने विचारात्मक, आलोचनात्मक भावात्मक, तथा वर्णनात्मक निबन्ध लिखे। भारतेन्दु युग में विचारात्मक निबन्धों का श्रीगणेश चौधरी पं० बदरीनारायण प्रेमघन द्वारा हुआ। ‘आनन्द कादम्बिनी’ तो इनकी मासिक पत्रिका थी और ‘नागरी नीरद’ साप्ताहिक। इन दोनों पत्रों में प्रेमघन जी की स्वतन्त्र शैली रंच बस गई थी इसके अतिरिक्त कभी-कभी अवसर पड़ने पर उन्होंने आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं। इन्हीं लेखों से हम आलोचनात्मक साहित्य का एक प्रकार से आरम्भ कह सकते हैं।”² ‘बनारस का बुढ़वा मंगल, दिल्ली दरबार में मित्र मंडली के यार’ आदि उनके वैयक्तिक निबन्धों की श्रेणी में आते हैं। उनके निबन्धों में विचारों की प्रधानता मिलती है। उन्होंने विचारात्मक आलोचनात्मक, वैयक्तिक निबन्धों का हिन्दी में सूत्रपात किया और हिन्दी निबन्ध साहित्य के भण्डार में वृद्धि की। उनके विषय में एक स्थान पर प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय ने लिखा है—“व्यक्तिगत निबन्धों से परिचित हो जाने पर हमें यह कहने में संकोच न होना चाहिये कि जिस प्रकार अंग्रेजी साहित्य में मॉटेन निबन्ध लेखन कला का जन्मदाता माना जाता है, उसी प्रकार प्रेमघन भी हिन्दी के मॉटेन कहे जा सकते हैं।”³

प्रेमघन जी की रुचि सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों की और विशेष रूप से देखी जा सकती है। ये कांग्रेस दल से प्रभावित थे और ‘नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा’ नामक निबन्ध में सूरत कांग्रेस में नेताओं के आपसी झगड़ों का आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचन किया है। उन्होंने बनारस का बुढ़वा मंगल नामक निबन्ध में महादेव के मेले का सजीव वर्णन किया है। इस मेले का एक ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। इस ऐतिहासिक घटना में बंगभंग के प्रसंग को लेकर अंग्रेजी शासक द्वारा उस समय कहा गया था कि बंगाल जैसा बड़ा प्रान्त जिसकी सुव्यवस्था एक लाट द्वारा नहीं हो पाती। इसलिये इसे दो भागों में बाँटा जाना आवश्यक है। सन् 1901 से ही ये प्रस्ताव चल

रहा था और 1905 में 'लार्ड कर्जन ने इसे विभाजित किया भारत में इस पर अनेक आंदोलन हुये। उपर्युक्त निबन्ध में उनके विचार इस प्रकार हैं—“चार दिनों में अपनी अनेक आवश्यकताओं की पुकार कर कुछ भी फल न पाकर बंग भंग विचार के संग अनेक सभा समितियों द्वारा यथाविहित घोर प्रतिवाद और प्रार्थना कर इस सामान्य बात पर भी गवर्नमेंट को अपनी दुहाई का तिरस्कार करते देख, जिसमें किसी नवीन अधिकार वा सुविधा की प्राप्ति न थी वरंच एक नवीन कठिनाई और जातीय अवनति की उटल आशा थी, बंगीय प्रजा ने अति अनमनी और अधैर्य हो रूठकर स्वदेशी स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार का व्रत धारण किया।”⁴

श्री बदरीनारायण चौधरी ने ‘भारतीय प्रजा के दो दल’ नामक निबन्ध में हिन्दू एकता पर बल दिया है। उसमें विचार किया गया है कि मुसलमान हिन्दुओं से अलग हो कर राजनीतिक दृष्टि से हानि उठाते हैं और अंग्रेजी शसक फूट डालो राज करो की नीति कैसे अपनाते हैं और भारतीय प्रजा को कष्ट सहने पड़ते हैं। वे विचार करते हैं कि उनके ऐक्यभावना तभी स्थापित हो सकती है जब यह दोनों एक दूसरे की धार्मिक तथा राजनीतिक सुविधा असुविधा पर दृष्टि रखें और उदारता का व्यवहार रखें। उपर्युक्त निबन्ध के अन्त में प्रेमघन निवेदन करते हैं—“निदान अब वह समय है कि भारत की प्रजा में दो दल अथवा कई दल क्यों न हों, परन्तु उन्हें परस्पर का द्रोह और विरोध भूल करते हुये ऐक्य उत्पन्न कर आपस में मिल कर देश के हित साधन में संलग्न होना चाहिये। क्योंकि इसी कारण भारतवर्ष की ऐसी हीन दशा हुई है। और जब तक यह विरोध यों ही बना रहेगा इसके उद्धार का कोई उपाय न होगा। सुतराम हिन्दू और मुसलमान दोनों दल को अब अपने-अपने आग्रह को शिथिल करके परस्पर स्नेह वर्धन में यत्नवान होना चाहिये।”⁵

आधुनिक सभ्यता और अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क से भारतीयों के जीवन में जितने अवांछित परिवर्तन हुये हैं उन पर भारतेन्दु युग में लगभग सभी सामाजिक निबन्ध ‘पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार’ नामक निबन्ध लिखकर उन्होंने इस पीढ़ा को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उस निबन्ध में भारतीयों द्वारा प्राचीन प्रसाधनों के त्याग और नवीन के ग्रहण पर व्यंग्यात्मक ढंग से प्रेमघन ने अपनी बात

प्रस्तुत की है। वे लिखते हैं कि विदेशी प्रसाधनों की प्रवृत्ति भारतीय जलवायु के नितांत विरुद्ध है और उनसे भारतीयों को दूर रहना चाहिये—“आज सबी हिन्दोस्तान निवासी चाहें वह आर्य संतान हो या मुसलमान, हिन्दुस्तानी कहलाते लजाते, सफेद साहिब की लालसा से अपनी पुरानी चाल-चलन को छोड़ने और दूसरों की ग्रहण करने में कुछ भी संकोच नहीं, उन्हें तो सीधा आँख मूँद वही करना भाता कि जो आज श्वेतांग लोग करते हैं। ये आँधे खोपड़ी के लोग यह कदापि नहीं विचारते कि वे ऊष्ण प्रधान देशवासी हैं। अतः उनका अनुकरण हमें कदापि सुविधाजनक नहीं।..... इतना नहीं सोचते कि आज कल इस पहनावे पाल में पड़े आम से पक कर घुल जायेंगे।”⁶

चौधरी जी मानते थे कि विदेशी सभ्यता के प्रचार के कारण भारत का पंचतत्त्व भी परिवर्तित हो गया है। कोई भारतीय वस्तु दिखाई ही नहीं पड़ती। शिक्षा, दीक्षा, विद्या, बुद्धि, गति-मति, रीति-नीति, प्रीति, चाल-ढाल, खान-पान, व्यायाम, विश्राम, नाम, काम आदि सब विदेशी हो गये हैं। इसी कारण स्वदेशी वस्तुओं का भारत में मिलना दुर्लभ हो गया है। अपनी इस पीड़ा को वे अपने निबन्ध ‘स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार’ में अभिव्यक्त करते हैं। स्वदेश निर्मित वस्तुयें भारतीयों को अच्छी नहीं लगती थीं। प्रेमघन मानते थे कि स्वदेशोद्धार और स्वदेशी शिल्पकला की उन्नति का होना भारतीयों के लिये आवश्यक है। उनके स्वदेश प्रेम और भारत की उन्नति की आशा इस निबन्ध में भलीभाँति प्रतीत होती है—“जो वस्तुएँ हमारे यहाँ बनती हैं, यदि वे विदेशी पदार्थों सी सुन्दर और सस्ती नहीं हैं तो उन्हें तत्तुल्य करने की चेष्टा करनी चाहिए न कि उनका सर्वथा अभाव। उसका एकमात्र उपाय और कारण केवल उसमें निज रुचि का स्थान मात्र है। इसी भाँति जो वस्तुएँ अभी देश में अलभ्य हैं उनको देश में निर्माण करने की चेष्टा करना परमावश्यक है जिसके अर्थ बहुत कुछ आत्मत्याग, देशानुराग दृढ़ प्रतिज्ञता आदि गुणों की आवश्यकता है।..... देश के अग्रसरों को बहुत ही सुगमाहित हो इस समय कार्यानुसरण करना चाहिए और सर्व सामान्य भारतीय प्रजा को प्रमाद शून्य स्वदेशानुराग का व्रत लेते हुए अपने उचित उद्योग में संलग्न होना चाहिए, जिससे अवश्य ही कल्याण की आशा है। क्योंकि

ईश्वरानुग्रह से अब देश सुषुप्ति अवस्था का विसर्जन कर बहुत कुछ चैतन्यता लाभ कर चला है।”⁷

श्री बदरीनारायण ने भारतेन्दु युगीन अन्य निबन्धकारों की तरह तत्कालीन युग की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक आदि समस्याओं को उजागर किया है और न केवल निबन्धकार वरन् एक नेता तथा समाज सुधारक के रूप में भी इन समस्याओं को भी दूर करने का प्रयत्न किया है। प्रेमघन ने समाज के बहुत ही व्यापक क्षेत्र पर दृष्टि रखकर जो बातें अपने निबन्धों के माध्यम से कही हैं वे अभिव्यक्ति की सीधी शैली (Direct style of expression) में कही हैं। उन बातों को कहने में ‘कहना’ ही उनका लक्ष्य है। इस सम्बंध में शिवनाथ एम०ए० ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु युगीन निबन्ध में लिखा है—“इनकी अभिव्यक्ति में कहीं भी साहित्यिक चमत्कार दिखलाकर यशस्वी बनने की वृत्ति उनमें दृष्टिगत नहीं होती। इस अभिव्यक्ति की सीधी शैली द्वारा ज्ञात होता है कि इन बातों को कहने के लिये उनकी बुद्धि, हृदय, मन प्राण में बहुत बड़ी ईमानदारी थी। इन्होंने इनकी अभिव्यक्ति आवश्यक मानी, इन बातों को बिना अभिव्यक्ति किये जैसे उनका मन ही न मानता।”⁸

भारतेन्दु युग के निबन्धकारों की शैली की सामान्य प्रवृत्ति फारसी, अरबी आदि शब्दों के प्रयोग की ओर थी एवं उनमें इन शब्दों को प्रयुक्त न करने का आग्रह भी नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हुये भी वे अपनी शैली में संस्कृत और हिन्दी के शब्दों का प्राचुर्य रखते थे। किन्तु प्रेमघन अरबी, फारसी आदि शब्दों को प्रयुक्त करना अच्छा नहीं समझते थे। वे तत्सम तथा तद्भव शब्दों के प्रयोग के पक्षधर थे। एक स्थान पर उन्होंने कहा है—“अधिकांश हिंदी के उन सुलेखकों के लेख में जो संस्कृत के मनोहर शब्दों से सुसज्जित करने के स्थान पर उर्दू अर्थात् फारसी, अरबी के कठिन, दुर्बोध और अशुद्ध जो प्रायः बढ़ेंगे रीति पर आकर न केवल उस प्रबंध की शोभा का हास करते, वरंच उर्दू पठित पाठकों को रचयिता के अनुचित साहस पर उपहास का अवसर देते, न उसकी अभिशता प्रमाणित कर देते हैं, अवश्य है।”⁹

प्रेमघन जी ने अरबी, फारसी आदि के शब्दों का यदि प्रयोग किया भी है तो केवल उन्ही शब्दों का जो अति प्रचलित है और हिन्दी में उनका प्रयोग उन्होंने प्रचुर मात्रा में किया है उनकी दृष्टि चमत्कारवाद वा कलापक्ष पर विशेष रूप से रहती थी। शैलीगत सौन्दर्य के अन्य उपकरणों पर भी उन्होंने दृष्टि डाली है वाक्यों में आनुप्रासिक पदावली का प्रयोग तुकदार वाक्य खंडों तथा वाक्यों की योजना आदि की सहायता से अपने निबन्धों को प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया है—“उसे इन दोनों दलों की दलादली ने दल-दल कर समाप्त कर डाला, इस वर्ष भी कुछ लोगों ने होली मनाई और किसी-किसी से कुछ ठिकाने से बोली ठोली बोलते भी बन आई। जहाँ कुछ कचाई है, उसके अर्थ आगामि में सुधड़ई लिखाई जाने पर ध्यान रहे, व्यर्थ की ठठाई से हँसाई कराना ठीक नहीं, किन्तु बात की बात में वह बात जाती रही और दूसरा ही बात बहना आरम्भ हुआ।”¹⁰

बदरीनारायण चौधरी कभी-कभी बहुत बड़े वाक्य लिखते हैं परन्तु वाक्यों के बड़े होने पर भी उनमें उलझन नहीं रहती। मध्यम वाक्यों के लिखने की प्रवृत्ति भी उनमें अधिक दिखाई पड़ती है जैसे—“फिर कौन जाने कि यह जोरु की गुलाम जाति उन्हीं के कहने से इस चलन को स्वीकृत किये हुये हो, क्योंकि मुखचुबन के समय कि जो प्रथा उनके यहाँ अति अधिकता से प्रचारित है बहुत सा बाल दुःख का हेतु होता ही होगा।”¹¹

हिन्दी में प्रचलित संस्कृत के बने बनाये रूपों के प्रयोग भी उन्होंने किये हैं जैसे हठात्, बलात्, पूर्णरीव्या, येनकेन प्रकारेण, सुतराम आदि। भाववाचक संज्ञा के भरी भरकम रूप के प्रयोग की ओर भी उनकी दृष्टि यदा कदा रहती थी। जैसे स्वाच्छदय आदि।

पंडित बदरीनारायण चौधरी ने साहित्यिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार के निबन्धों की रचना प्रमुख रूप से की है। उनके सामाजिक निबन्धों में विचारात्मकता पाई जाती है सामाजिक निबन्धों में विचारात्मकता और वर्णात्मकता दोनों ही स्वरूप देखने को मिलते हैं वर्णनात्मक निबन्धों में उनके काव्य तत्त्व का अच्छा रूप विद्यमान है प्रेमघन की दृष्टि साहित्य के सभी अंगों पर गई है उन्होंने अपने निबन्धों में

साहित्यिकता की छाप छोड़ी है साहित्य की झलक उनके व्यावहारिक जीवन में पूर्ण रूप से दिखाई देती है। उनके साहित्यिक निबन्धों में साहित्यिकता चमत्कारवादी ढंग से दिखाई देती है भाषा में सानुप्रासिक लच्छेदार पदावली, तुकदार खण्डों का प्रयोग उनकी चमत्कारवादिता का ही परिचायक है। उनकी प्रवृत्ति कला पक्ष की ओर विशेष रूप से रहने के कारण निबन्धों में वर्णनात्मकता का प्राधान्य लिये हुये हैं 'गंगा सागर' 'संगम यात्रा' आदि उनके वर्णात्मक निबन्ध हैं। 'परिपूर्ण पावस' में ऋतु के प्राकृतिक रूप रंग, आमोद-प्रमोद आदि का वर्णन है सत्य है। वे क्योंकर जी सकें। जबकि ऐसा प्रबल शत्रु अर्थात् महाराज पावस जिसकी सहायता के बिना काम बेकाम सा रहा और वह कृपाकटाक्ष की कामना करता है अपने समस्त साज समाज को साज आया देखो यह गरज के मिस तोपें छूटने लगी कि आकाश घूम स्याम घन सघन से घिर समस्त संसार को अंधकारमय बना दिया, इंद्रधनु रूपी धनुष से बूँदियों के बाणों की वर्षा होने लगी, बकावलि सैन समूह के संग देखो यह बिजली के पटा के फिराता कौन चला आता, क्या यह सावन सेनापति हैं ? अवश्य ! देखो यह दुदर नकीब बोलते हैं।

प्रेमघन जी ने साहित्य और भाषा सम्बन्धी विषयों पर भी अनेक निबन्ध लिखे हैं जैसे 'नागरी समाचार पत्र और उनके संपादकों का समाज आदि। इस निबन्ध में हिन्दी के समाचार पत्रों की अवस्था की चर्चा की गई है, उनके जिन निबन्धों में वर्णनात्मकता की कमी है उनमें लोकोत्तियों तथा मुहावरों का अच्छा प्रयोग हुआ है जैसे घोर तो लिखने तुलसीदास अधिक गाये भगतन आदि।

चौधरी जी की शैली सबसे विलक्षण थी। वे गद्य रचना को एक कला के रूप में ग्रहण करने वाले कलम की कारीगरी समझाने वाले लेखक थे। उनकी शैली में एक अद्भुत लोच तथा वाक्य रचना भी असाधारण परिपाटी की है। 'समय' नामक निबन्ध से उनकी कुशलता देखी जा सकती है—“संसार में बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जो अपने समय का उत्तम विभाग न कर जब जो-जो चाहा करते हैं, जिसका फल ये होता है कि जितनी कार्यवाहियाँ उनकी होती अधुरी रह जाती। परन्तु निर्दय काले कुटिल कराल काल ने संयोग पहुँचाने पर कब किसे छुटकारा दिया है।”¹²

श्री बदरीनारायण अपनी रचनाओं को पाठकों के हृदय में उतारने की क्षमता रखते थे और वह उसी के अनुरूप भाषा आदि का भी प्रयोग करते थे। डॉ० ओंकारनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक हिन्दी निबन्ध का विकास में लिखा है—“यद्यपि इनके निबन्धों की भाषा संस्कृत गर्भित है, तथापि इन्होंने ब्रजी, उर्दू, फारसी तथा अंगरेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन्होंने ‘तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन’ के कलकत्ता अधिवेशन में सभापति के आसन से भाषण देते हुये कहा था कि हिन्दी लेखकों को संस्कृत, ब्रजभाषा, उर्दू, फारसी तथा अंगरेजी का ज्ञान अनिवार्य रूप से होना चाहिये यथा—“हमारी भाषा में अच्छे ग्रन्थ न होने का कारण यही है कि हमारी भाषा की ऐसी दशा हो गई है कि जब तक कोई संस्कृत, ब्रजभाषा, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी भी न जाने वह अच्छा लेखक नहीं हो सकता। क्योंकि जब तक संस्कृत और ब्रजभाषा न जानेगा सुन्दर शब्दों को न पावेगा और न प्राचीन संगठन रहेगा। उर्दू के बिना मुहावरे ठीक न होंगे में बहुतेरे शब्द अरबी, फारसी के बिना आये न रहेंगे और उनका अशुद्ध प्रयोग जानकारों को असह्य होगा। अंग्रेजी अब सबसे अधिक आवश्यक हो गई है इसके बिना वर्तमान समय में कुछ कार्य ही नहीं चल सका।”¹³

प्रेमघन जी अपने निबन्धों में हिन्दू धर्म के आडम्बरों तथा अनाचारों की कटु आलोचना करते हैं एवं उसमें नवीन विचारों को अग्रसर कर नवीन उन्नतिमय मार्ग का पददर्शन भी करते हैं। अपने सामाजिक निबन्धों में वे सामाजिक भावनाओं को बहुत ही स्पष्ट रूप से कहते हैं—“आज यदि हमारे पश्चिमीय विद्या विशारद नवीन ज्योतिधारी युवक समूह चमकीले पीतल के झूठे गहने और भड़कीले गिलट के बर्तनों के सामान केवल ऊपरी तड़प-झड़प रखने वाली पश्चिमी सभ्यता पर मोहित न हो, आपने वास्तविक सदाचार के सच्चे सुनहरे और जड़ाऊ गहने, जिन पर मूर्खता की मैल जम गई है। देकर उसे मोल न लेते, वे इस प्राचीन प्रसाद तुल्य समाज का संस्कार झाड़-पोंछ मरम्मत व चूना कलई करने के बदले गिरा एक नया फूस का अंग्रेजी बंगला बनाने के अर्थ न विह्वल होते।..... ठीक यही दशा आजकल के भारतीय समाज संस्कार वा धर्म संस्कार व्यक्ति और समाजों की भी है, जो वास्तव में देश की रही सही सम्पत्ति आर्य मर्यादा और कायरता चिह्न चक्र को भी मिटा देगी।”¹⁴

हिन्दी गद्य के विकास का प्रथम प्रभात के रूप में भारतेन्दु काल का महत्त्व है भारतेन्दु के पहले गद्य का ब्रजभाषा रूप तो था किन्तु उसमें चिरंतनता नहीं थी। प्रेमघन ने खड़ी बोली का परिमार्जन किया एवं पूर्ण परिष्कार किया जिसके फलस्वरूप गद्य-काव्य में उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक लेख ही नहीं लिखे वरन् उन्होंने गद्य के अन्तर्गत सजीवता का भी संनिवेश किया। 'बेसुरी तान' नामक लेख के अन्तर्गत उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की आलोचना की हैं—“प्रिय पाठकों हमने जो अपने पत्रिका की प्रथम संख्या में लिख दिया था कि सच पूछो तो जब से कविवचन सुधा से सुधा का स्वाद स्वधा सुरपुर में जा बसा और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के चन्द्रिका में चमकीलापन और मनोहरता का गुन तमाम कर डाला,..... पर अब टुक श्रीमान महाराज शाहजहाँ के खानदान की बची बचाई सब कुछ मुगलनी उर्दू की दुख्तरे नेक अख्तर बीबी चन्द्रिका का जौहर जिसका इस वृद्धावस्था में विद्यार्थी शौहर हुआ है।”¹⁵

गद्य के इस आविर्भाव काल में प्रेमघन ने प्राचीन प्रणाली का अनुसरण नहीं किया। उन्होंने न तो लल्लूाल के ब्रजभाषापन को अपनाया न सदलमिश्र के पूर्वीपन को। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन उन्हें अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने अपना नवीन मार्ग ही प्रतिष्ठित किया। भाषा में लाकर प्रभावात्मकता उत्पन्न करना, हास्य और परिहास, व्यंग्य और विनोद, उनकी शैली के प्रमुख अंग थे। उनकी अलंकारिक भाषा की त्रिवेणी तरंग की एक झलक प्रस्तुत है—“दुर्ग के पूर्व त्रिवेणी अपनी गौरव युक्त झाँकी को कोहिरे से आवेष्टित किये हुए हैं। जान पड़ता है कि अक़बर का प्रबल प्राचीन दुर्ग विद्रोही जहाज़ों से जो अपने विशाल पताकों को चढ़ाए हुए हैं। आक्रमिक है। मेले का किर्र घोर कलकल का अनुकरण कर रहा है, बाल पतंग की अरुण किरणें जो सेना झूँसी के वृक्षों से विस्फुटित हो कोहिरे में धँसी हैं विद्रोही सेना प्रयुक्त लक्ष अग्निवाण सम दुर्ग को लक्ष्य किये सी जान पड़ रही हैं।”¹⁶

प्रेमघन ने अन्य गद्य लेखक शैली का अनुसरण किये बिना अपनी प्रतिभा से स्वयं अपनी शैली का निर्माण किया और प्रत्येक विषय तथा वाक्य को कलात्मकता प्रदान करके उसकी पूर्ण विवेचना करते थे। उन्होंने अपने निबन्धों में खड़ी बोली का ही

प्रयोग किया है जिनमें मधुरता, मनोहरता तथा बोधगम्यता रहती थी। प्रेमघन के व्यक्तिगत निबन्ध उनके वैयक्तिक प्रयास हैं। जिसमें व्यक्तिगत विचार जिस क्रमबद्धता से जीवन से अन्तर जगत् के मार्मिक विचार स्थलों को स्पष्ट करते हैं, उसी प्रकार जीवन के सच्चे स्वरूप को भी। इस सम्बन्ध में श्री प्रभाकरकेश्वर प्रसाद उपाध्याय ने प्रेमघन सर्वस्व की भूमिका में कहा है—“व्यक्तिगत निबन्धों में आपका विषय तो निश्चित ही रहता है, पर उनके विचार किसी परिधि के भीतर आवेष्टित नहीं रहते, जो प्रासंगिक विषय इन प्रसंगों के अन्तर्गत आते हैं, उनका वहाँ वर्ण पूर्ण रूपेण होता है। इन निबन्धों में शृंखलाबद्ध विचार हैं पंडित वर श्री विज्ञान शेखर शास्त्री विद्या वाचस्पति के धर्म भीरुता का चित्र ‘गुप्त गोष्ठी’ में बड़ी पटुता से चित्रित है।”¹⁷

प्रेमघन का शब्द चयन बड़ा मधुर तथा उपयुक्त होता था वे प्रत्येक शब्द को बहुत सोच समझ कर प्रयोग में लाते थे। उनके वाक्यों में अलंकारों की छटा के साथ विचारों में गाम्भीर्यता भी पायी जाती है वाक्यों के अन्तर्गत शृंखलाबद्धता के कारण लम्बे-लम्बे एक एक कालम तक के उनके होने में भी शैथिल्य नहीं दिखाई पड़ता, आपके वाक्य खंडों में यह जानने की उत्कंठा सदा रहती है कि उसके अन्त में क्या व्यक्त करना चाहते हैं। जैसे “चाहे हम रोवें, चाहे गावें, चाहे उपवास करें, चाहे डूब मरें, किन्तु बिना ऐक्य के स्वराज्य नहीं प्राप्त होगा।”¹⁸

प्रेमघन की गद्य शैली के आधार पर यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि वे खड़ी बोली गद्य के प्रथम आचार्य थे। उनके समक्ष उस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, आदि साहित्यकारों का समुदाय था, पर उनकी प्रतिभा उन लोगों के प्रभाव से प्रभावित नहीं हुई वरंच उनकी अपनी विलक्षण शैली इन लोगों से प्रथम ही रही। श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय जी ने अपनी पुस्तक प्रेमघन सर्वस्व, भाग दो में लिखा है—“प्रेमघन जी ने गद्य लेखन को भी एक कला के रूप में ग्रहण किया, क्योंकि उनके अनूठे पदविन्यासों कोमलकान्त पदावलियों ने जिस परिष्कृत तथा परिमार्जित भाषा का रूप हमें दिया है वह उनकी निजी देन है उनके पदविन्यास व्यर्थ के आडम्बरों से युक्त नहीं हैं, इनमें अर्थ गाम्भीर्य तथा विचार बड़ी पटुता से व्यक्त हैं। जिस कलात्मकता से उनके निबन्ध एक सूत्र में सजीवता और रोचकता के

धागे में बँधे हैं, कि कहीं एक शब्द भी इधर-उधर किया जाय तो उनकी क्रम-बद्धता ही नष्ट हो जाती है व्यक्तिगत निबन्धों के अन्तर्गत जितनी सजीवता है उतनी ही मधुरता भी है, सामाजिक निबन्धों में व्यंग के हल्के हल्के छींटे हैं। भाव अभिव्यंजना तो सब जगह बड़ी पटुता से प्रदर्शित की गई है।¹⁹

पंडित बदरीनारायण चौधरी ने हिन्दी साहित्य में साहित्यिक समालोचना का सूत्रपात किया। निबन्धकार यदि समालोचक भी हो तो ऐसे में उसके निबन्ध की महत्ता का अनुमान सहज ही हो सकता है उनकी आलोचना का एक दूसरा रूप भी दिखाई पड़ता है जिसके अन्तर्गत उनकी समसामयिक परिस्थितियों व्यक्तियों, तथा अनाचारों की भी आलोचना मिलती है व्याकरण विषय पर महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा बालमुकुन्द गुप्त के विवाद की उन्होंने 'नागरी के समाचार पत्र और उनके सम्पदाकों का समाज नामक लेख में विवादास्पद शैली की सुन्दर आलोचना की है। इनकी आलोचना के सन्दर्भ में श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय ने लिखा है—“प्रेमघन जी ने समालोचना का सूत्रपात हमें सम्वत् 1838 वै० में आनन्द कादम्बिनी की संख्या 4, 5 में 'दृश्य रूपक वा नाटक' शीर्षक लेख के अन्तर्गत मिलता है। यहीं से हमें आपकी आलोचना का बीजाकुर दिखाई पड़ता है आपने इस लेख में जो नाटकों का आलोचनात्मक इतिहास लिखा है उससे आपकी आलोचना की ऐतिहासिक समीक्षा Historical Criticism पद्धति का हमें पूर्ण आभास मिल जाता है। उदाहरणार्थ—“कारण यह कि कोई न तो कुछ वृत्त दे, न प्रस्तावना स्पष्ट रीति से लिखे और लेख का ढंग निराला रखते, कितने ऐसे कि दोनो क्या बल्कि अपने नाम को भी मिला तीनों खा जाते, बहुतेरे पात्रों के नाम का भी अनुवाद करके आप रूप बन जाते, और पूर्व कविकीर्ति का कलेवा करना चाहते। इस लेख में प्रेमघन जी ने तत्कालीन नाट्य साहित्य के लेखकों की आलोचना की है।”²⁰

प्रारम्भ में प्रेमघन के साहित्यिक निबन्धों में इनके गद्य के क्रमिक विकास का पूर्ण आभास होता है। फिर आपने व्यक्तिगत निबन्धों की रचना की जिनमें इनकी भाषा परम प्रौढ़ हो जाती है और प्रतिभा का पूर्ण विकास दिखाई देता है उनके सामाजिक तथा धार्मिक निबन्धों से पाठकों को इनके जागरूक और समाज तथा धर्म सुधारक

रूप का पूर्ण आभास होता है। ऐतिहासिक निबन्धों के अन्तर्गत उनकी भारतीयता तथा उनका देश प्रेम जितनी प्रचुरता से उनके गद्य में प्रस्फुटित हुआ है सामने आता है प्रेमघन ने बहुत से सम्पादकीय अग्रलेख की लिखे ये उनके समय के इतिहास तथा उनकी प्रतिभा को स्पष्ट रूप से हमारे सामने लाते हैं उन्होंने हिन्दी गद्य के विकास में अपना सराहनीय योगदान दिया है।

प्रेमघन ने अपने निबन्धों से हिन्दी साहित्य के भंडार में वृद्धि की। वे सदैव हिन्दी भाषा के उत्थान में सक्रिय रूप से प्रयत्नशील रहते थे। देवनागरी की रक्षा हेतु वे चिन्तित रहते थे। उनके निबन्ध 'भारतीय नागरी भाषा के प्रयत्नों को भलीभाँति समझा जा सकता है—'पिछले समय की भाषा हमारी प्राचीन भाषा ही थी, वही नागरी वा राष्ट्र भाषा थी। यदि उस समय भारत की कोई प्रधान राजधानी होती, वा यहाँ का कोई चक्रवर्ती राजा होता तो उसकी भी बहुत उन्नति होती।..... आज भी जिसके साहित्य का स्तोत्र मन्दगति से प्रवाहित होता हमारे देश के असंख्य सहृदय साहित्य रस तृषियों के परितोष का हेतु है।'²¹

श्री बदरीनारायण ने हिन्दी साहित्य को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा विविध विषयों पर निम्नलिखित निबन्ध लिखे हैं। समाचार पत्र या अखबार किसे कहते हैं, नागरी भाषा, ऋतु वर्णन, बेसुरी तान, दृश्य रूपक वा नाटक, त्रिवेणी तरंग, समय, हिन्दी हिन्दू और हिन्दी, हमारी प्यारी हिन्दी, हमारे देश की भाषा और अक्षर, भारतेन्दु अवसान, गुप्त गोष्ठी गाथा, बनारस का बुढ़वा मंगल, दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार, शोकोच्छ्वास, विधवा विपत्ति वर्षा, देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक, हमारे धार्मिक, सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, वीर पूजा, भावी भारतीय महासम्मिलन, स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार, भारतीय प्रजा में दो दल, रंग की पिचकारी, पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार, भारत वर्ष की दरिद्रता, कांग्रेस की दशा, भारतवर्ष के लुटेरे और उनकी दीन दशा, नागरी के पत्र और उनकी विवाद प्रणाली, नागरी समाचार पत्र और उनके सम्पादकों का समाज, नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा, कजली कुतूहल, कजली की कुछ व्याख्या, तृतीय साहित्य सम्मेलन कलकत्ते के सभापति का भाषण, भारतीय नागरी भाषा, नीलदेवी की

समालोचना, संयोगिकता स्वयंवर और उसकी आलोचना, वंग विजयता की आलोचना, नागरी के समाचार पत्र और उनकी समालोचना, उर्दू बेगम की आलोचना, आनन्द कादम्बिनी का प्रथम प्रादुर्भाव, पत्रिका की प्रार्थना, नागरी नीरद का पत्र परिचय नीरद का नवीन वर्षारम्भ, स्थानक संवाद, स्थानिक संवाद, अब क्या करें, पंच का विज्ञापन, प्रेषित पत्र आदि प्रेमघन सर्वस्व के द्वितीय भाग में संकलित हैं। इसके सम्पादक श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय एवं दिनेशनारायण उपाध्याय हैं।

ऐतिहासिक निबन्ध :

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अनेक निबन्धों की रचना की उनके अन्तर्गत उनकी भारतीयता तथा देश प्रेम की भावना का सहज अनुभव किया जा सकता है। तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के आसन से प्रेमघन ने जो भाषण दिया था उसकी भी एक ऐतिहासिक विशेषता है उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित निबन्धों में निम्नलिखित निबन्ध प्रमुख हैं, स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार, भारतीय प्रजा में दो दल, भारतवर्ष की दरिद्रता, कांग्रेस की दशा, भारतवर्ष के लुटेरे और उनकी दीन दशा, नागरी के पत्र और उनकी विवाद प्रणाली, नागरी समाचार पत्र और उनके सम्पादकों का समाज, नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा इत्यादि।

प्रेमघन अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत भारत की दुर्दशा से विचलित थे। अंग्रेजों के आगमन से भारत की संस्कृति में परिवर्तन देखने को मिल रहे थे और इस चिन्ता को वह अपने निबन्ध स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—“अवश्य ही सोलह आना भारत तो तबी तक था, जब तक विशुद्ध भारत भारत वर्ष कहलाता था। जब से इसका नाम हिन्दोस्तान पड़ा, चार आना घट कर बारह आना शेष रहा था, किन्तु जब से कि इंडिया कहलाया इसने अपना सब कुछ गँवाया और कदाचित् अब उसे आना, आध आना कह देने में भी कुछ विशेष संकोच नहीं होता, क्योंकि अब भारत में कुछ भी भारतीयता का अवशेष नहीं लखाता! शिक्षा—दीक्षा विदेशी, विद्या—बुद्धि विदेशी, मति—गति विदेशी, रीति — नीति और प्रीति

विदेशी, चाल-ढाल और माल-ताल भी विदेशी, खान-पान विदेशी व्यायाम, विश्राम और नाम तथा काम सब विदेशी ही विदेशी की भरमार है।”²²

प्रेमघन भारतवर्ष में साम्प्रदायिक सौहार्द के पक्षधर थे और अपने निबन्धों के द्वारा वे इस दिशा में सक्रिय रहते थे। अंग्रेजों द्वारा फैलाये साम्प्रदायिक विद्वेष को कम करने के प्रयत्न स्वाभाविक रूप से उनके निबन्धों में देखे जा सकते हैं, जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं—“काशी कांग्रेस के अवसर पर हमने मि० अली मुहम्मद भीम जी महाशय को ‘बन्देमातरम’ मंडली की यात्रा निकालते और उन्हें अति उच्च स्वर से ‘बन्देमातरम’ कहते सुना है। अस्तु जो हो, हमें अपने भूले भाइयों को येनकेन प्रकारेण सँभाल कर अपने देश, अपने और उनके हित का साधन अवश्य करना चाहिए गत बरीसाल की जातीय समिति के सभापति मि० रसूल ने अपने मुसलमान भाइयों के विषय में कहा था, कि देश के राजनैतिक आन्दोलन से अलग रहकर उन्होंने अपने को बड़ी मुशिकल में डाल दिया है। उन्हें अपने नफा नुकसान की कुछ भी खबर नहीं। जो लोग उनके नेता बने हुये हैं। उन्हीं की कृपा से मुसलमानों की दुर्गति हुई है।”²³

प्रेमघन जी मानवीय जीवन में धर्म के प्रभाव को आवश्यक मानते हैं, और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी उपयोगिता महत्त्वपूर्ण है। उनके विचारों को ‘कजली की कुछ व्याख्या’ में इस प्रकार देखा जा सकता है—“सदा से हम आर्यों के प्रायः सब कार्यों के आरम्भ में प्रथम धर्मकृत्य ही का अनुष्ठान होता है, उसमें भी प्रायः शक्ति लाभार्थ अनादि शक्ति ही अर्थात् महामाया अथवा उसके साकार भेद वा रूपान्तर की उपासना की जाती है यदि सबी अवसरों के अर्थ एक ही नाम, रूप वा रीति से पूजा की जाय, तो न तो उसके भक्ति भाव में विलक्षणता हो और न स्वभाविक सरसता, अतः धर्मोपदेष्टा और सदाचार प्रवर्तकों के उपदेश और भक्तों की भक्ति भावनाओं के कारण समय समय पर प्रकारान्तर से उपासना की परिपाटी प्रचारित हुई।”²⁴

भारतीय संस्कृति में तीज त्योहारों का बहुत महत्त्व है। प्रत्येक धर्म में इन तीज त्योहारों पर विशेष हर्ष और उल्लास का वातावरण देखने को मिलता है उनकी सांस्कृतिक महत्ता को स्वीकारते हुये प्रेमघन ने अपने निबन्ध सांस्कृतिक विषय पर

लिखे हैं हिन्दू धर्म में होली का त्योहार बड़े श्रद्धापूर्वक ढंग से मनाया जाता है इसका उल्लेख उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से अपने निबन्ध 'रंग की पिचकारी' में इस प्रकार से किया है— "इस वर्ष भी कुछ लोगों ने होली मनाई और किसी किसी से कुछ ठिकाने से बोली ठोली बोलते भी बन आई। जहाँ कुछ कचाई है उसके अर्थ आगामि में सुघड़ई लखाई जाने पर ध्यान रहे, व्यर्थ की ढिठाई से हँसाई कराना ठीक नहीं। क्योंकि इस बार भी देखा कि कई लोगों ने कैयों पर आयोग्य आक्रमण किये जो अनुचित थे। समान श्रेणी में भी सम्भ्रान्त के सम्भ्रम का विचार अवश्य है गुलाल, बाप, भाई, बेटे और साले को भी लगाया जाता ही है।, किन्तु सबको एक समान नहीं। वरंच उसमें भी भेद रहता है बस इसमें भी उसका ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो केवल जलीकटी के आधिक्य से आनन्द के स्थान पर केवल रसाभास और वैमनस्य ही की वृद्धि सदा सुलभ है। यद्यपि इस बार कोई व्यक्ति विशेष इसका लक्ष्य नहीं है वरंच केवल सामान्य भाव का रंग छिड़काव है, तो भी आशा है कि इस पिचकारी के छोटों से लोग चैतन्य हो जायेंगे।"²⁵

भारतीय संस्कारों में विवाह एक महत्त्वपूर्ण संस्कार हैं प्रत्येक धर्म के लोग अपने-अपने धर्मानुसार इस संस्कार को पूर्ण करते हैं। प्रेमघन की दृष्टि इन संस्कारों पर भी जाती है और वो इसके मर्म को समझकर सही और गलत को परिभाषित करने हेतु निबन्ध को माध्यम बना कर इसके सही रूप को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं उन्हें गर्व होता है कि अपनी संस्कृति पर जिसके अनुसार यहाँ की स्त्रियाँ किस प्रकार अपने स्त्री धर्म को भलीभाँति निभाती हैं—“धन्य हैं ये भारत की भामिनियाँ कि इस दशा पर भी वे अपने धर्म और कुलकानि का त्याग नहीं करती, किन्तु बेपीर बधिक से बैरी सदृश बाप से दी गई लड़कियाँ आँख मूँदे पति के संग बेउज्र चली जाती और जो कुछ दुख सुख पड़ता खुशी से झेल जाती हैं।..... मेरी समझ में तो उसके जीवन में शादी केवल मृग तृष्णा है। कैसे अन्याय का विषय है जबकि ऐसी अवस्था में व्याह किया जाता है जब शीतला देवी के ग्रास तुल्य अथवा नाना प्रकार की जो बालब्याधियाँ होती हैं। उनके कराल गाल में जाने के योग्य

कोमल बालक दुलारे दुलहे और गुड़ियों की तरह दुलहिनैं जो विचारियाँ ब्याह की भाँवरी भरने को भी केवल एक खेल जानती ब्याह दी गई हैं।”²⁶

प्रेमघन जी ने अपने सांस्कृतिक निबन्धों के माध्यम से पाठकों को सभ्यता और संस्कार आदि से परिचित कराने का प्रयत्न किया है हमारी संस्कृति में जीवन की प्रत्येक क्रिया धार्मिक रीति रिवाजों द्वारा ही संचालित होती है। उन्होंने अपने मार्मिक निबन्ध ‘शोकोच्छ्वास’ के माध्य से महाराजा की मृत्यु के अवसर पर संस्कारों का उल्लेख इस प्रकार किया है—“महाराज की अन्येष्टि क्रिया श्रीमती छोटी महारानी के द्वारा बड़ी ही धूम धाम से और यथा रीति सम्पादन की गई।..... महाराज की अपने अंतिम कृत्य के सम्पादन होने में कुछ शंका थी, जिस कारण वह अपने जीवन से निराश हुये, चाहते थे कि गृहस्थ आश्रय को छोड़कर सन्यास ले लें किन्तु अयोध्या में कोई योग्य सन्यासी लभ्य न होने के कारण काशी से किसी परमयोग्य सन्यासी को ले आने के अर्थ.....।”²⁷

पंडित बदरीनारायण चौधरी ने सांस्कृतिक परिप्रक्ष्य में भारतीय संस्कृति के मूल्यवान अंग मेले इत्यादि को भी अपने निबन्धों में उकेरा है मेले, कजली इत्यादि मानवीय जीवन में स्फूर्ति का सशक्त माध्यम होते हैं उन्होंने इस मेलों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ आत्मानुभाव किया और अपनी लेखनी के माध्यम से पाठकों को बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया। ‘बनारस का बुढ़वा मंगल’ नामक निबन्ध में वे लिखते हैं—“अवश्य यह अपूर्व और अनोखा मेला काशी के गौरव और गर्व का हेतु है, क्योंकि हम जानते हैं कि इस चाल का दूसरा मेला न कदाचित् भारत भर ही में वरन् सारे संसार में भी कहीं नहीं होता होगा इस कारण्पा कौतुक प्रिय लोगों के लिये तो निःसन्देह यह अवसर अलभ्य लाभ का वा यों कहिये कि यह काल कराल काल ही है जैसा कि किसी ने कहा है डूब जायें नहीं गंगा में न काशी वाले नौजवानों का सनीचर है ये बुढ़वा मंगल।”²⁸

संस्कृति के जीवन्त रूप को प्रेमघन इस प्रकार भी प्रस्तुत करते हैं—“यह बुढ़वा मंगल का मेला क्या वस्तुतः बुढ़वा बाबा महादेव का मंगल विवाह का मेला ही है और यह दंगल (भारी भीड़) कदाचित् बारात वा सोहगी निकलने का समय है; जिसे देखने

के लिए ये देवदारा और गन्धर्व कन्यायें अपनी ऊँची अट्टलिकाओं पर चढ़ी हैं! श्री गंगा जी की सब नौकाएँ मानों नाना बाराती देवताओं के विमान हैं, जो अभी आकाश से उतर रहे हैं।²⁹

प्रेमघन ने एक भारतवासी होने के नाते इस बात का आत्मानुभव किया कि अंग्रेजी शसन के चलते हुये भारतवासी निर्धन से निर्धन होते चले जायेंगे। अंग्रेजों द्वारा भारतीयता में फैशन की ओर उन्मुख करके विलायती वस्तुओं के उपभोग का अभ्यस्त बना दिया और देश की आर्थिक स्थिति अत्यधिक हीन हो चली थी। इन स्थितियों से विचलित होकर प्रेमघन भारतवासियों को अपने निबन्धों के माध्यम से जागरूक बनाने की दिश में एक ऐतिहासिक विषय से सम्बद्ध दिखाई देते हैं—“भारतवर्ष के 25 करोड़ वासियों में कोई भी ऐसा न होगा जो विलायती कपड़े न पहिनता हो और दूसरी आवश्यक सामग्रियों को इन्हीं विलायतियों के घर की बनी न लेता हो। जब आवश्यक शारीरिक वस्त्र को हमें परदेशियों से लेना पड़ता है, तब धन का रहना कैसे सम्भव है, निदान व्यापार का नाश हो जाना ही देश की दरिद्रता का मुख्य कारण है नाममात्र का एक व्यापार जो यहाँ के व्यापारी करते हैं जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दल्लात कहेंगे, क्योंकि वे विलायती वस्तुओं के बेचने के बिचवई हैं यद्यपि किसी प्रकार इनकी जीविका चली जाती है तथापि इस देश के धन की वृद्धि दल्लाली से नहीं हो सकती।”³⁰

श्री बदरीनारायण ने हिन्दी भाषा की ऐतिहासिकता को सदैव जीवित रखने का प्रयत्न किया है। वे वर्तनी इत्यादि की अशुद्धियों को सुधारने के पक्षधर थे और साहित्य समाज में फैले हुये आपसी विवाद को हिन्दी भाषा का अपमान मानते थे। अपने कुछ निबन्धों में उन्होंने इस प्रकार के प्रकरणों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर वह लिखते हैं—“पंडित महावीर द्विवेदी ने सरस्वती में जो व्याकरण विषयक प्रथम लेख लिखा था, उसमें चाहे उनके मत से किसी—किसी को किसी वा कई स्थानों पर विरोध क्यों न हो, अथवा उसमें अशुद्धियों के वे उदाहरण जो उन्होंने ऐसे सम्मानित लोगों के लेखों से संग्रह किये हैं जिन्हें लोग प्रचरित नागरी भाषा के परमाचार्य मानते और जो बहुतों को दुखदाई होने के कारण अनुचित कहने के योग

क्यों न हो अथवा उनकी लेखनी ने दूसरों की समझ में जो और प्रमाद किया हो, वा जहाँ कहीं उस लेख में शब्द अशुद्ध, वा पद बेकैड़े और सुविज्ञ अनोमोदित शैली से फिसलते क्यों न हों, जिसे उन्होंने अपनी समझ, रुचि और योग्यतानुसार लिखकर सर्वसाधारण के समक्ष निर्णयार्थ उपस्थित किया, उस पर न केवल मिस्टर आत्माराम अथवा बालमुकुन्द गुप्त....।”³¹

प्रेमघन द्वारा ‘संयोगिता स्वयम्बर और उसकी आलोचना’ नामक निबन्ध के माध्यम से ऐतिहासिक नाटक की समालोचना करने से ये स्पष्ट हो जाता है कि वे ऐतिहासिक विषयों के कितने निकट थे। वे समालोचना में खुशामद और चापलूसी के कट्टर विद्रोही थे। सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं अन्य निबन्धों के साथ-साथ उन्होंने ऐतिहासिक विषयों को भी बहुत गम्भीरता और विद्वतापूर्वक अपने लेखन का माध्यम बनाया है एक ऐतिहासिक निबन्ध में वह कहते हैं—“यह ऐतिहासिक नाटक श्री लाला श्री निवासदास जी कृत, सारसुधानिधियन्त्र में मुद्रित पंडित सदानन्द मिश्र द्वारा प्रकाशित जिसका मूल्य 1/- है भारतेन्दु द्वारा मुझे समालोचनार्थ मिला। इस पुस्तक की समालोचना करने के पूर्व इसके समालोचकों की समालोचनाओं की समालोचना करने की आवश्यकता जान पड़ती है। क्योंकि जब हम इस नाटक की समालोचना अपने बहुतेरे सहयोगी और मित्रों को करते देखते हैं, तो अपनी ओर से जहाँ तक खुशामद और चालूसी का कोई दरजा पाते हैं, शेष छोड़ते नहीं दिखाते..... भाषा के कालिदास और भाषाचार्य कह डालते, और श्री हरिश्चन्द्र के तुल्य भारतेन्दु पर के योग्य ठहराते हैं।”³²

बदरीनारायण चौधरी ने अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों में नाटकों आदि विषयों पर अपने ओचनात्मक निबन्ध लिखे हैं। इससे उनके ज्ञान की छवि स्पष्ट होती है।

सांस्कृतिक निबन्ध:

पंडित बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ ने अन्य विषयों के साथ-साथ सांस्कृतिक विषयों पर भी अनेक निबन्ध लिखे हैं। वे भारत की राष्ट्रीयता और संस्कृति से विशेष रूप से जुड़े हुये थे। वे धार्मिक रूप से समाज में नवीन विचारों के द्वारा उन्नतिमय मार्ग का प्रदर्शन करते दिखाई देते हैं। इसी के फलस्वरूप प्रेमघन के साहित्य में

सामाजिक एवं सांस्कृतिक लेखों की प्रधानता पायी जाती है संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में वे लिखते हैं—“कहीं अजगरों का दूर ही से पशुओं को खींच-खींच कर निगल जाना, कहीं काली नागिनों का उस ओस आसव पान से उन्मत्त हो बल खा खा कर तलमलाना, कहीं काले नाग फन फैलाए फूँकारते, कहीं विषभरे कराइत अहंकार से हुंकारते, कहीं अपने तीक्ष्ण तालू के दाँतों के गर्व से गर्वित गोहूँअन गुरगुराते, कहीं घोड कराइत घोडे की भाँति हिनहिनाते, कहीं डोडहे आते, कहीं असडिहे जाते कहीं धामिन धाती, वो कहीं चीतरें चिंघारतीं, कहीं बिच्छू और खनकजूरे डोलते, तो वहीं गोह और विषखोपडे बोलते।”³³

बदरीनारायण चौधरी अपने देश की सांस्कृतिक धरोहर और परम्परागत प्राचीन आदर्शों के पोषक के रूप में दिखाई देते हैं। ‘नागरी भाषा’ ऋतु वर्णन त्रिवेणी तरंग, हिन्द, हिन्दू और हिन्दी, हमारे देश की भाषा और अक्षर, बनारस का बुढवा मंगल, हमारे धार्मिक सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, नीरद का नवीन वर्षारम्भ, हमारा नवीन संवत्सर, कजली की कुछ व्याख्या आदि उनके प्रमुख सांस्कृतिक निबन्धों की श्रेणी में गिने जाते हैं। भारतीय संस्कृति से अभिभूत होकर वे एक निबन्ध हमारा नवीन संवत्सर में लिखते हैं— “हमारा यह नवीन संवत्सर सामान्य औरों का मन माना सा नहीं कि जब से जी चाहा उसका आरम्भ मान लिया, वरंच वास्तव में हमारे नवीन संवत्सर का प्रिय प्रथम दिवस प्रथम ही से प्रथम संवत्सर का प्रथम दिवस है, अर्थात् इसी दिन से इसे जगत् की उत्पत्ति हुई, और ब्रह्म ने इस संसार की सृष्टि की, जैसी कि हेमाद्रि में—

चैत्रे मासे जगदब्रह्मार्ज ससज्जिप्रथमेहनि ।

शुक्ल पक्षे समग्रं तु तदा युय्योदये सति ।।”³⁴

साहित्यिक निबन्ध :

पंडित बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ ने हिन्दी गद्य को स्थिरता प्रदान की है और उसमें जो प्रौढ़ता एवं परिष्कार किया है वो उनके साहित्यिक स्वरूप को सिद्ध करता है। वे आजीवन नागरी भाषा की उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहे। वे गान विधा के आचार्य थे कि साहित्य और संगीत दोनों का चिर साहचर्य तभी सम्भव है जब कि

उसे मानव जीवन के उत्थान में सहयोगी बनाया जाय। प्रेमघन ने खड़ी बोली गद्य का परिमार्जन किया और उन्होंने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं अन्य विविध विषयों पर निबन्ध लिख कर हिन्दी साहित्य के गद्य क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। साहित्यिक विषयों पर उनके निम्नलिखित निबन्ध हिन्दू हिन्दू और हिन्दी, हमारी प्यारी हिन्दी, हमारे देश की भाषा और अक्षर, भारतेन्दु अवसान, नागरी के समाचार पत्र और उनकी समालोचना, उर्दू वेगम की आलोचना, आनन्द कादम्बिनी का प्रथम प्रादुर्भाव, नागरी नीरद का पत्र परिचय, नवीन वर्षारम्भ, तृतीय साहित्य सम्मेलन कलकत्ते के सभापति का भाषण, नील देवी की समालोचना, नागरी भाषा (या इस देश की बोलचाल की भाषा) इत्यादि प्रमुख हैं एवं प्रेमघन सर्वस्व के द्वितीय भाग में संकलित हैं।

प्रेमघन ने गद्य में भी सजीवता के साथ वर्णन प्रस्तुत किया है। इस सजीवता का सुन्दर उदाहरण उनके निबन्ध बेसुरी तान में दिखाई देता है— “सच है कादम्बिनी से चन्द्रिका सदा दबी रहती है। लेकिन यह आपके जनाब ऐडिटर साहब बेतरह फरमाते हैं। हज़रत समालोचना ही न की समालोचना क्या है, गोया समालोचना सत है, नवीनतम है सार है, जौहर है लुब्बे लुबाब है, खुलासा है, निचोड़ है, अपनी करनी से पाक हो जाना है, जबाब देही से बरी होना है, इधर उधर से सोच साँच कहीं से जबाब के बदले कुछ कह देना है, नाटक का झगड़ा मोल लेना है, सच है यह आप के बेजार होने का इज़हार है, और सकूत के आलम का सुबूत है, मेरी हिमाकत का बयान आपकी लियाकत की सिदाकत करता है।”³⁵

प्रेमघन ने निःसन्देह हिन्दी गद्य के विकास में बहुत सराहनीय योगदान दिया है। वे नागरी भाषा के लिये बड़े चिन्तित एवं उत्थान हेतु प्रयत्नशील रहते थे। भारतीय नागरी भाषा नामक निबन्ध में यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है—“भाषा हमारी प्राचीन भाषा ही थी, वही नागरी वा राष्ट्रभाषा थी। यदि उस समय भारत की कोई प्रधान राजधानी होती, वा यहाँ का कोई चक्रवर्ती राजा होता तो उसकी भी बहुत उन्नति होती।..... साहित्य की उन्नति और रक्षा की किसे सूझ रही थी। वैक्रमाब्द 770 में हुए, पुष्य कवि का काव्य, वा 812 के चित्तौराधीश महाराणा खुमान का रासों, यों ही केदार, कुमारपाल और अनन्य दासादि के काव्य दुर्लभ हैं।..... भाषा ही उसका भी नाम था

जिसका नाम पीछे से ब्रज भाषा भी रक्खा गया और जिसके साहित्य में एक से एक चमकीले बहुमूल्य रत्न अद्यावधि हमारे अभिमान और सन्तोष की सामग्री है।³⁶

इसी प्रकार की हिन्दी के सन्दर्भ में उनकी चिन्ता एक अन्य निबन्ध 'हमारे देश की भाषा और अक्षर' में देखी जा सकती है—“हम अनेक बार कह चुके हैं कि पश्चिमोत्तर देश के निवासियों को चाहिए कि जिस नगर में श्रीमान लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बहादुर जायें वहीं उनको नागरी के प्रचारार्थ मेमोरियल दिये जायें और उनसे प्रार्थना की जाय कि अदालतों में हिन्दी का प्रचार करें, परन्तु पश्चिमोत्तर देश के हिन्दी हितैषियों ने इसमें आलस्य किया अब तक भी आलस्य कर रहे हैं।”³⁷

प्रेमघन के साहित्यिक ज्ञान का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि उन्होंने विभिन्न साहित्यिक विषयों एवं लेखों पर समालोचनायें लिखी हैं भारतेन्दु के 'नील देवी' गीत रूपक की समालोचना करते हुये वे लिखते हैं—“नीलदेवी हमारे प्रियवर श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र जी रचित ऐतिहासिक दुखान्त गीत रूपक!.....इसमें सातवाँ दृश्य (विशेष लावनी) आठवाँ (इसके पागल का पाठ बहुत ही उत्तम है) अच्छे हैं और दसवाँ में तीनों दृश्य अच्छे हैं।”³⁸

उनके साहित्यिक निबन्धों में अलंकारिकता, भाषा में श्लेषात्मकता होने के कारण एवं हास्य परिहास, व्यंग्य विनोद, शैली के समावेश से सजीवता का पुट बना रहता है। उन्होंने निबन्ध लेखन को कला के रूप में ग्रहण किया है साहित्यिक समालोचना का सूत्रपात प्रेमघन ने ही किया था।

विविध निबन्ध :

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक आदि निबन्धों के अतिरिक्त अन्य विविध विषयों पर भी बहुत से निबन्ध लिखे हैं। उनके साहित्य में सामाजिक लेखों की प्रधानता दिखाई पड़ती है। सभी निबन्धों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का प्रेमघन के लेखन में जैसा समुचित चित्रण हुआ है वैसा अन्य लेखकों में कम पाया जाता है बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रेमघन ने अधिक से अधिक विषयों पर अपनी लेखनी का प्रयोग किया है। उनके विषय में प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय ने 'प्रेमघन सर्वस्व' की भूमिका में लिखा

है—“प्रेमघन जी कवि ही नहीं थे वरन् वे उच्चकोटि के हिन्दी के गद्य लेखक भी थे। उनका साहित्य पद्य में तो बहुमुखी था ही, पर गद्य में भी आपने निबन्ध, आलोचना, नाटक, प्रहसन, लिखकर तत्कालीन परिस्थितियों का अपने निबन्धों तथा नाटकों में बड़ी पटुता से निर्वाह किया है।”³⁹

प्रेमघन ने विविध विषयों पर आलोचनात्मक निबन्धों में व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया है ‘स्थानिक सम्वाद’ निबन्ध को पडकर हमें उनके विविध निबन्धों का पता लगता है रस, पात्र कथावस्तु, कथोपकथन इत्यादि का ज्ञान होता है इस निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—“अब पानी ने धोकर कजली को उजली कर डाला, ऐसी झड़ी गली कि कोई घड़ी न अड़ी, सड़ी सड़क की कीच के बीच बिचारे मेले वाले दल-दल में फँसे बैल से बिलबिलाते म्यूनिस्पल के नाम को चिल्लाते रो रो कर दोहरी बरसात कर दी, भागने में पैर की सहायता व्यर्थ देख पंक में पैरने से भी असमर्थ हो, बुद्धि खो, बिलखते, बन्दूक के छर्रे से बूदियों के आघात सहते, मूँ लटकाये अपने करम को झीखते थे।”⁴⁰

प्रेमघन एक सम्पादक भी थे और इस सम्पादक की दृष्टि सदैव समाज के विविध विषयों को खोजती ही रहती दिखाई देती है देश के ‘अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक’ ‘भारतेन्दु-अवसान, गुप्त गोष्ठी गाथा, स्थानिक संवाद, स्थानिक संवाद, अब क्या करें, पंच का विज्ञापन, प्रेषित पत्र इत्यादि उनके विविध विषयों पर आधारित निबन्ध हैं।

प्रेमघन अंग्रेजी शासन के अत्याचारों के विरुद्ध थे किन्तु वे उनकी अंग्रेजियत का अनुसरण करने वाले भारतीय नवयुवकों से भी सहानुभूति रखते थे। ये बात उनके एक निबन्ध की कुछ पंक्तियों से स्पष्ट होती है—“हिन्दी समाचार पत्रों के सम्पादकों में भी लेख और अन्योन्य सहायता की कुछ चिन्ता नहीं है। एक कुछ कहता है तो दूसरा कुछ, एक विषय अवश्य ऐसा है कि जिसमें प्राय बहुत से एक मत हैं और वह यह है कि देश के नवयुवकों और विशेष कर अंग्रेजी विद्या के विद्वानों पर नितान्त रुष्ट दोषारोपण करना। उनकी छोटी भूलों पर निर्दय कुटिल वचनों से भरी पंक्तियाँ लिखना क्या सचमुच हमारे देश के युवक निन्दनीय हैं ? क्या देश की ऐसी दीन दशा उन्हीं के

द्वारा हुई है? कोई कहते हैं कि इन्हीं सबों ने कांग्रेस कर इन दश वर्षों में जितना धन खोया उससे बहुत कुछ देश की उन्नति हो सकती थी।”⁴¹

भारतुन्दु जी के असामयिक देहान्त पर उन्होंने जो लेख लिखा, उससे उनकी लेखनी का बौद्धिक स्वरूप हमारे सामने आता है — “इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य का शरीर अवश्य अनित्य और नाश होने वाला है परन्तु जीवन पर्यन्त मनुष्य के मन में इसका मन कदापि नहीं होता कि हमें भी एक दिन मरना होगा। महाराज युधिष्ठिर ने ठीक कहा है कि दुनिया देखती है कि सब लोग मरते चले ही जाते हैं, पर तौ भी उन्हें रहने की उम्मीद बनी ही रहती है, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या है..... वह अपने निश्चित सिद्धान्तों को पक्का और अपने कर्तव्यों कार्यों के करने में सदैव बद्ध परिकर रहा।”⁴²

प्रेमघन निबन्ध लेखन में कोई श्रेणी बद्धता न दिखाते हुये किसी भी विषय पर अपनी लेखनी का जादू दिखाने में सफल हुये हैं उनके द्वारा उठाया गया विषय किसी भी क्षेत्र में सम्बन्धित हो सकता है कांग्रेस के अधिवेशन के सम्बंध में उन्होंने लिखा है—“कभी सोता, कभी जगता, कभी करवटें बदलता, लढ़खड़ाता, हमारा प्यारा श्री भारतधर्ममहामण्डल भी अब की बार कलकत्ते में उसी समय पर अपना रंगीन और आग्रही चश्मा लगाये पहुँचता है।.... हमारी इच्छा है कि यह सदैव के लिये स्थिर हो जाय कि कांग्रेस के साथ ही वरन् उसी के मण्डप में इसके भी अधिवेशन हुआ करें, जैसी प्रार्थना कि हम पहिले भी कर चुके हैं।”⁴³

श्री बदरीनारायण ने ‘समय’ नामक लेख में पौराणिक विषय को माध्यम बना कर आलस्य जैसी बुराइयों पर प्रकाश डाला है—“मायावी रावण जब भगवान् रामचन्द्र के रुधिरपाई बाणों से छिन्न—भिन्न हो पृथ्वी पर अपना पर्वत सरीखा अपार शरीर लिये गिरा, और आकाश त्रिभुवन के हर्षनाद से पूरित हो गया, और अन्तिम झटके उसे श्वास के आने लगे,..... आलस्य लोहे की मुर्चा — सी लिपट जौहर खा जायगी फिर किसी कार्य के करने का उत्साह जाता रहेगा। क्या आश्चर्य कि ‘छाती पर की गूलर’ मैं में डालने को दूसरे से कहना हो।”⁴⁴

निष्कर्ष :

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष के रूप में कहा जाता है कि ये भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्य सेवियों में से थे। उन्होंने कुशलता पूर्वक 'आनन्द कादम्बिनी' का समपादन किया उनके गद्य में कोमल पद रचना का सफल प्रयोग दिखाई देता है। ये अलंकार शैली के प्रकांड पंडित थे, तथा शब्द चयन पर इनका पूर्ण नियन्त्रण था। उनके निबन्धों में उर्दू के शब्द भी मिलते हैं और क्लिष्ट संस्कृत के शब्द भी। उन्होंने निबन्धों की भाषा में मुहावरों का भी प्रयोग किया है, तथा काव्यात्मकता की भी झलक देखने को मिलती है उन्होंने विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक तथा वर्णनात्मक निबन्ध लिखे। भारतेन्दु युग में विचारात्मक निबन्धों का जनक इन्हीं को माना जाता है। उनके निबन्धों में विचारों की प्रधानता पायी जाती है प्रेमघन ने विचारात्मक, आलोचनात्मक तथा वैयक्तिक निबन्धों की रचना करके हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की है प्रेमघन भाषा प्रयोग में समयानुकूलता के समर्थक थे, समय के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग करते थे। प्रेमघन ने अन्य गद्य लेखक शैली का निर्माण किया और प्रत्येक विषय तथा वाक्य को कलात्मकता प्रदान करके उसकी पूर्ण विवेचना के पक्षधर रहे। उन्होंने अधिकतर खड़ी बोली का प्रयोग किया है। प्रेमघन ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा विविध विषयों पर अनेक निबन्धों की रचना की है। स्वदेश प्रेम इनका प्रिय विषय रहा है।

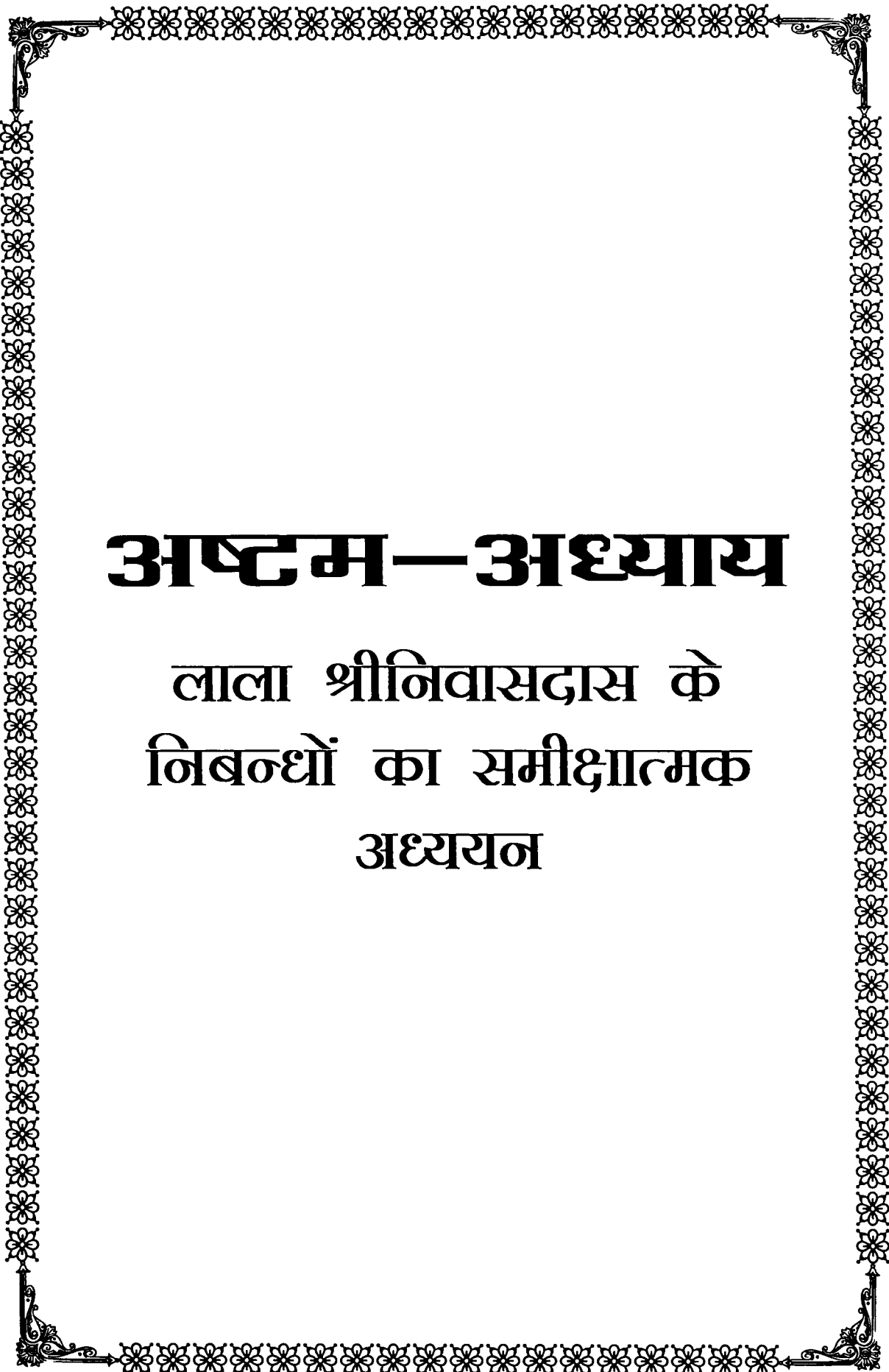
सन्दर्भ :

1. किशोरीलाल गुप्त; भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० 361 (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस प्रथम संस्करण 1956)
2. डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : हिन्दी गद्य शैली का विकास, पृ० 52
3. प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भूमिका, पृ० 16
4. भारतीय प्रजा के दुख की दुहाई और ठिठाई पर गवर्नमेंट की कड़ाई, आनन्द कादम्बिनी माला 7, मेघ 10,11
5. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भारतीय प्रजा में दो दल, पृ० 227

6. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार, पृ0 234
7. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार, पृ0 216-217
8. शिवनाथ, एम0ए0: भारतेन्दु युगीन निबन्ध, पृ0 64 (सं0 2010 वि0) प्रकाशक, सरस्वती मन्दिर बनारस
9. डॉ0 ओंकारनाथ शर्मा: हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ0 127
10. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भारतीय प्रजा में दो दल, पृ0 224
11. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, हमारे धार्मिक, सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, पृ0 196
12. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, समय, पृ0 60
13. डॉ0 ओंकारनाथ शर्मा: हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ0 128
14. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, हमारे धार्मिक, सामाजिक वा व्यावहारिक संशोधन, पृ0 198-199
15. वही, बेसुरी तान पृ0 45-46
16. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, त्रिवेणी तरंग, पृ0 57
17. वही, भूमिका, पृ0 20
18. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भूमिका, पृ0 21
19. वही, भूमिका, पृ0 21
20. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भूमिका, पृ0 22
21. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भारतीय नागरी भाषा, पृ0 339
22. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार, पृ0 212
23. वही, रंग की पिचकारी, पृ0 229
24. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, विधवा विपत्ति वर्षा, पृ0 117
25. वही, शोकोच्छ्वास, पृ0 164
26. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, बनारस का बुढ़वा मंगल, पृ0 111
27. वही, , पृ0 122
28. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भारतवर्ष की दरिद्रता, पृ0 240
29. श्री प्रभाकरेश्वर उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, नागरी समाचार पत्र और उनके सम्पादकों का समाज, पृ0 264
30. वही, , तृतीय साहित्य सम्मेलन कलकत्ते के सभापति का भाषण, पृ0 325
31. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार, पृ0 212
32. वही, , रंग की पिचकारी, पृ0 229

33. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, ऋतु वर्णन, पृ0 36
34. वही, ,हमारा नवीन संवत्सर, पृ0 413
35. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, बेसुरी तान, पृ0 339
36. वही, , भारतीय नागरी भाषा, पृ0 339
37. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, हमारे देश की भाषा और अक्षर, पृ0 71
38. वही, ,नीलदेवी की समालोचना, पृ0 370
39. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भूमिका, पृ0 16
40. वही, ,स्थानिक संवाद, पृ0 461
41. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक, पृ0 191
42. श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय: प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, भारतेन्दु अवसान, पृ0 76
43. वही, , भावी भारतीय महा-सम्मिलन, पृ0 211
44. वही, , समय, पृ0 59



A decorative rectangular border with a repeating floral pattern, featuring small flowers and leaves, framing the central text.

अष्टम—अध्याय

लाला श्रीनिवासदास के
निबन्धों का समीक्षात्मक
अध्ययन

अष्टम अध्याय

लाला श्रीनिवासदास के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन

हिन्दी गद्य के विकास में लाला श्रीनिवास का उल्लेखनीय योगदान प्राप्त होता है। वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन थे, उनका जन्म सं० 1907 में हुआ था और मृत्यु सं० 1944 में हुई। भारतेन्दु की तरह उनका भी बहुत कम आयु में निधन हो गया था। उनका हिन्दी प्रेम भी भारतेन्दु के समान ही उत्कृष्ट था। श्रीनिवासदास बचपन से ही बड़े मेधावी और कार्य कुशल थे। उन्होंने घर पर ही हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की और उसके बाद अल्पायु में ही अपने पैतृक व्यवसाय को संभाल लिया। डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने उनके विषय में लिखा है—“इनकी योग्यता देखकर पंजाब सरकार ने इन्हें म्यूनिसिपल कमिश्नर और औनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया और अनेक पत्रों ने सं० 1940 में इनका नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिये भी प्रस्तावित किया। अपनी योग्यता और कार्यकुशलता के कारण ये वैश्य समाज और राजकीय शासकों द्वारा समान रूप से आहत थे।”¹

लाला श्रीनिवासदास की रचनाओं से उनके विस्तृत ज्ञान का परिचय मिलता है। व्यापार के कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहते हुये भी उन्हें अध्ययन की लगन थी और उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी में प्रचुर साहित्य का अध्ययन किया था। उन्होंने ‘कविवचन सुधा’, ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ तथा ‘भारतेन्दु’ में अनेक लेख लिखे। उनके निबन्धों एवं लेखों की अनुपलब्धता के कारण उनके निबन्ध लेखन के विषय में अधिक विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाना बड़ा कठिन कार्य है। नाटक एवं उपन्यास के क्षेत्र में उनका योगदान अधिक है। उन्होंने चार नाटक एवं एक उपन्यास की रचना की। इस सन्दर्भ में डॉ० कृष्णलाल ने श्रीनिवास ग्रंथावली में लिखा है— “अपने व्यस्त अल्प जीवन में इन्होंने चार नाटक और एक उपन्यास लिखा, ‘सदादर्श’ पत्र का संपादन किया, साथ ही ‘कविवचन सुधा’, ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ तथा ‘भारतेन्दु’ में लेख भी लिखते रहते थे।”²

श्रीनिवासदास ने उस समय कलम उठाई जब धीरे-धीरे उर्दू का हास और संस्कृत की तत्समता का प्रभाव बढ़ रहा था। उन्होंने उर्दू तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उनकी भाषा के संदर्भ में आचार्य चतुरसेन ने अपनी पुस्तक हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास में लिखा है—“उनकी भाषा संयत, सुबोध और दृढ़ है, इनके नाटकों की भाषा वक्तृता के अनुकूल है, और उपन्यास वर्णनात्मक। इसमें दिल्ली का पंछाहीपन है। भट्ट, मिश्र आदि की भाषा में पूर्वीपन और पण्डिताऊपन है। वह बात इनकी भाषा में नहीं है। ‘इस्की’, ‘उस्की’, ‘उस्में’, ‘किस्पर’, ‘इस्तरह’, ‘टैर’ आदि विभक्तियों के प्रयोग में भी प्रांतीयता है, जैसे सै (से) मैं (में) आदि। धैर्य को धीर्य या ‘धीरर्य’ और शान्त को शान्ति लिखते थे। व्याकरण का बन्धन भी शिथिल है।”³

लाला जी निबन्धों के क्षेत्र में उतने प्रसिद्ध नहीं हैं जितने कि नाटक और उपन्यास के क्षेत्र में हैं। ‘सदादर्श’ नामक पत्र उन्होंने 1874 में दिल्ली से निकाला था, उसी में कुछ निबन्धों को प्रस्तुत किया है। उसकी भूमिका के रूप में भी उनके लेख साहित्यिक महत्त्व रखते हैं। उनके निबन्धों में वह विनोद और मनमौजीपन नहीं है, जो भारतेन्दु युग के अन्य निबन्धकारों में था। इनकी भाषा संयत और साफ—सुथरी होती थी। उनके सन्दर्भ में शिवनाथ ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु युगीन निबन्ध में लिखा है—“लाला श्रीनिवास के निबन्धों को देखने से विदित होता है कि वे बहुपट व्यक्ति थे।”⁴

लाला श्रीनिवासदास के निबन्ध उद्देश्य परक होते थे। भावात्मकता का पुट कहीं-कहीं पर प्रबल होता दिखाई देता है। उनका ‘भरत खण्ड की समृद्धि’ शीर्षक निबन्ध बड़ा प्रभावशाली है। इस निबन्ध की कुछ पंक्तियों से उसकी शैली का परिचय प्राप्त होता है— “हाय ये वोही आर्यावर्त है जिसको देखने को सब विलायत वालों को अभिलाषा रहती थी। ये वोही भारतखंड है, जिसके वैद्य खलीफा हारूरशीद की औषधी करते थे। ये वोही मध्यदेश है जिसके एक पंडित को सिंकदरशाह प्रतापी बड़े सम्मान से अपने संग ले गया था। ये वोही आर्यावर्त है जहाँ से पंचतंत्र का और शतरंज का खेल ले जाकर बुजुर्चि महर ने नौशे खां को भेंट किया था।”⁵ इस निबन्ध के संदर्भ में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा का कहना है—“लेखक ने इसमें भारतवर्ष के प्राचीन गौरव की

गाथा गाई है। भारत की कला, कौशल आदि की महिमा का वर्णन करके आधुनिक भारत की दुर्दशा को निरूपित किया है।”⁶

उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य साहित्य का प्रचार होने पर शृंगार और वैराग्य का साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाने लगा वहाँ नीति साहित्य की उपेक्षा ही दिखाई पड़ती है। गद्य साहित्य के प्रारम्भिक चार महारथियों में लल्लूलाल ने ‘राजनीति’ के नाम से हितोपदेश का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद कर नीति साहित्य की नींव डाली। वहीं लाला श्रीनिवासदास ने गद्य साहित्य में अपने उपन्यासों नाटकों एवं निबन्धों के माध्यम से हिन्दी गद्य साहित्य की प्रचुर मात्रा में सेवा की है। भारतेन्दु युग में बोलचाल की भाषा में जिस शब्द का जैसा उच्चारण होता था लिखने में भी वही रूप रखा जाता था। जैसे उस्का, इन्का, जान्ना आदि। लाला श्रीनिवासदास कई भाषाओं के विद्वान थे, इसलिये उनकी भाषा में गति और शब्द-भण्डार में विविधता मिलती है। उसमें तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी सभी प्रकार के शब्द और मुहावरों का प्रयोग उन्होंने किया है। श्रीनिवासदास कवि नहीं थे परन्तु आवश्यकतानुसार प्राचीन संस्कृत के सुभाषितों तथा अंग्रेजी की उक्तियों का अनुवाद अवश्य कर सकते थे।

लाला श्रीनिवासदास ने उपन्यास और नाटक में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। ‘परीक्षागुरु’ उपन्यास को आचार्य शुक्ल ने हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है। उन्होंने प्रह्लाद चरित्र, ‘तप्ता संवरण’, ‘रणधीर प्रेममोहिनी’, संयोगिता स्वयंवर आदि नाटक भी लिखे हैं। श्रीनिवासदास ने ‘सदादर्श’ नामक पत्रिका का सम्पादन किया और इसके माध्यम से उन्होंने निबन्धों एवं कथा साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। वैसे तो लाला श्रीनिवासदास के निबन्ध आसानी से उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनकी उपन्यास एवं नाटक क्षेत्र में अमूल्य सहयोग से ये आसानी से कहा जा सकता है कि उनके निबन्ध अवश्य ही पाठकों को साहित्यिक सन्तुष्टि प्रदान करने में सफल होते होंगे। कभी-कभी कोई रचनाकार प्रत्यक्ष रूप से किसी क्षेत्र में नहीं होता किन्तु उसका परोक्ष सहयोग को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। उन्होंने अंग्रेजी ढंग का हिन्दी में पहला उपन्यास ‘परीक्षागुरु’ लिखा। स्पष्ट है कि उनकी साहित्यिक विधा से उस युग के अनेक निबन्धकारों ने लाला जी की रचना शिल्प और लेखन से प्रभावित होकर जो

निबन्ध लिखे होंगे उन पर लाला के परोक्ष सहयोग से इंकार नहीं किया जा सकता है।

लाला जी की पत्रिका 'सदादर्श' के विषय में अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी किन्तु हिन्दी गद्य साहित्य की प्रगति और विकास में इनका अमूल्य सहयोग है। लाला के समकालीन लेखन में अधिकतर निबन्ध भी कथा आदि के रूप में लिखे जाते थे। इनका 'भरतखंड' नामक निबन्ध पढ़ने से इनके रचना कौशल का अन्दाजा सहज रूप में लगाया जा सकता है। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में अग्रणी भूमिका निभाने वाले लेखक को चाहे उपन्यास, नाटक एवं निबन्ध कला के किसी भी रूप में देखें वो एक मार्गदर्शक के रूप में खड़े दिखाई देते हैं, और उनका यही योगदान हिन्दी साहित्य पर अमिट प्रभाव छोड़ता है।

निष्कर्ष :

लाला श्रीनिवासदास ने चार नाटक एक उपन्यास और कविवचन सुधा में निबन्धात्मक लेख लिखे। श्रीनिवासदास कई भाषाओं के विद्वान थे। इसलिये उनकी भाषा में गति और शब्द भंडार में विविधता मिलती है। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। श्रीनिवासदास ने बहुत सारे लेख लिखे, उसमें से कुछ प्रकाशित नहीं हो सके और वो उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुये। इनकी रचनाओं के आधार पर ये निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के निबन्ध क्षेत्र में इनका समुचित योगदान नहीं है अपितु हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार के रूप में तथा अच्छे नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके निबन्धों के गहन अध्ययन हेतु अभी और सक्रिय अनुसंधान की आवश्यकता है। अनुप्लब्ध लेखों की खोज और उनकी प्रमाणिकता के बाद ही निबन्ध क्षेत्र में समुचित समीक्षा का कार्य संभव है।

लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास तथा नाटकों से हिन्दी साहित्य में विकास के जो भी लक्षण देखने को मिलते हैं उनमें कहीं न कहीं इनकी रचनाओं को भी श्रेय मिलना चाहिए क्योंकि इनके बाद जो भी निबन्ध साहित्य क्षेत्र में विकास हुआ उन पर इनकी रचनाओं के अप्रत्यक्ष प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

श्रीनिवासदास विद्वान तथा योग्य व्यक्ति थे तभी तो इनको लेजिस्लेटिव कौंसिल हेतु प्रस्तावित किया गया। व्यापारिक व्यस्तता के रहते हुये भी इन्हें अध्ययन की लगन थी और हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्रस्तुत किया। 'सदादर्श' नामक पत्र का सम्पादन किया और 'कविवचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' एवं 'भारतेन्दु' पत्र में इनके लेख प्रकाशित हुये हैं, किन्तु अथक प्रयासों के बाद भी अध्ययन हेतु उपलब्ध नहीं हो सके हैं। इन्होंने उर्दू की तत्सम शब्दावली का प्रयोग उस युग की आवश्यकतानुसार प्रभावपूर्ण ढंग से किया है।

इनकी भाषा संयत, सुबोध और दृढ़ है। अन्य रचनाओं के आधार पर ये कहा जा सकता है कि भाषा में व्याकरण का बंधन शिथिल ही है। इनकी भाषा संयत और साफ-सुथरी है और यही कारण है कि उसमें भारतेन्दु युग के अन्य निबन्धकारों जैसा विनोद और मनमौजीपन नहीं है।


'भारतखण्ड की समृद्धि' नामक निबन्ध हिन्दी साहित्य के निबन्ध क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें इन्होंने प्राचीन भारत की महत्ता का खुलकर गुणगान किया है। किन्तु ये भारत की दुर्दशा जो कि अंग्रेजी शासन के समय थी, उससे विचलित दिखाई देती है। इस निबन्ध के गहन अध्ययन के बाद में भलीभांति ज्ञात हो जाता है कि सांस्कृतिक निबन्ध के सारे लक्षण इसमें विद्यमान हैं। भारतीय संस्कृति के इस निबन्ध में समुचित दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक रूप से यदि देखा जाये तो इस निबन्ध में ऐतिहासिकता के भी दर्शन होते हैं और इस निबन्ध को ऐतिहासिक निबन्धों की श्रेणी में रखा जा सकता है। महापुरुषों के जीवन चरित का भी उल्लेख इस निबन्ध में देखने को मिलता है। अतः लाला श्रीनिवासदास द्वारा रचित निबन्ध अधिक मात्रा में नहीं हैं तब भी अल्प रचनाओं के आधार पर ही इनके योगदान को हिन्दी निबन्ध साहित्य में अनदेखा नहीं किया जा सकता और निबन्धों के आरम्भिक विकास में इनकी अमूल्य सेवा सराहनीय रही है।

सन्दर्भ :

01. डॉ० कृष्णलाल : श्रीनिवास ग्रन्थावली, पृ० 5

02. वही
03. आचार्य चतुरसेन : हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० 477
04. शिवनाथ : भारतेन्दु युगीन निबन्ध, पृ० 44
05. डॉ० विनयमोहन शर्मा : हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, पृ० 280
06. डॉ० ओंकारदास शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 130



A decorative rectangular border with a repeating floral pattern, featuring small flowers and leaves, framing the central text.

नवम—अध्याय

राधाचरण गोस्वामी के निबन्धों
का समीक्षात्मक अध्ययन

नवम अध्याय

राधाचरण गोस्वामी के निबन्धों का समीक्षात्मक अध्ययन

पंडित राधाचरण गोस्वामी की प्रतिभा अद्वितीय तथा बहुमुखी थी उदारता, सत्यवादिता, कर्मठता, देश व राष्ट्रप्रेम के साँचे में उनका निर्भीक व्यक्तित्व ढला हुआ था। हिन्दू, हिन्दी और हिन्दोस्तान की उन्नति ही उनके जीवन का उद्देश्य था। उनका सम्पूर्ण साहित्य तत्कालीन विकृतियों का उद्घाटन करते हुये नवीन आदर्शों की स्थापना के साथ जन जीवन में नवचेतना का संचार करता है गोस्वामी जी ने हिन्दी और संस्कृत के साथ ही साथ अपने शैक्षणिक जीवन काल में बंगला, उर्दू, गुजराती, मराठी और सराफी का गम्भीर अध्ययन किया। इसके सन्दर्भ में डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी ने अपनी पुस्तक श्रीगोस्वामी राधाचरणजी: व्यक्तित्व तथा कृतित्व में लिखा है—“गोस्वामी जी के व्यक्तित्व और साहित्यकार के दर्शन हमें विभिन्न रूपों में होते हैं। उनकी रचनाओं की संख्या सहज ही पचास को लांघ जाती है इसके अतिरिक्त उनके विभिन्न निबन्ध, लेख, भाषण आदि की संख्या 200 के लगभग है उनके संग्रहालय में विभिन्न विद्वानों द्वारा उनको भेजे गये लगभग 65000 पत्र सुरक्षित हैं..... वे साहित्य क्षेत्र में सफल नाटककार, कथाकार, निबन्धकार, पत्रकार और एक जागरूक कवि थे।”¹

गोस्वामी जी के नाटक व उपन्यासों की तरह निबन्ध भी हिन्दी के साहित्यिक विकास को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। निबन्धों में गोस्वामी जी ने कवित्व को प्रभावी नहीं होने दिया है और अपने विचारों को सीधे सीधे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में निबन्ध कला को माध्यम बनाया गया है विषय की अनेक रूपता और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से गोस्वामी भारतेन्दु से भी बहुत आगे दिखाई देते हैं। उनके निबन्धों की संख्या भारतेन्दु द्वारा लिखित निबन्धों से लगभग चार गुना अधिक है। गोस्वामी जी की निबन्ध रचना का प्रारम्भ सन् 1876 ई० के हिन्दुबान्धव और कविवचन सुधा में प्रकाशित सुन्दरी समाचार शतरंज, पदार्थ विद्या, हिन्दोस्तानी बोली, आर्यभाषा

निर्णय आदि लेखों से होता है उनके द्वारा लिखित निबन्धों में भारत की अभावग्रस्त दशा तथा दोषों एवं ज्ञान विज्ञान की झलक मिलती है जिनमें उन्होंने कहीं समाज, शासन व धर्म आदि की कटु आलोचना की है तो कहीं व्यंग्यपूर्ण आशीष। सामयिक परिस्थिति तथा गोस्वामी जी के अपने सुधारवादी दृष्टिकोण का प्रभाव उनके निबन्धों के विषय चयन व निरूपण में अत्यधिक पड़ा है उनकी बहुमुखी प्रतिभा के कारण उनके निबन्धों में विविधता तथा अनेक रूपता देखने को मिलती है।

श्री राधाचरण ने सामाजिक विषय पर अधिकतर निबन्धों की रचना की है। भारतेन्दु युग का वर्णन इनके निबन्धों में देखने को मिलता है – “श्री राधाचरण गोस्वामी ने ‘भारतेन्दु’ नामक मासिक पत्रिका संवत् 1890 में वृन्दावन से निकाली थी। इनके निबन्ध प्रायः इसी पत्रिका में मिलते हैं, जो विशेषतः सामाजिकता को ही लेकर चले हैं।..... कुछ लोग ऐसे थे जो उस समय थियोसोफिकल सोसाइटी से विशेष प्रभावित हुये थे। इस सोसाइटी का प्रभाव भारत के उच्च वर्ग के लोगों पर ही दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार ब्रह्मसमाज का प्रभाव भी उस समय अच्छा था। राधाचरण गोस्वामी पर भी इस समाज का प्रभाव पड़ा था और उन्होंने इसके पक्ष में कुछ निबन्ध भी लिखे थे, जो ‘हिंदू बांधव’ में मिलते हैं श्री राधाचरण गोस्वामी के निबन्ध और लेख बड़े मनोरंजक तथा प्रौढ़ होते थे इस दृष्टि से वे उस समय के प्रतिनिधि निबन्धकारों की श्रेणी में बिठाये जा सकते हैं।”²

श्री राधाचरण जी का निबन्धकार अपने सुधारवादी उद्देश्य के साथ निबन्धों पर छाया हुआ होने के कारण उनके सभी निबन्धों में नवजागृति का युगान्तकारी तीव्र सन्देश प्रतिनिधित्व है। उनके निबन्धों को वस्तु विषय की दृष्टि से एक निश्चित सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है गोस्वामी जी ने भारतेन्दु की रचनाओं से प्रभावित होकर निबन्ध रचना को सुचारु रूप से जारी रखा। ये अधिकतर अपने निबन्ध ‘भारतेन्दु’ पत्रिका में प्रकाशित करवाते थे। कभी कभी ‘सार सुधानिधि’ आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी इन्हें छपवाया करते थे ‘हिन्दू बांधव’ में ब्रह्मसमाज सम्बन्धी कई निबन्ध लिखकर ब्रह्मसमाज की ओर अपना किंचित झुकाव भी उन्होंने दिखाया। अपने समय के अन्य पत्रों के लिये कुछ न कुछ अवश्य लिखा किसी को चोज तो किसी के लिये निबन्ध।

यात्रा सम्बन्धी विविध राजस्थानी प्रदेशों की यात्रा पर उन्होंने सुन्दर निबन्धों की सामान्य शैली से मिलती झुलती है 'पूर्णमा का चन्द्रोदय' जैसे गद्य काव्य में उनकी भाषा शैली का यह रूप देखिये—“..... काल रूपी लालटेन है। गढ़ तोप का गोला है। मोतीचूर का लड्डू है। उस अनोखे खिलाड़ी के अनूठे ख्याल गाने की चंग है उस विचित्र विसाती का उट्टा बट्टा है कोहनूर है। हूर है। शुअला तूर है किसी यूरोपियन मिस का मुँह है।”³

शब्द चयन और वाक्य विन्यास लगभग सभी निबन्धों में एक सा ही है। आवश्यक स्थलों पर अलंकारिकता एवं तत्कालीन उपमानों के दर्शन भी होते हैं।

भारतेन्दु युग में निबन्धों में स्वप्न शैली की परिपाटी भी प्रचलित थी। इस सन्दर्भ में डॉ० ओंकारनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक हिन्दी निबन्ध का विकास में लिखा है—“गोस्वामी ने यमलोक की यात्रा’ स्वप्न शैली में ही लिखा। स्वप्न दृष्टा पच्चीस वर्ष की अवस्था में ही यमलोक जाने की तैयारी करता है उसकी नादिर शाह की स्तुति के दूत लेने आते हैं इसमें लेखक ने व्यंग्य और हास्य के द्वारा तत्कालीन स्थिति की उग्र आलोचना करायी है इसी में लेखक ने गाय के स्थान पर कुत्ते के द्वारा वैतरणी पार करने का उल्लेख किया है।”⁴

गोस्वामी जी ने ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, शिक्षा सम्बन्धी, यात्रा सम्बन्धी, राजनैतिक ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी आदि निबन्धों की रचना की है उनके निबन्धों का महत्त्व उनके नाटक और उपन्यासों से किसी भी प्रकार से कम नहीं आंका जा सकता है भारतेन्दु युग हमारे गद्य तथा पद्य की भाषा का निर्माणकारी युग था। देश की मूल उन्नति हेतु उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य भारतेन्दु की राह पर भाषा विकास को बनाया। उनकी भाषा का आधार संस्कृत होते हुये भी वह संस्कृतमय नहीं हैं उसमें भाव व्यंजक अरबी, फारसी, के शब्द इस प्रकार घुल मिल गये हैं कि वह हमारी भाषा के अंग प्रतीत होने लगते हैं। व्यंग्यात्मक निबन्धों में तो विभिन्न भाषाओं का शब्द, चयन हास्य की फुहार व तीव्र व्यंग्यों की बौछार करता हुआ, पाठकों के मस्तिष्क को हलका करता है। कहीं कहीं पर अनुभूति परक लोकोत्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग भाव गाम्भीर्य के साथ ही भाषा को गतिशीलता प्रदान करते हुये उसे

आकर्षक बना देता है। उनके निबन्धों की भाषा सर्वसाधारण के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करती हुई निरन्तर विकसित होती चली जाती है। देवीशरण रस्तोगी ने इस विषय पर अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास में लिखा है—“गोस्वामी जी के निबन्ध वस्तु भाषा शैली आदि द्वारा हमारा हृदय स्पर्श करते हुये एक अपूर्व आत्मीयता, समानता, एकता व बन्धुत्व प्रकट करते हैं। उनमें हमारा अपनापन निहित है। हमारे भाव ही गोस्वामी की वाणी में बोलते हैं वस्तुतः समाज के प्रत्येक क्षेत्र से गोस्वामी जी के अटूट सम्बन्ध होने के कारण उसकी मनोवृत्ति आचार विचार रहन-सहन, रीति रिवाज उसकी आस्थाओं आदि के वह सूक्ष्म पारखी थे। समाज के दुर्बल अंग पर दृष्टि पड़ते ही वह उसके परिष्कार हेतु तुरन्त अपना लेख प्रकाशित करते थे। उनके लेखों की संख्या सहज ही 200 से अधिक है।”⁵ श्री राधाचरण ने भारतेन्दु के सफल नेतृत्व और सहयोगियों के साधिन्नय से भाषा का एक स्थिर रूप निश्चित करके आगे के लेखकों के लिये निबन्ध का प्रशस्त मार्ग खोल दिया। इस सम्बन्ध में डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी के विचार इस प्रकार हैं—“गोस्वामी जी के निबन्धों की विविधता, विचार, सम्पन्नता, आत्मीयता, भाषा की स्वच्छता मधुरता, स्वाभाविकता विनोद प्रियता, चुलबुलापन, करारा व्यंग्य, युक्ति चमत्कार तथा उनका नव उमंग भरा व्यक्तित्व उन्हें सफल निबन्धकार घोषित करने के लिये पर्याप्त है।”⁶

गोस्वामी जी के लेख एवं निबन्धों के विषय जनता के विषय हैं उनमें जनता की वाणी, जनता की शैली में, जनता के लिये ही बोलती है उनके निबन्धों की विशेषता यही है कि वो सर्वसाधारण निबन्ध हैं। इसी लिये जयनाथ नलिन ने एक स्थान पर गोस्वामी जी के संदर्भ में लिखा है — “गोस्वामी जी प्रगतिशील विचारों में अपने समस्त युग का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके विचारों में उग्रता और प्रहार शक्ति दोनों हैं। व्यंग्य, परिहास तो उनके सभी सहयोगियों को पीछे ढकेल कर गोस्वामी जी को प्रथम पंक्ति में खड़ा कर देते हैं।”⁷

लेखक की परिस्थितियाँ एवं व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी शैली पर पड़ता है और निबन्ध शैली की कसौटी है। शैली की परख के लिये सुन्दर शब्द विधान आवश्यक हैं। भाषा की सघनता एवं उसका कसाव निबन्ध को सजीव बना देता है भारतेन्दु युग अन्य

गद्य विधाओं की अपेक्षा निबन्ध विधा में अधिक सम्पन्न है। गोस्वामी जी उस युग के एक प्रौढ़ निबन्धकार थे। निबन्ध क्षेत्र में भी उनके आदर्श भारतेन्दु ही होने के कारण भारतेन्दु की भाषा शैली का भी उन पर प्रभाव पड़ा है शैली की विविधता एवं सम्पन्नता के कारण गोस्वामी जी के निबन्ध आज भी नवीन व सरस प्रतीत होते हैं गोस्वामी जी की 'कवि कल्पना' में संस्कृत गर्भित शैली के स्वरूप को इस प्रकार देखा जा सकता है — "कवियों की भगवद्विषयिणी कल्पना, कल्पना मात्र ही नहीं, वरंच भगवान् उसे सत्य भी करते हैं यद्यद्विया त उसगाय विभावयन्ति । तत्तद्वपुः प्रणय से सदनुग्रहाय । और देश की तो नहीं जानते परन्तु भारतवर्ष तो आब्रहम — तृण-पर्यन्त कवि कल्पना से आबद्ध हैं यदि दिव्य दृष्टि से देखा जाय तो भारत कवि कल्पना की जन्म भूमि, रंगभूमि और शेष में शमशान भूमि भी होना चाहिये । 'मा निषाद प्रतिष्ठाम' से आरम्भ होकर देखें कवि वाणी कहां मोनावलम्बन करती है सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर भारत में फिर, किसी अमर कवि को उत्पन्न करें कि जिसकी वीणा-ध्वनि से मृतप्राय देश जाग्रत हो।"⁸

गोस्वामी जी के निबन्धों में उनकी अनुभूतिपरक सरस लोकोत्तियाँ व मुहावरे उनकी भाषा के प्राण हैं। यदि वह भावों से गर्भित हैं तो जीवन की गम्भीर अनुभूतियों से संचित भी। उनका उचित प्रयोग गोस्वामजी जी की अपनी कला है उनकी भाषा में मार्मिक अभिव्यंजना, सजीवता, मनोमोहक स्वच्छता, चपलता तथा गतिशीलता है उनकी शैली में परिहास व्यंग्यो की सरसता है, वह क्लिष्ट से क्लिष्ट और सरल से सरल भाषा लिखने में कुशल कलाकार हैं। एक जागरूक लेखक होने के नाते उनके लेखों में शैली वैविध्य पाया जाता है।

श्री राधाचरण के निबन्ध जनवादी होने के कारण चेतना की ही दृष्टि से नहीं अपितु शैली की दृष्टि से भी प्रायः विचारात्मक ही हैं। उनमें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि ढांचे के प्रति तीव्र असन्तोष की व्यंजना के साथ समस्त प्राण शोषक एवं घातक मनोवृत्तियों के लिए एक चुनौती है। उनकी विचारात्मक शैली के दो भेद किये जा सकते हैं, विवेचनात्मक शैली एवं आलोचनात्मक शैली। विवेचनात्मक शैली में बुद्धि की प्रधानता, चिन्तन, मनन, सजग मस्तिष्क स्वानुभूति परक

मौलिकता के दर्शन इस प्रकार होते हैं—“कवि यह दो अक्षर क्या मधुर हैं। संसार का सम्पूर्ण सौन्दर्य इसमें कूट कूट कर भर दिया है जिसको संसार कवि कह कर पुकारता है, उसकी प्रतिष्ठा चक्रवर्ती से भी अधिक है.... वैज्ञानिक पृथ्वी को निराधार बतलाते हैं कवि ने पृथ्वी को सहस्रशीर्ष भगवान के सिर पर सर्प के समान रख दी। दार्शनिक आकाश को शून्य बताते हैं कवि ने उसमें सप्तस्वर्ग बनाकर इन्द्र, एरावत, आकाशगंगा, नन्दन वन उर्वशी उमावती आदि भर दिये।”⁹

गोस्वामी जी की आलोचनात्मक शैली उनके चिन्तन तर्क योजना, व विवेचन प्रणाली की परिचायिका है एवं अत्यन्त बलशाली तथा प्रभावपूर्ण है अंग्रेजों के पक्षतापूर्ण न्याय को वह चुनौती देते हुये लिखते हैं कि — “लालो फूलपुर वाले, शाहजहाँपुर वाले, नील वाले, सैकड़ों मुकदमों की मिसालें हम दिखावे! अंग्रेजों के हजारों पक्षपात के उदाहरण। क्या सत्तनत करना लड़को का खेल है? इसी हिन्दुस्तान में इसी पृथ्वी में सैकड़ों राजाओं ने अपने प्रिय पुत्रों तक को दंड दिया। फिर क्या हाकिम होकर ईश्वर को साक्षी जानकर अपनी जाति को हाथों हाथ बचा लेना न्याय है।”¹⁰

‘स्त्री सेवा पद्धति’ गोस्वामी जी का स्तोत्र परम्परा पर लिखा हुआ स्त्रियों के चरित्र, आचार विचार, रहन सहन, प्रवृत्ति एवं उनकी पूजा पद्धति पर परिहापूर्ण निबन्ध है। वह कहते हैं—“स्त्री देवी! संसार रूपी आकाश में तुम बेलन हो क्योंकि बात बात में आकाश चढ़ा देती हो, पर धक्का देती हो तब समुद्र में डूबना पड़ता है।..... जीवन के मार्ग में तुम रेलगाड़ी हो..... तुम भव सागर में जहाज हो। इस अधम को पार करो।”¹¹

गोस्वामी जी के चिन्तन मनन तीव्र अनुभूति एवं कोमल कल्पना के समन्वय से उनके वर्णन प्रधान निबन्ध सरस, सुन्दर एवं प्राणवान हैं। वर्णन द्वारा वस्तु विशेष का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करने में वह सिद्धहस्त हैं उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप इनके वर्णनात्मक शैली में लिखे गये निबन्धों में मिलती है वर्णनात्मक शैली के अन्तर्गत उनके यात्रा सम्बन्धी सम्पूर्ण निबन्ध तथा ‘सुन्दरी समाचार’ स्त्री शिक्षा, पदार्थ विधा, खटका, कुम्भ का मेला, शवदाह, दीघ के भवन, कुरीति, विधवा-विवाह आदि उल्लेखनीय हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी के विचार इस प्रकार हैं—“गोस्वामी के यात्रा सम्बन्धी निबन्धों में विशेष आनन्दानुभूति होने लगती है। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि

गोस्वामी जी सम्पूर्ण चिन्ताओं को ताक में रखकर घूमने निकल पड़े हैं। उनके नेत्र सब कुछ देखने को खुले हैं। हृदय उन सबको ग्रहण करने के लिये आतुर है तो मस्तिष्क चिन्तन के लिये।¹²

श्री राधाचरण गोस्वामी के निबन्धों में संलाप शैली भी पायी जाती है इसमें प्रश्न भी होते हैं और यह लगता है कि पाठक एवं निबन्धकार आमने सामने बैठकर वार्तालाप कर रहे हों। इस शैली में उनका गोष्ठी साहित्य विशेष है। उसके अतिरिक्त 'विधवा विवाह विवरण' का एक उदाहरण प्रस्तुत है—“..... न मेरा कथन आपके सदैव वेद ध्वनि, पुराण पाठ राग रंग के अभ्यासी कणों को आकर्षित कर सकता है या घोर निद्रा में सोये हुये आप लोगों को मेरी छोटी पुस्तक पुकार कर जगा सकती है, न मैं आशा करता हूँ कि जो दुःख समुद्र मेरे हृदय में भरा है उसकी तरंगें आप लोगों को अच्छी लगेगी.... क्या मुझे बाल विधवाओं के दुःख दिखलाने के लिये कोई तस्वीर खींचनी होगी? क्या उनके दुःख समझाने के लिये कुछ प्रमाण देने होंगे।”¹³

गोस्वामी जी के अनेक लेख 'कविवचन सुधा,' 'मित्र विलास,' हिन्दुस्तान आदि तत्कालीन समाचार पत्रों में प्रेषित पत्र के अन्तर्गत प्रकाशित हैं 'विहार बन्धु' में तो गोस्वामी जी के समस्त लेख 'चीठी-पत्री' के नाम से प्रकाशित है। ऐसे लेखों में 'आर्य कौन,' 'बढ़ा का इतिहास' शाहजहाँपुर का इतिहास, हिन्दी के लेख आदि महत्त्वपूर्ण हैं उनकी इस पत्र शैली का यह उदाहरण प्रस्तुत है—“महाशय ! आजकल मेरा जाना किसी कारण से बढ़ा में हुआ है। इसलिये यहाँ का कुछ वृत्तान्त आपके पाठकों के आनन्दार्थ लिखता हूँ। यह नगर पहने जिले में एक छोटी सी मण्डी है।”¹⁴

श्री राधाचरण गोस्वामी की जीवन-चरितात्मक शैली के विषय में यह कहा जा सकता है कि इसमें लिखे गये निबन्ध साधारण कोटि के ही हैं क्योंकि सामान्य रूप से जन्म मृत्यु स्थल व तिथि तथा जीवन की सामान्य घटाओं का संक्षिप्त उल्लेख मात्र इनमें मिलता है। वस्तुतः गोस्वामी जी समाज, धर्म, राजनीति, साहित्य आदि क्षेत्रों में जिन महापुरुषों से अत्यधिक प्रभावित दिखाई पड़ते हैं उनमें से कुछ का जीवन चरित जनता के सामने रखकर उसका मार्ग दर्शन करने का प्रयत्न उन्होंने किया है। श्री नारायण स्वामी का जीवन चरित्र सेठ श्रीनिवासदास की जीवनी 'गल्लू जी महाराज का

जीवन चरित' गोस्वामी राधाचरण का जीवन चरित, पतित पावन श्री गौरांग आदि के जीवन चरित इस शैली के अन्तर्गत आते हैं। सेठ श्री निवासदास के जीवन के अंश की कुछ पंक्ति इस प्रकार हैं—“मथुरा के प्रसिद्ध धनी सेठ परिवार के प्रधान कार्यकर्ता मुनीम मंगीलाल के द्वितीय पुत्र सेठ श्रीनिवासदास जी का जन्म कार्तिक शुक्ला 1 संवत् 1908 को मथुरा में हुआ। बाल्यकाल में इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, गुजाती बंगला कुछ घर पर और कुछ स्कूल में पढ़ी। इनका यह गुण था कि जहाँ तक इन्होंने ज्ञान सम्पादन किया था चरित्र भी वही तक शुद्ध था। आलस्य नहीं था.... वर्ण गौर कद लम्बा मुख पर उनके माता के दाग थे। यह भाषा संबर्द्धनी सभा, अलीगढ़ के उपसभापति थे और हिन्दुस्तान की बड़ी कौंसिल में इनको मेम्बर करने के लिये कई बार समाचार पत्रों ने अनुमति दी।”¹⁵

गोस्वामी जी के निबन्धों में भावात्मक शैली की भी प्रधानता दिखाई देती है। इस शैली का प्रथम गुण हृदय के आग्रह की अभिव्यक्ति है हृदय का हर्षविनोद, आकर्षण, विकर्षण, ममता विरक्ति, आदि की गहन अनुभूतियों को तीव्र भावों द्वारा व्यक्त करने में गोस्वामी जी सिद्धहस्त हैं। उनके भाव मूर्त रूप से उपस्थित होते हैं। इन निबन्धों में गोस्वामी जी के भावुक हृदय के दर्शन होते हैं गोस्वामी जी अत्यन्त सहृदय एवं पर दुःखकातर महापुरुष थे। विधवा-विवाह नामक निबन्ध में उनके हृदय की गहराई को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है—“हाय! गजब! हाय! गजब! क्या हो गया यह । कैसे इस भारत का बेड़ा पार लगेगा? अबकी मर्दुमशुमारी से निश्चय हुआ कि भारत में साठ लाख आर्य विधवा हैं। वय बीस साल से तीस साल बरस तक ही हैं हा! इस वृत्तान्त को पढ़कर किस देश हितैशी, किस समाज, शोधकारी किस सत् पुरुष का हृदय शोक सागर में न डूबेगा।”¹⁶

गोस्वामी जी के निबन्धों के शैलीगत विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उनके विचारों की उग्रता, विषय की विविधता तथा शैली की अनेकरूपता व सम्पन्नता निबन्ध के अमरत्व के संरक्षक हैं। यद्यपि उनकी भाषा-शैली पर भारतेन्दु का प्रभाव स्पष्ट है तथापि इस क्षेत्र में वह भारतेन्दु से आगे दिखाई देते हैं।

कर्मन्दु शिशिर ने राधाचरण गोस्वामी की रचनाओं को चुन कर सम्पादित किया है उनके अनुसार निम्न रचनायें उपलब्ध हैं—यमलोक की यात्रा, एक नये कोष की नकल, नापित स्तोत्र, रेलवे स्तोत्र, मिस्टर बूट, रेलवे दोकट, पंडित सभा, कवि-सभा सुराज्य-कुराज्य, वैद्यराज स्तवराज, मूषक-स्तोत्र, प्रेस एक्ट का अचिन्तित फल, तुम्हें क्या, वेदों का अर्थ, भारतवासियों की महादुरवस्था, जार रूस के नाम चिट्ठी, नेटिव क्रिश्चियन, भारतवर्ष में धर्म-चर्चा, हमारा विश्वास करो, हम लोग अपने आप ही दुःख पाते हैं ! विहार का धार्मिक महत्त्व, हिन्दू बाल विधवाओं का न्याय ईश्वर के हाथ है विदेश-यात्रा-विचार, विधवा-विवाह-विवरण, उपसंहार, शिक्षा-सार, हिन्दोस्थान, हिन्दी पत्र वा हिन्दी ग्रंथ, खड़ी बोली का पद्य, प्रतिवाद, खड़ी बोली और ब्रज भाषा कविता, खड़ी बोली की कविता, कवि-कल्पना, पतित पावन गौरांग, देशोपकारी, पुस्तक, बूढ़े मुँह मुहासे लोग देखें तमासे, होली, शिशिर सुषमा, भारत पावस, दामिनी दूतिका सम्मेलन का स्वागत-भाषण, दो पद, नवभक्तमाल, सौदामिनी आदि।

ऐतिहासिक निबन्ध :

राधाचरण गोस्वामी ने विभिन्न विषयों पर अनेक निबन्धों की रचना की है। विषय की दृष्टि से उनके निबन्धों को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं जीवन चरित निबन्धों की श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है ऐतिहासिक निबन्धों के अन्तर्गत आर्य कौन, बड़ा का इतिहास, शाहजहाँपुर का इतिहास, डीग के भवन, भरतपुर स्टेट वृन्दावन का राजकीय समय, भारतवासियों की महादुरवस्था, जार रूस के नाम चिट्ठी हिन्दोस्थान, भारत पावस आदि निबन्ध उल्लेखनीय हैं इन निबन्धों में गोस्वामी जी के निबन्धकार ने इतिहासकार बनने की चेष्टा नहीं की है वरन् घटनाओं के बाह्य स्वरूप का ही चित्रण करके उनमें रागात्मक तत्त्वों को भरकर उनके अन्दर झांकने का प्रयास किया है। उनके ऐतिहासिक निबन्धों में चिन्तन व अनुभूति पक्ष प्रबल है गोस्वामी जी के ऐतिहासिक निबन्धों से इतिहासकारों को भी एक ठोस सामग्री की प्राप्ति होती है।

केदारदत्त तत्राड़ी के शब्दों में—“वृन्दावन का राजकीय समय निबन्ध में श्री कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु की वृन्दावन यात्रा (सन् 1505) से महारानी विक्टोरिया के शासन काल तक के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन होते हुये भी वह अपने में सर्वथा पूर्ण है

भौतिक वृन्दावन के प्राकट्य सनातन गोस्वामी जी का (1524 ई0) इस निविड़ वन को बसाना मदनमोहन जी की मूर्ति की स्थापना, रूप गोस्वामी का आगमन और श्रीगोविन्द जी के बड़े मन्दिर का (1536) निर्माण व प्रबन्ध, अकबर का राज्य वृन्दावन का बादशाही सूबे आगरा के अधीन (1590 से 1717 तक) रहना, भरतपुर जाटों का राज्य (1717-1788 ई0) आलमशाह दरबार द्वारा महाजी सिंधिया को आगरे की निजामत मिलना, 1803 ई0 में लार्डलेक द्वारा सिंधिया के अधिकार से आगरा छीन लेने की अत्यन्त मार्मिक तथा आकर्षक घटनाओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है, कि वृन्दावन के इतिहास का एक सुन्दर ढाँचा हमारे सामने खड़ा हो जाता है।¹⁷ बढ़ा और शाहजहाँपुर के इतिहास वर्णन में इन नगरों की भौगोलिक स्थिति, शिक्षा, जनसंख्या आवागमन के साधन, रहन सहन तथा व्यापारिक महत्त्व का वर्णन भी विस्तार पूर्वक किया गया है। शाहजहाँपुर निबन्ध की कुछ पंक्ति इस प्रकार हैं—“शाहजहाँ बादशाह के समय में बहादुर खाँ दलेल खाँ नामक दो मुसलमानों ने इसे बसाया। परन्तु अपने नाम से नगर को प्रसिद्ध नहीं किया बादशाह का नाम ही प्रधान रखा। अपने नाम से केवल दो गंज अर्थात् बहादुरगंज और दलेलगंज बसाये। यह नगर खांड के व्यापार के कारण सर्वत्र प्रसिद्ध है।.... यहाँ एक गवर्नमेंट सुपीरियर जिला, स्कूल और एक मिशन स्कूल है। परन्तु यहाँ जो आर्यसमाज था वह इन दिनों शिथिल तथा अर्न्तध्यान हो गई। आर्य दर्पण जो छपता था वह भी काशी को उठ गया। देशोन्नति के चिन्ह यहाँ कभी कभी दिखाई दे जाते हैं.... शाहजहाँपुर अवध रुहेलखण्ड रेलवे का प्रिंसिपल स्टेशन है।”¹⁸

भारतवर्ष में अंग्रेजी राज के अत्याचारों को गोस्वामी जी ने बड़े द्रवित मन से अपने निबन्ध ‘भारतवासियों की महादुरवस्था’ में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन किया है—“भारतवासी इस समय बड़ी आफत में हैं फौज के सिपाही मरने जीने की आशा छोड़, घर वालों से मुँह मोड़, उनसे जगत् का नाता तोड़ युद्ध क्षेत्र को चले हैं। गरीब-गुर्बा, कहार, भिस्ती, बारबर, ग्रासकट, जबर्दस्ती पकड़कर युद्धाग्नि की समिधों के लिये एकत्र किये जाते हैं कलेक्टर, तहसीलदार, कानूनगो बिचारे दिन रात भूख प्यास के मारे न्यारे-न्यारे गाँवों में खच्चर गधों की तलाश करते फिरते हैं? रेलवे

बालों की, सारे फौज की गतागत के, नाक में दम हो रही है। राजा महाराजा, कर्ज से दुखी मलिन, सुखी मन्त्रियों से विचार कर रहे हैं कि क्या मदद सरकार को दें।... भारतवासी इस समय घट घटी में पड़े हैं। इस समय इनकी दुरवस्था क्या महा—महादुरवस्था !!!¹⁹

राधाचरण गोस्वामी तत्कालीन व्यवस्था को भारतीय जनता के लिये हितकारी नहीं मानते थे। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और समाचार पत्रों पर अंकुश लगाने से वह अंग्रेजी प्रयासों की वह निन्दा करते थे। इस सन्दर्भ में गोस्वामी जी का निबन्ध 'प्रेस एक्ट का अचिन्तित फल' उल्लेखनीय है—“हमारी गवर्नमेण्ट ने प्रेस एक्ट का प्रचार करके समाचार पत्रों की स्वाधीनता हरली। विलायत तक अपील करने पर भी वह नहीं फेरी गई। देशी भाषाओं के समाचार पत्र उसके बिना अंतः शून्य हो रहे हैं। उनकी क्रान्ति अब बड़ी मलीन कि बहुना राजकलंक से यह सफल समाज में परिचित हो गये हैं। बड़े बड़े अध्यक्षों के आगे इनका पहिला सा आदर नहीं रहा। तात्पर्य यह है कि कौड़ी के तीन तीन हो गये।”²⁰

ऐतिहासिकता की दृष्टि से गोस्वामी जी के तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के चिन्तन को भलीभाँति समझा जा सकता है। अंग्रेजी शासन व्यवस्था एवं अन्य विदेशी शक्तियों के कुचक्रों से भारतीय जनता को निबन्धों एवं लेखों के माध्यम से सूचित करना गोस्वामी जी के ऐतिहासिक प्रयास के अन्तर्गत माना जायेगा। 'जार रूस के नाम चिट्ठी' निबन्ध उनके इन्हीं प्रयासों का फल है — “संस्कृत में 'जार' व्यभिचारी को कहते हैं। बस तभी आप रशिया, नायिका से तृप्त न होकर इण्डिया नायिका के पीछे पड़े हैं अथवा 'जार' उसे कहते हैं, जो जलाता हो। इस गुण में भी आप कम नहीं। रूस आपने जलाया, बुखारा आपने जलाया, काशगर आपने जलाया, अब भारतवर्ष को जलाना चाहते हो। इसी से हम अपने वचनामृत से आपके हृदय की अग्नि शीतल करते हैं यदि आप हमारी न सुनें तो हमारा क्या हर्ज?..... सुनिये आप हिन्दुस्तान के लेने का ख्याल अपने दिल से दूर कर दें। कसम खुदा की! नहीं, इसमें लाखों की जान जायगी, कितने देश ऊजड़ हो जायेंगे, सैकड़ों कोस पृथ्वी विधवा हो

जायगी ... पर खबरदार! एक पाँव आगे आगे न बढ़ाना हिन्दुस्तान के इश्क में हज़ारों बादशाह मर गये, पर किसी से हिन्दुस्तान राजी नहीं हुआ।²¹

राधाचरण गोस्वामी के ऐतिहासिक निबन्धों में देश की प्राचीन दशा के स्वस्थ तथा अर्वाचीन के ध्वस्तचित्र उपस्थित हैं। उनके ऐतिहासिक निबन्धों के सन्दर्भ में डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी के विचार हैं—“गोस्वामीजी जी के ऐतिहासिक निबन्ध इतिहास के सुन्दर ढाँचे हैं, वहाँ वे जनता में फैली हुई विभिन्न ऐतिहासिक भ्रान्तियों को निराकरण करते हुये हमारे प्रारम्भिक इतिहासकारों मोहनलाल, विष्णुलाल पांडया, राजेद्र लाल आदि को एक ठोस सामग्री प्रदान करते हैं वहाँ जनता को उज्ज्वल अतीत के लिये आकर्षित भी। अतीत का गौरव तथा वर्तमान की दुर्दशा दिखाकर वह जर्जरित जन जीवन को विकसित करना चाहते थे। उनके ऐतिहासिक निबन्ध गौरव गर्भित हमारे अतीत की पृष्ठभूमि पर नवजागरण का अमर सन्देश प्रतिध्वनित करते हैं इस वर्ग में शाहजहाँपुर का इतिहास, बदा का इतिहास भरतपुर स्टेट आदि उनके 17 लेख प्रसिद्ध हैं।”²²

राधाचरण गोस्वामी ने ऐतिहासिक निबन्धों के लेखन में विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है, ‘आर्य कौन’ नामक निबन्ध में उन्होंने विस्तार पूर्वक, गहन अध्ययन का प्रदर्शन किया है—“बहुतेरे अंग्रेजी ग्रन्थकारों का मत है कि हिन्दुस्तान में आर्य लोग सिंधिया से आये थे और यहाँ आकर हिन्दू कहलाये। उससे पहले हिन्दुस्तान में जो रहते थे वह जंगली भील आदि हैं वह शूद्र, दस्यु या राक्षस कहलाते थे। ग्रीक लोगों की पुरानी पुस्तकों में लिखा है कि ईरान के उत्तर और पूर्व में आर्य देश था, अब उसे मेजेन्ट्रीन कहते हैं उस देश में अब भी सोमलता पैदा हुआ करती है वही आर्य लोगों का असल देश और यज्ञादि कर्म की पुरानी जगह है। और दूसरा प्रमाण यह है कि आर्य लोगों का रंग रूप गोरा व सुन्दर और जंगली भारत वासियों का काला व कुरूप है इसलिये ये दो भिन्न भिन्न जातियाँ हैं।”²³

सांस्कृतिक निबन्ध :

पंडित राधाचरण गोस्वामी का युग सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक संघर्षों का युग था जिसके माध्यम से उन्होंने अपने निबन्धों द्वारा जनता का सही मार्ग दर्शन

कराया। उन्होंने कुंठित जन जीवन को विकसित करने के लिये ही समाज में व्याप्त विभिन्न दुराचारों की समाप्ति हेतु सांस्कृतिक निबन्धों के आदर्श रूप को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया। भारतीय संस्कृति में सामाजिक रूप से कदाचार और कुरीतियों ने अपने पैर फैला रखे थे। बाल व वृद्ध विवाह अन्धविश्वास, एवं सांस्कृतिक रीति रिवाजों का दुरुपयोग किया जा रहा था। वह एक वैष्णव सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य थे। स्वधर्म पर अडिग विश्वास होते हुये भी अन्य धर्मों के प्रति वह अत्यन्त उदार थे। धर्म के ठेकेदारों एवं पांखंडियों की गोस्वामी जी ने अपने निबन्धों के माध्यम से कटु आलोचना की है। विदेश यात्रा विचार नामक निबन्ध में वह लिखते हैं—“हम उन ब्राह्मणों को हजारों प्रणाम करते हैं जो देश की समाज की, दुर्दशा के दमन में लगे हुये हैं।..... हम मिथ्याडम्बर चतुर दुराग्रह ब्राह्मणों की एक बात को भी नहीं मानेंगे और न इनके कुटिल कटाक्ष व वानर-स्फालन से डरेंगे। क्योंकि देश और समाज की उन्नति को अपने जीवन का वृत्त है।”²⁴

पंडित राधाचरण गोस्वामी द्वारा रचित सांस्कृतिक निबन्धों की संख्या अनेक है भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने विचार मनन करके धार्मिक एवं सामाजिक उत्थान हेतु विकास परक निबन्धों की रचना की। उनकी सांस्कृतिक रुचि के सन्दर्भ में केदारदत्त तत्राड़ी अपनी पुस्तक श्री राधाचरणजी: व्यक्तित्व तथा कृतित्व में लिखते हैं—“गोस्वामी जी की उदारता के दर्शन सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु धार्मिक क्षेत्र में भी होते हैं माधव सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य होते हुये भी आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रति आस्था रखना तथा उसके उत्सवों में योगदान देना, यहाँ तक कि आर्य समाज के, मथुरा के वार्षिकोत्सव के अवसर पर अपनी ओर से पूरी कचौड़िया बांटना एवं अन्य सब धर्मों को आदर की दृष्टि से देखना उनकी उदारता थी। उनके लिए गिरजाघर, मसजिद आदि भी उतने ही पवित्र थे जितने कि माध्व सम्प्रदाय के मन्दिर। उन्होंने प्रतिज्ञा भी की थी कि ‘श्रौत वैष्णव और फ्रीमेशन इन तीनों धर्मों का निर्वाह करना चाहिए। गोस्वामीजी ने 24 मार्च से 27 मार्च सन् 1897 तक चतुर्दिवसीय एक विराट आयोजन सर्वधर्म उन्नति हेतु, गोविन्दा जी के मन्दिर, वृन्दावन में किया।”²⁵

अपने देश की संस्कृति से गोस्वामी जी प्रेम करते दिखाई देते हैं विभिन्न धर्मों एवं भाषाओं के लोग यहाँ निवस करते हैं तथा मिली झुली संस्कृति यहाँ देखने को मिलती है गहन अध्ययन मनन के बाद संभवतः गोस्वामी जी ने 'बिहार का धार्मिक महत्त्व' नामक निबन्ध की रचना की होगी, इसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं — "जिस भूमि में श्री जनक नन्दिनी सीता का आविर्भाव हुआ था, जहाँ श्री कृष्ण प्रेम के प्रचारक आदि कवि विद्यापति ठाकुर से पुरुष रत्न प्रकट हुये थे, सिख धर्म के प्रवर्तक दशम आचार्य श्री गुरुगोविन्द सिंह जी का जन्म स्थान विहार का ही मुख्य नगर 'श्री पटना साहब' है।.... एक दिन जिनके धर्म को संसार का प्रायः तृतीयांश मनुष्य मान चुका था, उन बुद्ध भगवान की लीला भूमि की बिहार ही है।"²⁶

गोस्वामी द्वारा लिखे गये सांस्कृतिक निबन्धों का निबन्ध साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिनमें 'ईश्वर सर्वशक्तिमान्', 'शवदाह', 'नदी नाव संयोग', 'कुम्भ का मेला', 'हमारे धर्म शास्त्र', 'श्री वृन्दावन का चढ़ाव', 'विधवाओं का पुनर्विवाह', 'समाज संशोधन', 'हिन्दु बाल विधवाओं का न्याय ईश्वर के हाथ है', 'यमराज का भय', आदि निबन्ध उल्लेखनीय हैं उनके निबन्धों में तत्कालीन समाज राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि ढांचों के प्रति तीव्र असन्तोष की व्यंजना और साथ ही समस्त प्राण शोषक एवं घातक मनोवृत्तियों के लिये चुनौती भी है गोस्वामी जी ने 'वेदों का अर्थ' नामक निबन्ध के माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति के दर्शन करवाने का प्रयास किया है। इस निबन्ध में वह कहते हैं—“हिन्दू लोगों का धर्म ग्रन्थ वेद है वेद से बढ़कर और कोई ग्रन्थ हिन्दुओं को मान्य नहीं। वेद विरुद्ध यदि ईश्वर भी कहे तो उसकी बात कोई हिन्दू नहीं मानता। वेद का नाम सुनते ही हिन्दू लोगों का चित्र श्रद्धा से पूरित हो जाता है।.... वेद वृक्ष की जड़ बड़ी दृढ़ है। यह अनेक आँधी बवण्डर सहकर भी अब तक महाप्रलय से बचा हुआ है।”²⁷

सांस्कृतिक समन्वय को बढ़ावा देने में गोस्वामी जी का विशेष स्थान है अपने निबन्धों में उन्होंने भारत की विभिन्न संस्कृतियों के उज्ज्वल पक्षों को सामने रखा है। गोस्वामी की सांस्कृतिक विचार-धारा आज भी प्रासंगिक है। हिन्दू मुस्लिम एकता के उदाहरण के रूप में उनके निबन्ध 'पतित पावन गौरांग' को देखा जा सकता है —

“नवदीप के हिन्दू और मुसलमान दोनों विरुद्ध होकर नगर के हाकिम चाँद काजी के पास गये और उसे कीर्तन के विरुद्ध खड़ा किया। काजी ने इधर-उधर लोगों को कीर्तन करने से रोका। श्री गौरांग देव नगर में कीर्तन करते करते भक्तगण के साथ चाँद काजी के घर गये। उसे आलाप करके समझाया कि कीर्तन का विरोध मत करो और अपने प्रभाव से उसे वचनबद्ध किया कि वह और उसके वंशज कभी कीर्तन का विरोध नहीं करेंगे। नवदीप के पास काजी का स्थान है वहाँ प्रति वर्ष कीर्तन का मेला होता है। वैष्णवगण उस स्थान की रज में लोटते हैं काजी का वंश अब तक कीर्तन की मर्यादा करता है और विरक्त वैष्णवों को भोजन देता है।”²⁸

गोस्वामी अंग्रेजी अत्याचारों से दुखी थे क्योंकि अंग्रेज भारतीय संस्कृति में सेंध लगा रहे थे। यहाँ तक कि सांस्कृतिक पर्वों और उत्सवों में भारतीय जनता को उल्लास और आनन्द से दूर होना पड़ रहा था। होली जैसे पर्व पर तत्कालीन जनता की पीड़ा को गोस्वामी जी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

“है दुर्दशा न चोरी, कहाँ खेलें हम होरी?

रहयो न राज हमारो, तिलभर करत चाकरी कोरी।

पराधीनता में सुख मानत, तानत लम्बी चोरी।

बात पुरखन की बोरी।।”²⁹

इसी प्रकार भारतीय समाज में एक और समस्या बाल विधवा विवाह को भी लेकर गोस्वामी जी अत्यधिक चिन्तित थे। भारतवासी सांस्कृतिक रूप से अपनी जीवन चर्या को पूर्ण करते हैं। किन्तु तत्कालीन समाज में बाल विधवाओं की दशा बहुत शोचनीय थी। सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में धार्मिक रीति रिवाजों को वह तभी तक अच्छा मानते थे जब तक कि उससे किसी का अहित न हो। यही कारण था कि उन्होंने ‘हिन्दू बाल विधवाओं का न्याय ईश्वर के हाथ में है जैसे निबन्धों की रचना की। उसकी कुछ पंक्ति प्रस्तुत हैं—“हमारे समाज के चालाक ब्राह्मण पंडित आवाल वृद्ध इसके विपक्ष में हैं क्योंकि उनकी यमराज मंडली भी इसके विरुद्ध है हिन्दू समाज में पुरानी रीति को छोड़कर नवीन रीति को ग्रहण करना एक बड़ा कठिन कार्य है आप से आप किसी

दिन विधवाओं की विपत्तियां दूर होंगी। विधवायें असहाय अबला स्त्री जन हैं। उनकी विपत्ति में कौन उनका साथी है ? माता पिता बन्धु बान्धवों को क्षणिक शोक होता है, फिर कुछ नहीं। पति पक्ष वालों को ऐसी विधवाओं का शीघ्र ही मरना अभीष्ट है और लोगों को क्या पड़ी है जो उनके लिये कष्ट उठाये।”³⁰

साहित्यिक निबन्ध :

श्री राधाचरण गोस्वामी द्वारा रचित साहित्यिक निबन्धों में हमारी भाषा का रूप व सम्मान उसके सम्बन्ध में उस समय फैले हुये भ्रमों का निराकरण, उनका गठन, परिमार्जन एवं प्रचार आदि सभी कुछ दिखाई देता है वे साहित्यिक रुचि के विद्वान थे तथा उन्हें अपनी लेखनी पर गर्व था। उनके लगभग सभी प्रकार के निबन्धों में नव जागृति का युगान्तकारी तीव्र सन्देश पाया जाता है। उन्होंने हमारे अभावग्रस्त देश के सभी दोषों को अनुभव व ज्ञान विज्ञान की आँखों से देखकर निबन्ध रचना प्रारम्भ की थी। इसके सन्दर्भ में डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी के विचार हैं—“हम गोस्वामजी जी के साहित्यिक जीवन में लिख चुके हैं कि सन् 1882 के शिक्षा कमीशन के समक्ष उन्होंने 21,000 हस्ताक्षर करवाकर हिन्दी के पक्ष में भेजे थे। उनके विभिन्न भाषाओं में भी देश व देश भाषा की उन्नति का ही तीव्र स्वर है।”³¹

गोस्वामी के प्रत्येक निबन्ध पर उनका निबन्धकार किसी न किसी उद्देश्य को लेकर छाया हुआ है। साहित्यिक निबन्धों में हिन्दोस्तानी बोली, आर्य भाषा निर्णय, भाषोन्नति का समय, देवनागरी का प्रचार, भाषा की विरक्ति, आर्य शब्द, नागरी अंकों में सब भाषा लिखी जाती है, वर्णमाला के अक्षरों के उदाहरण, नागरी भाषा की पाठ्य पुस्तकें, शिक्षा कमीशन और हिन्दी भाषा हिन्दी का उद्धार, खड़ी बोली पथ, खड़ी बोली की कविता, आर्य शब्द का उत्पादन, संस्कृत की उपयोगिता, वर्तमान वर्ष में भाषा पत्रों का इतिहास, हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास, पूर्णिमा का चन्द्रोदय, कवि कल्पना, हिन्दी प्रदीप के सम्पादक के मन की दृढ़ता, हमारे देश की स्त्री शिक्षा, विद्या से सुख और यश, पदार्थ विद्या शिक्षा सार, आदि निबन्धों का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गोस्वामी जी की विवेचनात्मक शैली में बुद्धि की प्रधानता चिन्तन, मनन, सजग, मस्तिष्क स्वानुभूति परक मौलिकता के दर्शन होते हैं। उनके द्वारा रचित साहित्यिक निबन्ध इसी शैली में मिलते हैं। गोस्वामी जी के साहित्यिक निबन्ध जनोन्मुखी हैं वह जहाँ जन जीवन को विकासोन्मुख करने की यथार्थ शक्ति रखता है वहाँ हिन्दी साहित्य के रिक्त स्थान की पूर्ति करता हुआ आगे के निबन्धकारों के लिये प्रशस्त मार्ग भी खोलता है। साहित्यिक गतिविधियों को सुचारु रूप से जारी रखने में समाचार पत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है जो 'प्रेस एक्ट का अचिन्तित फल' निबन्ध में देखा जा सकता है—“हमारी गवर्नमेण्ट ने प्रेस एक्ट का प्रचार करके समाचार पत्रों की स्वाधीनता हर ली। विलायत तक अपील करने पर भी वह नहीं फेरी गई। देशी भाषाओं के समाचार पत्र उसके बिना अंतः शून्य हो रहे हैं।.... तात्पर्य यह कि कौड़ी के तीन हो गये।”³²

हिन्दी भाषा के विकास हेतु विचार मन्थन करना और उसकी उन्नति में सहयोग देना गोस्वामी जी का अभीष्ट कार्य था। इस विषय को वह अपने साहित्यिक निबन्धों में स्थान देते हैं और वह कहते हैं—“आजकल हिन्दी में ग्रन्थों की संख्या बढ़ती जाती है पर ग्रन्थ ऐसे नहीं बनते कि जिससे भाषा की उन्नति का नाम लिया जाय। अब तक जो ग्रन्थ बने हैं, वह भाषा की बालअवस्था के समझे जाते हैं हिन्दी लिटरेचर में हम लल्लू जी लाल को आदि ग्रन्थकार कहते हैं इनके प्रेमसागर, वैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी आदि उत्तम ग्रन्थ हैं इनकी भाषा रसीली, पर बहुधा अनुवाद मात्र है।”³³

श्री राधाचरण द्वारा रचित साहित्यिक निबन्धों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी भाषा का विकास उनका सर्वोपरि कार्य था। खड़ी बोली और ब्रजभाषा के तत्कालीन विवाद को वह अच्छा नहीं मानते थे और इस विवाद को वे हिन्दी के विकास में रुकावट मानते थे। वे चाहते थे कि सभी साहित्यकार एवं बुद्धिजीवी परस्पर बैठकर हिन्दी भाषा की प्रगति के विषय में विचार करें और एक दूसरे की व्यक्तिगत टीका टिप्पणी के द्वारा भाषा को कोई हानि न पहुँच पाये। इस संदर्भ में गोस्वामी जी ने अपने निबन्ध 'खड़ी बोली और ब्रज भाषा की कविता' में लिखा है—“खड़ी बोली और

ब्रजभाषा की कविता के विषय में जो वाद 'हिन्दोस्थान' में चल रहा है, वह कदाचित् जय पराजय के लिये नहीं है यदि कोई ऐसा समझे तो बड़ी भूल है।³⁴

प्रगतिशील विचारों, वर्ण्य विषय एवं शैलीगत वैविध्य की मौलिकता वह अपने समय के सभी साहित्यकारों में अपना एक अलग स्थान रखते हैं गोस्वामी जी हिन्दी भाषा के सर्वांगीण विकास हेतु कितना चिन्तित थे इस बात से उनके निबन्ध 'खड़ी बोली की कविता' से भी भलीभाँति समझा जा सकता है—“खड़ी बोली की कविता के विचार के लिये जो मैंने एक सभा करने का प्रस्ताव किया था, वह किसी खड़ी बोली के पक्षपाती ने अनुमोदन नहीं किया।.... पंडित श्रीधर पाठक आदि दूसरा राग अलापते हैं यह खड़ी बोली की कविता को हिन्दी में प्रधान और ब्रजभाषा को गौण क्या परदेशी भाषा समझकर निकालना चाहते हैं इनको समझना चाहिये कि खड़ी बोली जिस पर आपको इतना अभिमान है, इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? आगरा दिल्ली जो इसका मुख्य जन्म स्थान, उसकी प्राकृत भाषा ब्रजभाषा ही है।”³⁵

निष्कर्ष:

यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी ने निबन्धों का महत्त्व भी उनके नाटक, उपन्यास और काव्य से कम नहीं है उनमें भी हिन्दी, हिन्दू और हिन्दोस्तान की सत्यता का तीव्र स्वर मुखरित है प्रगतिशील विचारों को सीधे-2 पाठकों तक पहुँचाने के सरल व सुन्दर साधन उनके निबन्ध हैं उनके निबन्ध यथार्थ के निकट होने के संवाहक हैं। यदि उनके निबन्धों में समाज, शासन धर्म आदि की कटु आलोचना है तो कहीं हास्य व व्यंग्यपूर्ण आक्षेप उनका सुधारवादी व्यक्तित्व निबन्धों के वस्तुचयन तथा निरूपण में सर्वत्र छाया हुआ है।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से उनके निबन्ध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक आदि वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से भी शैली की अनेकरूपता उनके निबन्धों में पायी जाती है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उनके विचारात्मक निबन्धों का विवेचनात्मक तथा आलोचनात्मक शैलियों में विभाजित किया जा सकता है विवेचनात्मक शैली में बुद्धि की प्रधानता, चिन्तन, मनन, सजग, मस्तिष्क स्वानुभूति परक मौलिकता के दर्शन होते हैं उनकी आलोचनात्मक शैली

चिन्तन, तर्क योजना एवं विवेचन प्रणाली की परिचायिका है उनके निबन्धों में सूक्ष्म चिन्तन तथा उदात्त अनुभूति के दर्शन होते हैं। उनके निबन्धों से जनता में फैली हुई भ्रान्तियों के निराकरण के साथ इतिहासकारों को भी ठोस सामग्री प्राप्त होती है।

गोस्वामी जी के निबन्धों में गम्भीरता के साथ हास्य की मधुर फुहार भी दिखाई देती है वर्णनात्मक शैली के अन्तर्गत उनके यात्रा सम्बन्धी निबन्ध भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। हृदय को हर्ष विषाद, आकर्षण विकर्षण, ममता विरक्ति आदि गहन अनुभूतियों को तीव्र भावों द्वारा व्यक्त करने तथा भावों को मूर्त रूप प्रदान करने में गोस्वामी जी सिद्धहस्त हैं उनके निबन्धों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उनके विचारों की उग्रता एवं प्रहार शक्ति, विषय की विविधता और शैली की अनेक रूपता व सम्पन्नता भारतेन्दु युगीन निबन्धों के अमरत्व के संरक्षक है।

सन्दर्भ :

1. डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी : श्रीगोस्वामी राधाचरणजी: व्यक्तित्व तथा कृतित्व, पृ० 3
2. शिवनाथ एम०ए० : भारतेन्दु युगीन निबन्ध, पृ० 44-45
3. पूर्णिमा का चन्द्रोदय, 'मित्र विलास' 10 जुलाई 1882
4. डॉ० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 125
5. देवीशरण रस्तोगी: हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० 216
6. डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी : श्री गोस्वामी राधाचरणजी: व्यक्तित्व तथा कृतित्व, पृ० 225
7. जयनाथ नलिन : हिन्दी निबन्धकार, पृ० 64
8. कविकल्पना: सरस्वती हीरक जयन्ती अंक, 1961 ई०, पृ० 473
9. वही, पृ० 472
10. भारत मित्र-गोस्वामी जी का लेख 29 मार्च 1883 ई० ।
11. हिन्दी प्रदीप : स्त्री सेवा पद्धति - राधाचरण गोस्वामी, जून 1879 ई० ।
12. डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी : श्री गोस्वामी राधाचरण जी : व्यक्तित्व तथा कृतित्व, पृ० 227
13. कर्मन्दु शिशिर : राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, पृ० 105
14. बिहार बन्धु : जिल्द 6/28, 26 जून 1878 ई० ।
15. भारत मित्र : हिन्दी के प्रसिद्ध ग्रन्थकार सेठ श्री निवासदास जी की जीवनी, 16 जून 1887 ई० ।
16. मित्र विलास : खण्ड 4/49, 20 जून 1881 ई० ।

17. डॉ० केदारदत्त तत्राडी : श्री गोस्वामी राधाचरण जी : व्यक्तित्व तथा कृतित्व, पृ० 222
18. बिहार बन्धु, जिल्द 6/28, 26 जून 1878 ई०।
19. राधाचरण गोस्वामी : भारतवासियों की महादुरवस्था, भारतेन्दु, 3/3, 28 जून, 1885 ई०।
20. गोस्वामी जी : प्रेस एक्ट अचिन्तित फल, सारसुधानिधि, 1/5, 10 फरवरी, 1879 ई०।
21. राधाचरण गोस्वामी : जार रूस के नाम चिट्ठी भारतेन्दु, 3/3, 8 जून, 1885 ई०।
22. डॉ० केदारदत्त तत्राडी : श्री गोस्वामी राधाचरण जी : व्यक्तित्व तथा कृतित्व, पृ० 221
23. राधाचरण : 'आर्य कौन', बिहार बन्धु, जिल्द 6/28, 26 जून 1878 ई०।
24. राधाचरण : 'विदेश यात्रा विचार', ब्रजभूषण यंत्र मथुरा, पृ० 2 प्रकाशन सं० 1887 ई०
25. डॉ० केदारदत्त तत्राडी : श्री गोस्वामी राधाचरण जी : व्यक्तित्व तथा कृतित्व, पृ० 61
26. राधाचरण : 'बिहार का धार्मिक महत्त्व, चैतन्य चन्द्रिका 1/1 सं० 1977 ई०।
27. राधाचरण : वेदों का अर्थ, भारतेन्दु 3/4 27 जुलाई 1885 ई०।
28. कर्मेन्दु शिशिर : राधाचरण गोस्वामी की चुनी हुई रचनाएँ, हिन्दू बाल विधवाओं का न्याय ईश्वर के हाथ है, पृ० 84
29. राधाचरण : सारसुधानिधि, 1/8, 3 मार्च 1879 ई०।
30. कर्मेन्दु शिशिर : राधाचरण गोस्वामी की चुनी हुई रचनाएँ, हिन्दू बाल-विधवाओं का न्याय ईश्वर के हाथ है, पृ० 84
31. डॉ० केदारदत्त तत्राडी : श्री गोस्वामी राधाचरण जी : व्यक्तित्व तथा कृतित्व, पृ० 211-212
32. राधाचरण : प्रेस एक्ट का अचिन्तित फल, सारसुधानिधि 1/5 10 फरवरी 1879
33. राधाचरण : हिन्दी पत्र वा हिन्दी ग्रंथ, 'भारतेन्दु' 4/4 16 जुलाई 1886 ई०।
34. वही, खड़ीबोली और ब्रजभाषा कविता, हिन्दोस्थान, 23 मार्च 1888 ई०।
35. कर्मेन्दु शिशिर : राधाचरण गोस्वामी की चुनी हुई रचनाएँ, पृ० 164



उपसंहार

उपसंहार

संसार की लगभग सभी भाषाओं में निबन्ध विधा के दर्शन होते हैं। भारतीय साहित्य अनेक विधाओं में अपना प्रभाव रखता है। भारत एक विचार प्रधान देश है। अध्यात्म, जिज्ञासा अथवा दर्शन शास्त्र को यहाँ की समस्त विधाओं में सर्वोत्तम माना जाता है। पाश्चात्य देशों में सभ्यता की सृष्टि नगरों में हुई, परन्तु भारत की प्राकृतिक साहचर्य में। आध्यात्मिक तत्त्व की खोज ने पारलौकिक चिन्तन की ओर भारतवासियों को आरम्भ से ही प्रवृत्त कर दिया था। निबन्ध वह पूर्वोपार्जित सम्पत्ति है। जो अनेक साहित्य विधाओं की भाँति अर्वाचीन साहित्य को परम्परा से मिली है। आज का हिन्दी निबन्ध किसी भी स्वतंत्र विषय पर लेखक की वैयक्तिकता को प्रधानता देकर चलता है, किन्तु संस्कृत के निबन्धों में लेखक को यह स्वतंत्रता अनुपलब्ध थी।

निबन्ध से तात्पर्य ऐसी रचना से होता है जिससे लेखक विचार परम्परा के साथ बहुत कुछ अपने भावों और मनोवृत्तियों को भी निराले ढंग से व्यक्त करता चलता है। निबन्ध में एक ही दृष्टिकोण से विषय का प्रतिपादन किया जाता है। निबन्ध की एक विशेषता ये भी होती है कि वह साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक रोचक और सजीव होती है। हिन्दी में निबन्ध शब्द का प्रयोग इतना सामान्यता से किया गया है। कि उसकी ठीक-ठीक परिभाषा देना भी असामान्य कार्य है। हिन्दी निबन्ध साहित्य का इतिहास एक ही शताब्दी में समाया हुआ है। यह गौरव की ही बात है कि हिन्दी गद्य साहित्य में निबन्ध का विकास तेज़ी से अल्पावधि में ही हुआ है और इसका बहुत कुछ श्रेय भारतेन्दु युग के निबन्धकारों को जाता है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में जिसका कोई सुनिश्चित रूप ही नहीं था, उस भाषा में निबन्ध साहित्य का केवल एक शती में इतना विकास हो पाना कल्पनातीत सत्य है।

पाश्चात्य साहित्य की भाँति हिन्दी साहित्य में भी निबन्ध के विषय में दो धारायें परिलक्षित होती हैं। निबन्धों की एक धारा में वैचारिक, मौलिकता, ज्ञान गरिमा और विषय निष्ठता पायी जाती है, और दूसरी धारा में स्वच्छन्द कलात्मक तथा व्यक्तिनिष्ठ निबन्धों का समावेश होता है। हिन्दी निबन्ध साहित्य में वैचारिक और विषयनिष्ठ

निबन्ध का ही महत्त्व मिला और उन्हें विकास का व्यापक क्षेत्र सुलभ हुआ। निबन्ध की पूर्ण और सर्वसम्मत परिभाषा तो नहीं दी जा सकती है। पाश्चात्य समीक्षकों की दृष्टि में केवल स्वच्छन्द वैयक्तिक मनोभावभिव्यंजना की निबन्ध है। यथा, निबन्ध साहित्यिक, दार्शनिक या सामाजिक विषय पर ऐतिहासिक या वैयक्तिक दृष्टि कोण से लिखी रचना है। आलोचनात्मक निबन्ध हिन्दी निबन्ध साहित्य का महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली अंग है।

जिस प्रकार अंग्रेजी 'एसे' (Essay) के कई रूप विकसित होते हुए देखे गये हिन्दी में भी इसी प्रकार 'निबन्ध' की स्थिति है। हिन्दी में विषय प्रधान सुसम्बद्ध वस्तुनिष्ठ रचना को सर्वप्रथम निबन्ध की संज्ञा प्राप्त हुई। हिन्दी निबन्ध अपना निजी और स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। किसी भी साहित्य पर देशकाल की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। सामाजिक जागृति, राजनीतिक असन्तोष, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि से इस महत्त्वपूर्ण साहित्य विधा का हिन्दी में उद्भव हुआ। हिन्दी निबन्ध को मुख्यतः पाँच वर्गों में विभाजित करना उचित है— (1) विचारात्मक (2) भावात्मक (3) वर्णनात्मक (4) कथात्मक (5) हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध। विचारात्मक निबन्धों में बौद्धिकता की प्रधानता होती है। ये निबन्ध प्रायः गम्भीर तथा प्रयोजनीय विषयों पर लिखे जाते हैं तथा तर्क का भी आश्रय लिया जाता है। भावात्मक निबन्धों में बुद्धि की अपेक्षा रागवृत्ति की प्रधानता रहती है।

इन निबन्धों का सीधा सम्बन्ध हृदय से होता है। भारतेन्दु जी इन निबन्धों के सूत्रधार माने जाते हैं, उन्होंने एवं उनके सहयोगियों ने भावात्मक निबन्ध ही अधिकतर लिखे हैं। वर्णनात्मक निबन्धों में निरूपण अथवा व्याख्या की प्रधानता रहती है। कल्पना तत्त्व अधिक होता है। उनमें निबन्धकार की वैयक्तिकता ही प्रमुख रहती है। कलात्मक निबन्धों में एक प्रकार की कथात्मकता पायी जाती है। हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में किसी विषय को लेकर उस व्यंग्य अथवा मनोरंजनकारी दृष्टि से रची गयी रचना होती है।

हिन्दी निबन्ध की उत्पत्ति जिस समय हुई उस समय की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि कई प्रकार की समस्याओं के चलते

हुये केवल मनोरंजन का कोई विचार भी नहीं कर सकता था। सामाजिक रूढ़ियों का उन्मूलन मुख्य उद्देश्य था। मुसलमान शासकों एवं अंग्रेजी सत्ता द्वारा अर्थिक स्थिति को खोखला कर दिया गया था। जनता का अज्ञान भी इन समस्याओं में वृद्धि का कारण बन रहा था। इन्हीं परिस्थितियों में हिन्दी निबन्ध का जन्म हुआ। निबन्ध साहित्य विधा अपने आरम्भिक युग में अतिशय लोकप्रिय हुई। इस पर अपने देश की परम्परा और संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भारत में 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के माध्यम से अंग्रेजी राज स्थापित हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। उनके सम्पादक हिन्दी के साहित्यकार ही अधिकतर थे, जिनका उद्देश्य अपने युग की विभिन्न प्रकार की समस्याओं, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना, भाषा समस्या आदि को चित्रित करना था। इस आरम्भिक काल में 'प्रजा हितैषी', 'बनारस अखबार', 'ब्राह्मण', 'हिन्दी प्रदीप', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'बंगदूत', 'सारसुधानिधि' आदि पत्र-पत्रिकायें प्रमुख थीं इनके सम्पादकों में राजा लक्ष्मण सिंह, राजाशिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त जैसे युग प्रवर्तक साहित्यकार थे।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी निबन्ध लिखे तो गये, परन्तु निबन्ध का कोई एक स्पष्ट स्वरूप नहीं उभर पाया था। भारतेन्दु युग में ही हिन्दी निबन्ध का वास्तविक रूप आरम्भ होता है। इस युग में सामान्य और गम्भीर दोनों प्रकार के विषयों पर अनेक निबन्ध लिखे गये। इस युग में सामान्य बोलचाल की कहावतों, मुहावरों, व्यंग्योक्तियों से सजी सशक्त भाषा में अनेक प्रकार के विषयों पर निबन्ध लिखे। वे अपने पांडित्य का प्रदर्शन न करके आत्मीय भाव से सहज रचना प्रस्तुत करते थे। भारतेन्दु युग में सभी प्रकार की रचनायें हुई, विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक आदि। इस युग में सभी प्रकार की शैलियाँ अपनाई गईं। विनोदात्मक शैली के साथ-साथ स्वप्न-कथात्मक शैली भी अपनाई गई। एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न, स्वर्ग विचार सभा का अधिवेशन, एक अनोखा स्वप्न, यमपुर की यात्रा आदि, भारतेन्दु युग के अद्वितीय उदाहरण हैं। वर्णन शैली के साथ-साथ आलोचनात्मक निबन्ध इस युग का

सबसे बड़ा उपहार है। प्राचीन पद्धति के निबन्धों का भी निर्माण हुआ और संस्कृत शैली भी अपनाई गई।

भारतेन्दु ने लोक प्रचलित भाषा शैली को व्यवहारिक साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्दी' का राजाभोज का सपना' इसी भाषा रूप का दिग्दर्शन कराता है। भारतेन्दु ने इस भाषा शैली को अपनी रचनाओं और पत्रिकाओं में अपनाया है। इसी समय ही हिन्दी गद्य साहित्य के क्रम विकास का आरम्भ हुआ। भारतेन्दु की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में सर्वप्रथम निबन्ध सम्पादकीय वक्तव्य के रूप में छपते थे। यह युग आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रवर्तनकारी महत्त्व रखता है। गद्य शैलियों की यथार्थ भूमि निबन्ध रचना ही है। हिन्दी निबन्ध का सूत्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया इनके पूर्ववर्ती लेखकों में भारतेन्दु युगीन निबन्धकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाल श्रीनिवासदास और राधाचरण गोस्वामी के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ है कि भारतेन्दु ने अपने समकालीन लेखकों को प्रोत्साहन दे देकर अद्यत किया, और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में हिन्दी को वह रूप दिया जिसके कारण हिन्दी नई चाल में ढली। भारतेन्दु एवं अन्य सहयोगी निबन्धकारों ने किसी न किसी पत्र-पत्रिका का सम्पादन किया और प्रचुर मात्रा में हिन्दी में विभिन्न विषयों पर निबन्धों की रचना की जिसके कारण हिन्दी निबन्ध साहित्य का विकास हुआ।

हिन्दी निबन्ध के अभ्यास काल को भारतेन्दु युग का आरम्भ कह सकते हैं। बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने सामान्य मनोवृत्ति से छोटे-छोटे निबन्ध लिखे। पं० बालकृष्ण भट्ट ने आँख, कान आदि तथा प्रतापनारायण मिश्र ने 'भौं', 'दाँत' आदि विषयों पर विनोदप्रिय किन्तु गम्भीर अभिप्रेत-युक्त निबन्ध लिखे। पं० राधाचरण गोस्वामी ने 'पूर्णमा का चन्द्रोदय' जैसा गद्य काव्य तथा पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने कवित्वपूर्ण तथा आलोचनात्मक निबन्ध लिखे इस प्रकार भारतेन्दु युग नई-नई शैलियों को अपनाकर गतिशील हुआ। इस युग के निबन्धों की सजीव तथा वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्तियाँ आकर्षक थीं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्ध अधिकतर सामयिक समस्याओं पर आधारित थे, जिनमें व्यंग्य विनोद की प्रधानता रहती थी। इन्हीं के निबन्धों द्वारा और अन्य प्रयत्नों से हिन्दी भाषा विकसित हुई। इनके निबन्धों में केवल व्यंग्य या हास्य नहीं था, सामाजिक उन्नति की उत्कट इच्छा तथा मौलिक विचार सम्पन्नता भी थी, जो निबन्ध कला के विशेष गुण हैं। भारतेन्दु जी की भाषा बहुत स्वच्छ तथा सुधरी हुई थी। उन्होंने विविध पत्र-पत्रिकाओं में विविध प्रकार के निबन्ध लिखे। इनके निबन्धों का एक संग्रह 'हरिश्चन्द्र कला' भाग-4 तथा दूसरा संग्रह है डॉ० केसरीनारायण शुक्ल द्वारा सम्पादित 'भारतेन्दु के निबन्ध'। इनके विशेष प्रसिद्ध निबन्ध हैं— 'खुशी', 'होली त्योहार', 'संगीत सार', 'हम मूर्ति पूजक हैं', 'इशू', 'खृष्ट' और 'ईश कृष्ण', 'एक अपूर्व स्वप्न', 'बंग भाषा की कविता', 'सूर्योदय', 'नाटक', 'ईश्वर का वर्तमान होना', 'भूकम्प', 'मित्रता', 'सूरदास का जीवन चरित्र', 'सरयूपार की यात्रा', 'भक्ति ज्ञानादि से क्यों बड़ी है', 'भगवत स्तुति', 'वैष्णव सर्वस्व-चरितावली', 'महाकवि जयदेव जी का जीवन चरित्र', 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती', 'बीबी फातिमा', 'पांचवे पैगम्बर', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'बादशाह दर्पण', 'काश्मीर कुसुम', 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है', 'वैद्यनाथ की यात्रा', 'ग्रीष्म ऋतु', 'कंकड स्तोत्र', 'अंगरेज स्तोत्र', 'जातीय संगीत' आदि और भी अनेक राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक निबन्ध आदि।

भारतेन्दु युग के प्रतिभाशाली लेखक, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान तथा युग के श्रेष्ठ निबन्धकार के रूप में पं० बालकृष्ण भट्ट का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। ये व्यक्तिक कोटि के निबन्धों के प्रवर्तक माने जाते हैं। ये 'हिन्दी प्रदीप' पत्र के कुशल सम्पादक थे। चलते हुए विषय पर इन्होंने 'आँख', 'नाक', 'कान', 'बातचीत' जैसे साधारण विषयों को निबन्धों का माध्यम बनाया वहीं भावात्मक निबन्धों—आंसू, चन्द्रोदय, मुग्धमाधुरी, आदि सफलतापूर्वक लिखे हैं। इनके निबन्धों की विशेषताएं ये हैं कि प्रथम शब्द के ही आकर्षण को इतनी कुशलता से प्रयोग करते हैं कि पाठक अन्तिम शब्द तक तन्मन्यता से इनके निबन्धों को पढ़ने की रुचि रखता है। भट्टजी के निबन्धों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है— (1) विचारात्मक, जैसे—चारुचरित्र, साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है, चरित्र पालन, प्रतिभा, आत्मनिर्भरता आदि।

(2) आलोचनात्मक निबन्ध तो कम ही लिखे हैं, किन्तु सम्पादकीय टिप्पणियों में यह रूप देखने को मिलता है। (3) भावात्मक निबन्धों की रचना तथा संख्या की दृष्टि से भट्टजी की सेवा अमूल्य है। इसके अन्तर्गत 'आंसू, मुग्धमाधुरी, प्रेम के बाग का सैलानी, हमारे मन की मधु प्रवृत्ति, कल्पना, माधुर्य, चलन, आशा, माता का स्नेह आदि हैं। (4) वर्णनात्मक निबन्धों में चन्द्रोदय आदि आते हैं। (5) विवरणात्मक निबन्धों में स्वप्न कथा, आत्मकथा तथा जीवनी जैसे 'शंकराचार्य' नामक आदि प्रमुख हैं। इनके पच्चीस निबन्धों का संग्रह 'साहित्य सुमन' चुने हुये बत्तीस भावात्मक निबन्धों का संग्रह भट्ट-निबन्धावली प्रथम भाग और उच्च कोटि के पैंतीस विचारात्मक निबन्धों का संग्रह भट्ट-निबन्धावली दूसरा भाग प्रकाशित हुये हैं। भट्ट जी के निबन्धों में भारतेन्दु की अपेक्षा निबन्ध के अधिक लक्षण पाये जाते हैं। यथा राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानन्द, पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी आदि ने हिन्दी निबन्ध की भूमिका निर्मित की। इन लेखकों ने निबन्ध का प्राथमिक आभास दिया।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य के समीक्षात्मक अध्ययन में पं० प्रतापनारायण मिश्र की सेवाओं को भी अभीष्ट स्थान दिया जाता है। ये इस युग के यशस्वी, परिहासशील, निश्छल, निश्चिन्त निबन्धकार थे। ये भारतेन्दु और बालकृष्ण भट्ट के समकालीन थे। इन्होंने 'ब्राह्मण' नामक पत्र का प्रकाशन किया। भारतेन्दु से साहित्यिक प्रेरणा पाकर इन्होंने अनेकानेक निबन्धों की रचना की। मिश्र जी ने छोटे-छोटे विषयों पर जैसे-बात, वृद्ध, धोखा, दाँत, आप, भौं, होली, बेगार, रिश्वत, गुप्त ठग, पुच्छ, धर्म गंगा जी, मानस रहस्य, जवानी की सैर, हमारा कर्त्तव्य, शिवमूर्ति, दशहरा, मनोयोग आदि पर प्रभाव पूर्ण निबन्धों की रचना की। मिश्र जी के निबन्धों के चार संग्रह प्रकाशित हुये हैं— (1) निबन्ध नवगीत (2) प्रताप पीयूष (3) प्रताप समीक्षा (4) प्रतापनारायण ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) इस ग्रन्थ में इनके लगभग दो सौ से अधिक निबन्ध संकलित हैं। मिश्र जी ने अपने निबन्धों में लोक भाषा को अपनाया। इस युग में व्याकरण सम्बन्धी कुछ दोष सामने आते हैं। मिश्र जी की शैली में सामयिक भाषा के गुण अवगुण होते हुए भी आत्मीयता और रोचकता का आकर्षण भुलाया नहीं जा सकता। उस समय इनका ध्येय जन साधारण के बीच सामाजिक, राजनीतिक तथा

आर्थिक जागृति उत्पन्न करना ही था। पं० प्रतापनारायण मिश्र 'मन की स्वच्छन्द भटकन' प्रणाली के निबन्धकार थे।

भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्य सेवियों में प्रेमघन का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। ये 'आनन्द कादम्बिनी' के यशस्वी सम्पादक थे। इनकी शब्द चयन पर विशेष दृष्टि रहती थी और यह अलंकार शैली के पंडित थे। इनके निबन्धों में संस्कृत एवं उर्दू के शब्दों की भी भरमार है। प्रेमघन ने अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा इत्यादि अलंकारों के मोह में पड़कर भाव और भाषा को क्लिष्ट और अस्पष्ट बना दिया है। प्रेमघन ने विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक तथा वर्णनात्मक निबन्ध लिखे। भारतेन्दु युग में विचारात्मक निबन्धों का प्रवर्तक इन्हीं को माना जाता है। 'आनन्द कादम्बिनी' साप्ताहिक पत्रिका के साथ साथ 'नागरी नीरद' मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन किया। बनारस का बुढ़वा मंगल, दिल्ली दरबार में मित्र मण्डली के यार आदि निबन्धों को वैयक्तिक निबन्ध कहा जा सकता है। प्रेमघन कांग्रेसी थे और 'नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा' नामक आलोचनात्मक निबन्ध भी लिखा। भारतेन्दु युग के हिन्दी साहित्य की समीक्षात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आई है कि प्रेमघन ने विचारात्मक, आलोचनात्मक तथा वैयक्तिक निबन्धों का हिन्दी में सूत्रपात किया। प्रेमघन भाषा प्रयोग में समयानुकूलता के समर्थक थे, जिसमें अन्यत्र भाषाओं के प्रचलित शब्दों की भी नियोजना हो सके।

भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों में लाला श्रीनिवादास का नाम भी हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। नाटक और उपन्यास क्षेत्र में तो लाला प्रसिद्ध हैं किन्तु निबन्ध क्षेत्र में उतने प्रसिद्ध नहीं हैं। इनके द्वारा रचित निबन्ध वर्तमान में आसानी से उपलब्ध नहीं हो सके हैं, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में इनके द्वारा हिन्दी की खड़ी बोली के विकास में इनका अमूल्य योगदान है। सन् 1801 में फोर्टविलियम कॉलेज से सम्बद्ध होकर हिन्दी साहित्य की अपार सेवा की।

उन्होंने दिल्ली से 'सदादर्श' नामक पत्र 1874 में निकाला। उसमें भूमिका के रूप में इन्होंने निबन्धों की रचना की है। इनके निबन्धों में वह विनोद और मनमौजीपन नहीं है जो भारतेन्दु युग के अन्य निबन्धकारों में था। इनकी भाषा साफ सुथरी और

संयत थी तथा वे बहुपट व्यक्ति थे। लाला श्रीनिवासदास का 'भरतखण्ड की समृद्धि' नामक निबन्ध बहुत प्रभावशाली है। इनका निबन्ध साहित्य में अत्यधिक योगदान न होते हुए भी विशेष महत्त्व इस लिये है कि हिन्दी के विकास में ये सदैव अग्रणी रहे हैं।

भारतेन्दु युग के निबन्ध साहित्य की समीक्षा करते समय एक अन्य नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है, पं० राधाचरण गोस्वामी। इन्होंने भारतेन्दु से प्रभावित होकर निबन्ध रचना आरम्भ की। इन्होंने भारतेन्दु नामक पत्रिका का भी प्रकाशन किया। इनके अधिकतर निबन्ध इसी पत्रिका में प्रकाशित होते थे। 'सारसुधानिधि' एवं 'हिन्दू-बांधव' में भी इन्होंने निबन्ध लिखे हैं। विचारात्मक निबन्धों में राधाचरण गोस्वामी को प्रथम स्थान दिया जाता है। निबन्धों में स्वप्न शैली की परिपाटी भी इस समय प्रचलित थी और इन्होंने 'यमलोक की यात्रा' स्वप्न शैली में ही लिखा है। इनके निबन्धों में इनकी निर्भीकता, हास्य व्यंग्य का पुट तथा विचारों की उग्रता यथेष्ट परिमाण में मिलती है। गोस्वामी ने रेल कर्मचारियों की आलोचना में 'रेलवे स्तोत्र' निबन्ध की रचना की। 'तुम्हें क्या', 'होली' आदि इनके सुन्दर निबन्धों की श्रेणी में आते हैं। इनकी कुछ सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी प्रसिद्ध हैं, जो कि सामयिक समस्याओं से सम्बन्धित वैविध्य से परिपूर्ण हैं—'मुक्ति फौज', 'महाभारत योग', 'हमारी सरकार का भ्रम', 'जोडा' आदि। राधाचरण गोस्वामी के लेख बड़े मनोरंजक और प्रौढता से परिपूर्ण होते थे। इन्होंने अनेक विषयों पर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा जीवन चरित्र निबन्धों की रचना की है।

हिन्दी साहित्य में निबन्ध के विकास का प्रथम चरण भारतेन्दु युग का ही है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन करने से विदित होता है कि आरम्भकाल में सम्पादकीय निबन्ध ही निबन्ध के रूप में किसी शीर्षक के साथ प्रकाशित होते थे।

उस युग के निबन्धों में सामान्यतः सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विषय का परिचय या आलोचना, धार्मिक तथा साहित्यिक निरूपण या विवेचन यात्रा सम्बन्धी विवरण आदि होते थे। धीरे-धीरे वर्णनात्मकता में वृद्धि होने लगी और सामाजिक प्रसंगों के साथ आलोचनात्मक दृष्टि का विकास हुआ। इसी के साथ-साथ आन्दोलनों का कार्य भी आरम्भ हो गया। हिन्दी सम्बन्धी आन्दोलन तो साहित्य क्षेत्र में प्रमुख था

ही, परन्तु आर्यसमाज का आन्दोलन राजनीतिक विषय आदि का माध्यम बनते गये। इन सभी आन्दोलनों में लेखक की आलोचनावृत्ति और विवेक के साथ साथ पक्ष-पोषण और हठ का प्रचुर प्रदर्शन हुआ। इसके लिये विविध शैलियों को अपनाना पड़ा। साहित्य जगत् में आलोचना तथा प्रत्यालोचना बढ़ी।

विचारात्मक निबन्धों में उपदेशात्मक दृष्टि से लिखे गये या शिक्षा-विषयक निबन्ध भी लिखे गये। धीरे-धीरे उपदेशवृत्ति कम हो गई, और लोकापवाद का स्थान व्यंग्य ने ले लिया। यह व्यंग्य प्रायः शब्दाडम्बर में फँसा रहा। इसीलिए साहित्यिक गम्भीरता कम देखने को मिलती है, और भावात्मकता का पुट अधिक होता गया। साधारण वर्णन परिचय अथवा प्रतिपादक शैली के साथ पत्र शैली का उपयोग हुआ है संवाद शैली तथा रूपकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। जीवनियाँ इस युग में प्रचुर मात्रा में लिखी गईं। पद्य शैली में निबन्धों की ओर प्रवृत्ति हुई, पर यह विशेष वस्तु नहीं बन सकी।

भारतेन्दु युग में निबन्ध का रूप सुनिश्चित हुआ। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने निबन्ध लिखकर हिन्दी-गद्य शैली को नवीन रूप दिया। भारतेन्दु युगीन हिन्दी साहित्य में निबन्धों की समीक्षा करते समय ज्ञात होता है कि जितनी सिद्धि भारतेन्दु युग में निबन्ध साहित्य को मिली उतनी किसी अन्य साहित्य विधा को नहीं मिल पाई। वैसे तो सभी विषयों पर कुछ न कुछ लिखा जा रहा था परन्तु निबन्ध रचना का स्वच्छ और परिष्कृत रूप भट्ट जी तथा मिश्र जी ने उपस्थित किया। इन लोगों ने छोटे-छोटे विषयों पर अपने स्वतंत्र विचारों को लिपिबद्ध किया। इस प्रकार निबन्ध रचना का हिन्दी गद्य क्षेत्र में आगमन माना जा सकता है। भट्ट जी तथा मिश्रजी की भाषा और शैली में भावुकता वास्तविकता, स्पष्टता तथा रोचकता के दर्शन इस युग के निबन्ध क्षेत्र में दर्शनीय हैं। इन लेखकों ने विशेष रूप से भारतेन्दु युग के निबन्ध साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस प्रकार भारतेन्दु के युग में निबन्ध लेखन में हमें एक प्रकार की प्रक्रिया के दर्शन होते हैं और ज्ञात होता है कि कैसे धीरे-धीरे इस विधा ने हिन्दी साहित्य को समृद्धि के मार्ग पर पहुँचाया। भारतेन्दु युग के निबन्धों की यह सफलता ही मानी

जायेगी कि वर्तमान में परिष्कृत रूप में निबन्ध साहित्य की एक विशिष्ट भूमिका में अपनी विशिष्टता को बनाये हुए हैं। किसी भी क्षेत्र में विकास के आरम्भिक दौर में कुछ त्रुटियाँ भी सामने आती हैं किन्तु वो इतनी नगण्य होती हैं कि उसके कोई दुष्परिणाम नहीं होते हैं। भारतेन्दु के साथ उनके युग से सम्बन्धित बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, लाला श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी के अलावा अन्य साहित्यकारों की भी भूमिका रही है किन्तु वे इतनी प्रसिद्धि अर्जित नहीं कर सके। भारतेन्दु युग के निबन्धों की प्रसिद्धि का कारण तत्कालीन राजनीतिक दुर्दशा भी थी जिस कारण जनसाधारण ने इस विधा से कुछ अधिक ही सन्तुष्टि प्राप्त की।



A decorative rectangular border with a repeating floral pattern and ornate corner designs.

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रन्थ—सूची

- अरोड़ा, नारायण प्रसाद एवं सत्य भक्त (संपा०) : प्रताप लहरी, प्रथम संस्करण, कानपुर, 1949 ई०।
- डा० आरिफ़ नज़ीर : अनुवाद : सिद्धान्त और स्वरूप, साहित्य प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण, 1992 ई०।
- डा० आरिफ़ नज़ीर : कामकाजी हिन्दी : सिद्धान्त और प्रयोग, कमल प्रिंटर्स, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1998 ई०।
- डॉ० आरिफ़ नज़ीर : भक्तिकालीन सांस्कृतिक चेतना में रहीम का योगदान, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1988 ई०।
- डॉ० आरिफ़ नज़ीर : राष्ट्रीयता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, साहित्य प्रकाशन, आगरा, 1993 ई०।
- डॉ० आरिफ़ नज़ीर : हिन्दी में शोध और विकास के आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, अलीगढ़, प्रथम संस्करण, 2006 ई०।
- उपाध्याय, प्रभाकरेश्वर प्रसाद : प्रेमघन सर्वस्व, (भाग-1) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
- उपाध्याय, प्रभाकरेश्वर प्रसाद : प्रेमघन सर्वस्व, (भाग-2) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
- कानोड़िया, कमला : भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1971 ई०।

- कुमारी नीलम : भारतेन्दु युगीन साहित्य विधाओं का अनुशीलनात्मक अध्ययन, प्रकाशन, आरा, भोजपुर, 1997 ई०।
- गुप्त, किशोरीलाल : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, प्रथम संस्करण, 1956 ई०।
- गुप्त, किशोरीलाल : हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ओमप्रकाश बेरी हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1957 ई०।
- गुप्त, गणपतिचन्द्र : साहित्यिक निबन्ध, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 12वां संस्करण, 1994 ई०।
- गुप्त, सुरेशचन्द्र : आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली द्वारा प्रकाशित
- गुलाबराय : काव्य के रूप, संशोधन एवं परि० संस्करण, दिल्ली, आत्माराम, 1967 ई०।
- चतुर्वेदी, नरेशचन्द्र : हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1957 ई०।
- चौहान, रामगोपाल सिंह : भारतेन्दु साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा, अ०ति०।
- चौहान, शिवदान सिंह : हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1954 ई०।
- जैदी, जहाँ आरा : हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में भारतेन्दु का योगदान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, अलीगढ़, प्रथम संस्करण, 2006 ई०।
- तत्राड़ी, केदारदत्त : श्रीगोस्वामी राधाचरणजी : व्यक्तित्व तथा कृतित्व, श्रीचैतन्य गोस्वामी षडभुज महाप्रभु

- मन्दिर राधाचरण मार्ग, वृन्दावन जुलाई, 1995 ई०।
- तिवारी, भोलानाथ : आधुनिक हिन्दी साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1969 ई०।
- तिवारी, रामचन्द्र : प्रतापनारायण मिश्र साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1992 ई०।
- तिवारी, रामचन्द्र : हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणसी, तृतीय संस्करण, 1992 ई०।
- दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1956 ई०।
- देसाई, अरविन्द कुमार : भारतेन्दु और नर्मद का तुलनात्मक अध्ययन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्रथम संस्करण, अप्रैल, 1965 ई०।
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद : हिन्दी साहित्य, अन्तरचन्द्र कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली, 1952 ई०।
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद : हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969 ई०।
- डॉ० नगेन्द्र (संपा०) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली, 1973 ई०।
- नलिन, जगन्नाथ : हिन्दी निबन्धकार, आत्माराम प्रकाशन, दिल्ली, 1959 ई०।
- पुरोहित, गोपाल : निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, हिन्दी साहित्य समाज, लखनऊ विश्वविद्यालय, 2006 वि०।
- पुरोहित, रामचन्द्र : प्रेमघन और उनका कृतित्व, अनुपम प्रकाशन, जयपुर, 1976 ई०।

- ब्रजरत्न दास (संपा०) : भारतेन्दु कला, बंगीय हिन्दी परिषद कलकत्ता, संवत् 2007 वि० ।
- ब्रजरत्नदास (संपा०) : भारतेन्दु ग्रंथावली (भाग-1), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० 2007 वि० ।
- ब्रजरत्नदास (संपा०) : भारतेन्दु ग्रंथावली (भाग-2), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० 1991 वि० ।
- ब्रजरत्नदास (संपा०) : भारतेन्दु ग्रंथावली (भाग-3), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं० 2010 वि० ।
- ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु मण्डल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2006 वि० ।
- ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1962 ई० ।
- भट्ट, धनंजय (संपा०) : भट्ट-निबन्धमाला, (भाग-1) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2004 वि० ।
- भट्ट, धनंजय (संपा०) : भट्ट-निबन्धमाला, (भाग-2) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2004 वि० ।
- भट्ट, धनंजय (संपा०) : भट्ट-निबन्धमाला, (भाग-1) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1889 ई० ।
- भट्ट, धनंजय (संपा०) : भट्ट-निबन्धमाला, (भाग-2) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1889 ई० ।
- भट्ट, बालकृष्ण : मधुमंगल मिश्र, हितकारिणी, सितम्बर, 1914 ई० ।
- भट्ट, मधुकर : निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण सन् 1971 ई० ।
- भट्ट, लक्ष्मीकान्त : पं० बालकृष्ण भट्ट की जीवनी, आगरा चतुर्वेदी प्रकाशन समिति, 1973 ई० ।

- मल्ल, वियजशंकर (संपा०) : प्रतापनारायण-ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, नई दिल्ली, नवीन संस्करण सं० 2049।
- माथुर, उषा : भारतेन्दु की खड़ीबोली का विश्लेषण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण सं० 2028 वि०।
- मिश्र, विश्वनाथ : हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-1) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989 ई०।
- मिश्र, सत्यप्रकाश (संपा०) : बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 ई०।
- मिश्र, सत्यप्रकाश (संपा०) : भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 ई०।
- वर्मा, रामकुमार : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास संवत् (750-1750) रामनारायण लाल, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, 1954 ई०।
- वर्मा, शान्ति प्रकाश : द्वितीय भारतेन्दु पं० प्रतापनारायण मिश्र, अमित प्रकाशन, अशोक विहार, नई दिल्ली, मार्च, 1994 ई०।
- वर्मा, शान्ति प्रकाश : प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य की देन, विश्व साहित्य भवन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970 ई०।
- वार्ष्ण्य, लक्ष्मीसागर : आधुनिक हिन्दी साहित्य (1850-1900 ई०) हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, यूनीवर्सिटी, 1994 ई०।
- वार्ष्ण्य, लक्ष्मीसागर : निबन्ध नवगीत, (भाग-1), विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, 1957 ई०।

- वाष्णीय, लक्ष्मीसागर : भारतेन्दु की विचारधारा, शक्ति कार्यालय, प्रयाग, 1948 ई०।
- वाष्णीय, लक्ष्मीसागर : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, साहित्य भवन, प्राइवेट मिमिटेड, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1956 ई०।
- वाष्णीय, लक्ष्मीसागर : हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969 ई०।
- वाष्णीय, लक्ष्मीसागर : हिन्दी साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं० 1966 ई०।
- शर्मा, ओंकारनाथ : हिन्दी निबन्ध का विकास, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, सितम्बर, 1964 ई०।
- शर्मा, कृष्ण कुमार (संपा०) : भारतेन्दु : पुनर्मूल्यांकन के परिदृश्य, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1987 ई०।
- शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद (संपा०) : प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2001 ई०।
- शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद : हिन्दी गद्य शैली का विकास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2017 वि०।
- शर्मा, झाबरमल्ल (संपा०) : गुप्त निबन्धावली, (भाग-1) गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, प्रथम संस्करण संवत् 2007 वि०।
- शर्मा, भगवती प्रसाद : नवजागरण और प्रतापनारायण मिश्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994 ई०।
- शर्मा, रमेशचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1996 ई०।
- शर्मा, राजेन्द्र प्रसाद : हिन्दी गद्य के निर्माता, पं० बालकृष्ण भट्ट, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1958 ई०।

- शर्मा, रामविलास : भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975 ई०।
- शर्मा, रामविलास : भारतेन्दु-युग, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, चतुर्थ संस्करण सन् 1963 ई०।
- शर्मा, रामविलास : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
- शर्मा, विनयमोहन : हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, (भाग-8) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2029 वि०।
- शर्मा, हेमन्त : भारतेन्दु समग्र, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी, तृतीय संस्करण, जनवरी, 1989 ई०।
- शास्त्री, चतुरसेन : हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, 1946 ई०।
- शिवनाथ : भारतेन्दु युगीन निबन्ध, सरस्वती मन्दिर बनारस, संवत् 2010 वि०।
- शिशिर, कर्मेन्दु (संपा०) : राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, परमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1990 ई०।
- शुक्ल, केसरीनारायण : भारतेन्दु के निबन्ध, नन्दकिशोर एंड संस, वाराणसी, अ० ति०।
- शुक्ल, रामचन्द्र : चिन्तामणि, विचारात्मक निबन्ध, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1969 ई०।
- शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2060 वि०।

- शुक्ल, वीरेन्द्र कुमार : भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, रामनारायण लाल प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1955 ई०।
- शुक्ल, सुरेशचन्द्र : प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर, 1964 ई०।
- श्री कृष्णलाल : श्रीनिवास ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2010 वि०, 1953 ई०।
- श्रीवास्तव, त्रिकोकीनाथ : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, सन् 1990 ई०।
- सांकृत्यायन, राहुल : राहुल सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध संकलन कर्ता, कमला सांकृत्यायन तथा खेलचन्द्र आनन्द, प्रवीन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982 ई०।
- सिंह, बच्चन : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978 ई०।
- कोश**
- अंग्रेजी—हिन्दी कोश : (संपा०) फादर कामिल बुल्के, नई दिल्ली, एस०चन्द एंड कम्पनी, 1981 ई०।
- राजपाल हिन्दी शब्दकोश : डॉ० हरदेव बाहरी, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2004 ई०।
- संस्कृत हिन्दी कोश : (संपा०) वामन शिवराम आप्टे, दिल्ली नगर प्रकाशन, 1991 ई०।
- हिन्दी शब्द सागर : (संपा०) डॉ० श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
- हिन्दी साहित्य कोश : (संपा०) धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल, लि० वाराणसी, 1985 ई०।

पत्र-पत्रिकाएँ

- अतएव : डॉ० शरण गोस्वामी (संपा०), लखनऊ, अंक मार्च, 1999 ई० ।
- अभिनव भारती : हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।
- आनन्द कादम्बिनी : बदरीनारायण चौधरी (संपा०) मासिक पत्रिका, माला-6, मिर्जापुर वि०सं० 1963 ई० ।
- ब्राह्मण : प्रतापनारायण मिश्र (संपा०) कानपुर, 1883 ई०
- भारत जीवन : रामकृष्ण वर्मा (संपा०), काशी, 1941 ।
- भारत मित्र : रुद्रदत्त (संपा०), कलकत्ता, 29 मार्च, 1883 ई० ।
- भारतेन्दु : राधाचरण गोस्वामी (संपा०), वृन्दावन, 1941 ई० ।
- मित्र विलास : कन्हैयालाल (संपा०) खण्ड 4/ 49, 20 जून 1881 ई० ।
- सम्मेलन पत्रिका : डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
- सरस्वती : महावीर प्रसाद द्विवेदी (संपा०), इलाहाबाद, 1903 ई० ।
- सार सुधानिधि : सदानन्द मिश्र (संपा०), कलकत्ता, सं० 1935 ई० ।
- हिन्दी प्रदीप : पं० बालकृष्ण भट्ट (संपा०) प्रयाग, अक्टूबर-दिसम्बर अंक, 1887 ।

English Books

- A. Yusuf Ali : The making of India, 1925.

- Bose, N.K. (Editor) : Culture and society in India, Calcutta, 1967.
- Ishwari Prasad : History of medieval India, Allahabad, 1925.
- Majumdar, R.C. and Pusarkar : History of Culture of people, Vol.-I, Bombay.
- Nehru, Jawahar Lal : Discovery of India, 1960.
- Oxford, R.W. Wrechfuldud : The oxford English Dictionary, Vol.-III Clarendon Press, 1989.
- Radha Krishan : Encyclopaedia of Social Work in India, 1968.

